मैं—"जाकर अपने घरपर

नलनी—"हमारा घर वह है। हम रोज यहां नहाता है।"

मैं—"मगर अब यहां नहाने न पावोगी।"

नलनी—"क्यों?"

मैं—"क्योंकि अब मैं आ गया।"

नलनी—"तुम कौन है?"

मैं—"मैं कोई हूं। तुमसे मत

नलनी—"तुमरा की नाम

मैं—"क्या करोगी पूछकर?"

नलनी—"हमारा नाम नलनी

मैं—"होगा।"

नलनी—"तुम बड़ा बाबूका लड़का ह

मैं—"हां हूं तो। मगर तुम अपना मतलब कहो।"

नलनी—"हम श्याम बाबूकी लड़की है?"

मैं—"तो मैं क्या करूं?"

नलनी—"अच्छा अब तुम नहा चुका अब हमको नहाने दो।"

मैं—"जाती है यहांसे कि दूं मुंहपर तमाचा कसके।"

नलनी—"तुम मारो हम नहीं जायेगा।"

अगर दिल चोट खानेके योग्य होता या पहिले कभी इसने चोट खाई होती तो उसकी इस बातपर इसका क्रिया-कर्म सब हो जाता। मगर लड़पनमें इतनी गूढ़ बात समझनेकी समझ कहां? छिलकोंके भीतर छिपे हुए रसके बीजको छीलकर निकालने और उसका स्वाद लेनेका ढङ्ग कहां? उसकी इस बातपर मुझे उल्टे और गुस्सा चढ़ आया इसलिये कि यह बड़ी ढीठ है। दिलमें ठान लिया कि अगर अब यह बोली तो विना मारे छोड़ूंगा नहीं। मगर खैरियत हो गई कि उसी वक्त एक वृद्ध बंगाली भले मानुस सड़क-पर जाते हुए दिखाई दिये। उन्हें देखते ही वहांसे चुपचाप वह खिसक गई। मैं नहाकर लौटा और सफरकी थकावट-के कारण चारपाईपर लेटते ही सो गया।

---

[३]

"खता साबित करेंगे अपनी और हम उनको छेड़ेंगे।
सुना है उनको गुस्सेमें चिमट जानेकी आदत है॥"

नौकर और भण्डारी मुझे सोता हुआ देखकर कहीं टहलने चल दिये। माली खाना खाने अपने घर रवाना हो गया। उस सुनसान घरमें मैं ही अकेला रह गया। इतनेमें

कुछ खटपटकी आवाज हुई और मेरी नींद उचट गई। देखा कि सामने ही मेरी चारपाईके पास नलनी खड़ी हुई मेरी तरफ देख रही है। मगर मेरी आंख खुलते ही वह भाग गई। मेरे बदनमें आग लग गई कि कहांसे आकर इसने मेरी नींद हराम की। तो भी अलसाया हुआ बहुत था। करवट लेकर फिर सो गया। जैसे ही आंख लगी थी वैसे ही बाहरकी खिड़कीसे किसीने मेरे बदनपर एक गिलास पानी फेंका। मैं झल्लाके उठ बैठा। खिड़कीसे देखा कि नलनी हाथमें गिलास लिये भागी जा रही है। अब मुझे ताब कहां? जल्दीसे मकानके बाहर हुआ और दौड़कर नलनीको पकड़ा और फिर उसकी पीठपर दो घूंसे कस-कसके जमाये। नलनीके पिता दूरसे यह मार-पीट देख रहे थे। नलनी न तो रोई और न कुछ मुंहसे बोली, मगर उसके पिता आंखें लाल किये आस्मान सरपर उठाये मुझपर फट पड़े और लगे गरजने। नलनी वहांसे सर झुकाये अपने घर चली गई और अपनी चादर जो नलपर फीचनेके लिये रखे हुए थी ले जाना भूल गई। एक तो मेरी नासमझीकी उम्र, दूसरे गुस्सा चढ़ा हुआ था, नलनीके पितासे उस वक्त मैं कब दबनेवाला था? तमीज लिहाजका ख्याल चूल्हेमें झोंक उनसे लड़नेको तैयार हो गया।

वह—"तुम हमरा लेड़कीको मारेगा ?"

मैं—"हाँ और तुमको भी मारूँगा।"

वह—"बोदमाश! तुम हमको मारेगा ?"

मैं—"हाँ और अच्छी तरहसे।"

इतना कहके मैं दौड़कर घरसे डंडा ले आया और दिखाकर कहने लगा कि—

"देखो, इसी डंडेसे हम मारेगा।"

वह—"देखो सब लोग। यह छोकड़ा हमको मारनेको बोलता है। हम इशके बापशे बोलेगा।" इतना कहकर हजरत चल दिये।

अररररर! सब मामला गड़बड़ हो गया। बूढ़ेने ऐसी नस दबाई कि मेरी गर्मी उतर गई और दिलमें डर समा गया। उसकी इस धमकीसे मेरे हवास गुम हो गए। मैं सोचने लगा कि अब क्या करूँ। अगर पिताके कानमें जरा भी मेरी शिकायत पहुंची तो गजब हो जायगा। बहुत खफा होंगे। एक तो मैं मना करनेपर भी जबरदस्ती चला आया हूं और दूसरे आते ही पाजीपन करने लगा। देवी-देवता जितनोंको मैं उस वक्त जानता था सबकी याद की कि मुझे इस संकटसे उबारें। अगर नलनी इस वक्त न आती तो काहेको मेरे सर यह मुसीबत पड़ती। इसलिये

रह-रहकर उसपर मेरा गुस्सा चढ़ रहा था। इतनेमें वह घरसे निकली और नलकी तरफ बढ़ी जहाँ उसकी चादर पड़ी हुई थी। उसे देखते ही मैं जल-भुनके खाक हो गया। झट वह डंडा जो मेरे हाथमें अबतक था उठाकर दूरहीसे कहा—

"खबरदार! जो इस हातेके भीतर फिर कभी कदम रखा तो तुम्हारी टांग तोड़ दूंगा।"

नलनी डण्डा देखकर सटपटाकर रुक गयी। मैं उसकी चादर उठा लाया और उसपर अपना गुस्सा उतारनेके लिये उसे एकदम जला देनेका इरादा किया। मगर वक्तपर दियासलाई न मिली। इसीलिये उसको छिपाकर रख दिया।

---

[४]

"Een though vanquished, he could argue still"
—Goldsmith

मैं मकानके बाहर फिर निकला और बड़ी देरतक खड़ा सोचता रहा कि नलनीके बापकी शिकायतका असर मेरे पिताके दिलपर किस तरह न हो। नौकरोंका अभीतक पता नहीं था। मालीने नलके पास ही फूलवारीमें नये-नये

फूल और तरकारियोंके पौधे लगाये थे। मैंने नलको एकदम खोल दिया और पानी बहनेकी नाली बन्द कर दी। थोड़ी देरमें तमाम क्यारियां पानीसे भर गईं और पानी छलककर पटरियोंपर पहुंचने लगा। मैं वैसे ही खुला हुआ नल छोड़कर भीतर चला आया और चारपाईपर लेट गया।

पिता दो पहरको मकान नही आते थे। इसलिये नौकर सब बेफिक्र थे। मगर मेरा दिल कहता था कि पिता आज जरूर आयेंगे। मेरा ख्याल सही निकला, क्योंकि थोड़ी देर बाद पिता पहुंच गये और आते ही पौधे और क्यारियोंकी दुर्दशा देख आग हो गये। मालीको पुकारा। नौकरको बुलाया। भंडारीको ढूंढ़ा। मगर किसीका पता नहीं। तब लगे बकने-झकने कि कमबख्तोंको कई बार समझा दिया कि किसी ऊपरी आदमीको नलपर न आने दिया करें, मगर कोई नहीं सुनता।

नलनीके बाप सुबह औफिस जाते थे और नौ बजे लौटते थे, फिर एक बजे जाया करते थे। उनसे और मेरे पितासे अभीतक मुठभेड़ नहीं हुई थी। पिता बाहर बिगड़ रहे थे कि इतनेमें मैं आंख मलता हुआ आया जैसे मालूम हो कि अभी सोके उठा हूं। मैंने दौड़कर नल बन्द किया

और क्यारियोंमें पानी भर जानेपर अफसोस जाहिर किया। पिता भीतर आये और पूछा कि:—

"आखिर सब-के-सब नौकर कहाँ गायब हैं?"

मैं—"मालूम नहीं। मैं तो सो गया था। शायद दोपहरको रोज घर चले जाते हों इसलिये आज भी चले गये होंगे।"

पिता—"तभी तो फुलवारी दिनोंदिन खराब होती जाती है। कभी बकरी चर जाती है, कभी नल खुला रह जाता है। कोई देखनेवाला नहीं।"

मैं—"नल तो खुला शायद एक बंगाली लड़की छोड़ गई है। क्योंकि जबसे आप गये हैं तबसे अभीतक वह नलपर ऊधम मचाये हुए थी।"

पिता—"तुमने मना क्यों नहीं किया?"

मैं—"वह इस कदर शरीर है कि वह सुनती भला किसकी है? मैंने कई दफे मना किया बल्कि जबरदस्ती हातेके बाहर कर दिया। इसपर उसके बाप मुझसे उल्टे लड़नेके लिये आए। सैकड़ों उन्होंने बातें सुनाईं। तब मैं क्या करता? आकर सो गया। वह फिर आई होगी। और महज चिढ़ानेकी गरजसे नल खुला छोड़ गई होगी।"

पिता अच्छा कहकर चुप हो गये और मैं दौड़कर

स्टेशन चला गया। वहांपर एक बंगाली हलवाईकी दुकानसे आध सेर मिठाई और पावभर बरफ खरीदी। पिता अभीतक आराम-कुरसीपर आराम कर रहे थे। मैंने थोड़ीसी मिठाई तश्तरीमें लगाकर पिताके सामने रखी।

पिता—"मिठाई कहाँसे आई?"

मैं—"मैं अभी बाजारसे लाया हूं।"

पिता—"क्यों?"

मैं—"इसलिये कि आपको देर हो रही थी और नौकर अभीतक आया न था।"

पिता—"नहीं, मैं तो इस वक्त जलपान करनेका आदी हूं भी नहीं। सिर्फ तुम्हारी वजहसे आज इस वक्त चला आया। खैर, कोई हर्ज नहीं।"

मैंने झटसे गिलासमें बर्फ डालकर पानी दिया और उसके बाद पिताको पान इलायची देकर निहायत खुश विदा किया। और बन्दा शामतक अपने अकेले मजे-मज़े मिठाई उड़ाता रहा।

औफिसमें पहुंचते ही पिता और नलनीके बापसे मुठ-भेड़ हो गई। यह उनकी खोजमें थे और वह इनकी ताकमें थे। फिर क्या था, खूब गर्मागर्म मुलाकात हुई। वह यह

रट लगाये हुए थे कि आपका लड़का पाजी है। मगर क्यों ? यह नहीं बताया। और पिता कहते थे कि आपकी लड़की पाजी है। ग़रज़ यह कि बहस तो खूब हुई, मगर न यह उनको कायल कर सके और न वह इनको। हम दोनों यों-के-यों ही रह गये। न वह पाजी ठहरी और न मैं पाजी।

---

[५]

"नारी नाहीं जानत बैदा निपट अनारा।"

मारके आगे भूत भागे मगर नलनीको मारका डर और असर कहां ? मारा-पीटा, डांटा-डपटा, सब कुछ किया, फिर भी नलनीको जब देखा तब आंखोंके सामने मौजूद। कभी नौकरोंसे उलझती, कभी राह चलनेवालोंसे लड़ती ; कभी अपने छोटे भाईको मारती, कभी आकर पिताकी मेजपर किताबें इधर-उधर कर देती। इन्हीं बातोंमें मैं कोई-न-कोई बहाना निकाल कर उसे ठोंक दिया करता था।

एक दिन मुझे एकाएक ख्याल आया कि नलनीकी चादर जो मैंने जलानेके लिये रख ली थी शायद यह उसीको लेनेके लिये बार-बार आया करती है। इसलिये मैंने

सोचा कि अगर यह उसे लौटा दूं तो रोज-रोजकी मार-पीटके झगड़ेसे छुट्टी पा जाऊं। मैं चादरका जलाना एकदम भूल गया था, क्योंकि नलनीने न कभी उसे मांगा और न मैंने उसकी कोई खोज की।

मैं इसी सोच-विचारमें घरके भीतर अकेला बैठा हुआ था कि इतनेमें नलनी अपने छोटे भाईको गोदमें लिये हुए आई। मैं चुपचाप उठा और उसकी चादर ढूढ़कर उसे दे दी।

मेरी इस कार्रवाईपर वह मुस्कुरा पड़ी और उसकी शोखियां बढ़ चलीं। शायद वह समझी कि इसका जंगलीपन दूर हुआ और अब यह आदमी होने लगा। मगर मैं और भी चिढ़ उठा। वह चादर लेकर चली गई। थोड़ी देरके बाद फिर पहुंची। अब मुझसे न रहा गया। मैंने झुंझलाकर कहा—

"अब तू यहां क्या करने आई?"

नलनी—"हम खेलने आया है।"

मैं—"तो यहां कौन बैठा है तेरे साथ खेलनेके लिये?"

नलनी—"हम अपने साथ खेलेगा।"

मैं—'जब अपने ही साथ खेलना है तो क्या तेरे घर-घर जगह नहीं है।"

नलनी—"है, किन्तु वहां खेलनेमें जी नहीं लगता।"

मैं—"अच्छा, अब ज्यादा पाजीपन न कीजिये। चुप-चाप यहांसे तशरीफ ले जाइये।"

नलनी—"अभी नहीं जायेगा।"

मैं—"क्यों?"

नलनी—"यहांसे जानेका जी नहीं चाहता।"

मैं—"बिना मार खाये तुम्हारा जानेका कभी जी नहीं चाहता क्यों?"

नलनी—"हिन्दुस्तानी लोग बड़ा जंगली होता है।"

मैं—"अब मैं भी यही सोचता हूं। अगर तू जंगली न होती तो मेरे एक बार कहनेका तुझपर असर न होता?"

नलनी—"हम हिन्दुस्तानी नहीं है।"

मैं—"तब फिर कौन विलायतकी जानवर है तू?"

नलनी—"हम बंगाली है।"

मैं—"तो जंगली मैं हूं क्यों?"

नलनी—"और नहीं तो क्या।"

मैं—"पाजी कहींकी खड़ी तो रह जरा।"

मैं मारनेके लिये उठा। वह अपने भाईको वहीं रोता हुआ छोड़कर भाग गई। मैंने उस बच्चेको उठाकर हातेके बाहर सड़कपर छोड़ दिया और दरवाजा बन्द कर अन्दर

निहायत अफसोसमें बैठा कि क्या कहूं भाग गई। मार न पाया।

---

[६]

"एक दिन मान ही जावोगे हमारा कहना।
तुम कहे जाओ यही तेरी हकीकत क्या है॥"

बेशक मैं ही जंगली था। मैं क्या जानूं प्रेम किस चिड़ियाका नाम है? लड़कियोंके साथ मैं जरूर खेलना चाहता था; मगर इसलिये नहीं कि वे मुझे प्यारी मालूम होती थीं, बल्कि इसलिये कि वे मुझसे कमजोर हुआ करत थीं और उनके साथ मारपीट करनेमें कभी हारने या खुद पिट जानेका डर नहीं रहता था।

लड़कपनमें कई लड़कियोंके साथ खेला, मगर नलनी सभोंसे न्यारी थी। उसकी बात ही और थी। वह उस प्रदेशकी रहनेवाली थी जहांकी मिट्टीमें प्रेम, हवामें प्रेम, पानीमें प्रेम है। जहांके बच्चे पैदा होते ही प्रेम-मन्त्र ग्रहण करते हैं। जहांके लिये यह भद्दी कहावत मशहूर है कि होशियार रहना क्योंकि वहां औरतें जादूसे आदमियोंको भेड़ बना देती हैं। वह जादू नहीं प्रेम है। भेड़ बनना

नहीं वल्कि प्रेमजालमें फँसकर वेवस हो जाना है। जहां नाज़ुक कलाओंकी चर्चा घर-घर फैली हुई है, जहांके साहित्यका सवसे वोलवाला है, क्योंकि उसके रचनेवाले प्रेम-परीक्षा दिये हुए होते हैं। जबतक लेखक प्रेमरसमें अच्छी तरह पगे हुए नहीं होते, कोमल भावोंको पूरी तरह अनुभव किये हुए नहीं होते, तवतक वह भावोंकी तरङ्गोंमें पाठकोंको तैराना क्या जानें ? किसी भी भावकी ठीक-ठीक थाह अपनी लेखनीसे क्योंकर पावें ? सभी भावोंका पूरा-पूरा अनुभव प्रेम ही द्वारा हो जाता है। क्योंकि जहां प्रेम है तहां डाह भी है, वैर भी है, क्रोध भी है, डर भी है, जान देनेकी हरदम तैयारी भी है, सभी वातें हैं।

और मालूम होता है इन्हीं सव वातोंके सिखलानेके इरादेसे मुझे प्रेम-परीक्षाके लिए तैयार करनेके लिये नलनी मेरी गुरु हुई। गुरु तो स्वाभाविक मिली, मगर कमसिन और नातजुरवेकार। क्योंकि इतना कठिन पाठ सीखनेके लिये उस समय मेरे पास न दिल ही था और न दिमाग। इसलिये दो वर्षतक उसकी शिक्षाओंका कुछ भी असर मुझपर न हुआ। मारना-पीटना अलवत्ता कम हो गया, क्योंकि इस वीचमें मेरे घरवाले सभी आकर पिताके साथ रहने लगे। मैं ही अकेला स्कूलकी पढ़ाईके कारण अन्य

सम्बन्धियोंके साथ घरपर रहता था। और सालमें सिर्फ दो बार गर्मी और बड़े दिनकी छुट्टियोंमें पिताके पास जाता था। और तब वहां सब लोगोंके रहनेकी वजहसे नलनीको ठोकनेका मौका नहीं पाता था। मगर इसकी कसर खेलमें निकाल लिया करता था, क्योंकि मैं चोर अद्‌बदा कर उसाको बनाता था। और यों उसे खूब हैरान करता था। जब कभी वह झूले के पास आकर खड़ी होती तब मैं तख्ता निकालकर खाली रस्सियोंपर उसे बैठाता था और इस जोरसे उसे झुला दिया करता था कि वह डालियोंसे भी ऊंची चली जाती थी। मगर थी बड़ी दुबली पतली और निडर। इसलिये कभी वह उसपरसे गिरी नहीं। इसका मुझे उस वक्त बड़ा अफसोस था।

अन्तमें जब मैं सोलह बरसका हुआ और इन्ट्रेन्सका इम्तहान देकर पिताके यहां गया तब गुरुका पाठ कुछ-कुछ समझमें आकर दिलमें अनोखा मजा देने लगा। और तब मैंने भी गुरुकी गुरुवाई मानकर गुरुके आगे माथा नवा दिया।

[७]

"करो शौकसे मुहब्बत मगर एक बात सुनलो।
किसी और कामके फिर न रहोगे दिल लगाकर।"

लगातार पासमें आनेसे कभी ऐसी खास चीजपर भी निगाह पड़ ही जाती है। और ऐसे रूपी ज्ञानपर प्यार और मुस्कानसे उसमें बाढ़ आती है। फिर लड़कीका प्रेम—डाकू मेरे दिलपर चल गया तो कौन-सी ताज्जुबकी बात है? प्रेमके ढंग भी अनोखे और नाना प्रकारके हैं। कोई ठीक पता नहीं चलता कि यह किस खास तरहसे दिलपर हमला करता है। कभी दृष्टि मिलते ही दोनों ओरसे इसके पुष्प-बाण चल जाते हैं। कभी यह मुद्दतोंतक अपने शिकारको लुभा-लुभाकर धीरे-धीरे अपने फन्देमें ला फंसाता है। कभी यह बरसों चुपचाप ताक लगाये बैठा रहता है और मौका पाते ही किसी खास बात या अदापर एकाएक अपने असामीको पकड़ लेता है। फिर वह बेचारा इस रोगमें पड़कर सोचने लगता है कि अरे! कल जिससे मैं सीधे मुँह बाततक नहीं करता था आज एकाएक मुझे क्या हो गया कि उसे मैं तन मन धनसे पूजने लगा।

जब मैं इलाहाबाद इन्ट्रेन्सका इम्तहान देने गया था मैं

बेहद बीमार था। पिताने उस साल इम्तहान देनेसे मुझे मना किया था। तोभी हेड मास्टर और अन्य मास्टरोंने मुझे जबरदस्ती इम्तहानमें भेज दिया, क्योंकि स्कूलका नेकनामीका दारमदार उस वक्त मुझपर समझा जाता था। कई बरसोंसे कोई लड़का प्रथम श्रेणीमें मेरे स्कूलसे नहीं पास हुआ था। और उस साल हेड मास्टरको उम्मीद थी कि यही अकेला प्रथम श्रेणीमें पास होनेवाला है, क्योंकि नवेके इम्तहानमें मेरे नम्बर इतने आये थे कि कई बरसोंतक उतने नम्बर किसी लड़केने नहीं प्राप्त किये थे। इसीलिये मुझपर यह मुसीबत पड़ी कि मेरा ढांचा लाद फान्दकर हेड मास्टरने जिद करके इलाहाबाद भिजवा दिया।

पहले ही दिन इम्तहानमें एक घण्टा बाद जूड़ी आ गई। तोभी जबतक मैं लिख सका लिखता ही गया। मगर जब मजबूर हो गया तब कापी रख दी और बाहर आकर धूपमें लेट गया। उसके दो घण्टे बाद मेरा साथी निकला और मुझे इक्केपर सवार कराकर डेरेपर ले आया। दूसरे दिन छोड़कर फिर तीसरे दिन आध घण्टेके बाद जूड़ी आ गई। उस दिन मैं दो ही सवाल कर सका। तब मैंने डेरेपर सहपाठीसे कहा कि मुझे पिताके पास भिजवा दो। मैं पास

अब किसी तरहसे नहीं हो सकता। यहाँ मर अलबत्ता जाऊंगा। वह मुझे एक बड़े मशहूर डाक्टरके पास ले गया उन्होंने मुझे ऐसी दवा दी कि जूड़ीका आना बन्द हो गया। मगर यह ताकीद कर दी थी कि कुछ दिनोंतक बराबर दवा करते रहना वरना अच्छे नहीं होंगे, क्योंकि बुखारने एकदम साथ नहीं छोड़ा था।

इम्तहानसे छुट्टी पाते ही कैसी दवा और कहाँकी दवा, सीधे पिताके पास रवाना हुआ। इस बीमारीसे मेरे मिजाजकी तेजी और गर्मी सुस्त और ठण्ढी पड़ गई! खेल-कूद दौड़-धूपका शौक बिल्कुल जाता रहा। जहां बैठ गया वहीं घण्टों बैठा रहता था। एक तो बीमारीसे वैसे ही कमजोर हो रहा था दूसरे फेल हो जानेके ख्यालसे हर वक्त मुरदनी छाई रहती थी।

नलनी अब चौदह वर्षकी हुई। अब वह दुबली-पतली नलनी नहीं रही बल्कि नवजवानीके रसमें वह कमलकी तरह खिल निकली और उसपर प्रेमकी दिव्य प्रभा और भी गजब ढा रही थी। और दूसरे बंगालका पानी लड़कियोंकी सुन्दरतापर इस उमरमें जो मोहनी मन्त्र फूंक देता है उसका जादू बस! देखा ही जा सकता है। लेखनी सर पटकके मर जाय लेकिन बयान नहीं कर सकती।

नलनी अब मेरे मकानपर नहीं आती थी। सड़कपर नहीं दौड़ती थी। नलपर नहीं नहाती थी। बल्कि जब मैं सड़कपर रहता था तब वह अपने दरवाजेपर खड़ी रहती थी। और जब मैं अपने बरामदेमें आकर आराम-कुर्सीपर लेट जाता था तब वह अपनी खिड़कीपर बैठ जाती थी, क्योंकि वहाँसे मेरे बरामदेका सामना पड़ता था।

मैं मारे सुस्तीके दिन-दिनभर बैठा रहता था और जब आँख उठाता था तब नलनीको भी बराबर उसी तरह बैठी हुई देखा करता था। 'मेसमेरिज्म' और 'हिपनारिज्म' में आँख ही लड़ाकर लोग बेहोश किये जाते हैं, उनकी आत्माओंको वशमें करके उनसे स्वेच्छापूर्वक काम कराया जाता है। इसी तरह मीठी निगाहें भी अपना असर दिखानेमें नहीं चूकतीं। दिलके कोमल भाव उभारकर दिलको अपनी तरफ खींच लेती हैं। 'मेस्मेरिजम' में व्यक्ति जितना कमजोर होता है उतनी ही जल्दी उसपर निगाहका असर पड़ता है। बच्चों हीको ज्यादेतर नजर लगती है, बड़ोंको नहीं। और प्रेममें दिल जितना ही कोमल होता है उतनी ही आसानीसे यह इसके पञ्जेमें आ जाता है। मैं और मेरा दिल योंही कमजोर हो रहे थे। और उसपर नलनीकी प्यारकी नजर। फिर क्या था। इस देखा-देखीमें नलनीकी मोहनी

मूर्त्ति मेरे दिलपर खिंचने लगी। जो चीज दिनभर आँखोंके सामने रहे वह वहाँसे हट जानेपर भी देखनेवालेके ख्यालमें बड़ी देरतक वैसी ही बनी रहती है। और खाली दिमागमें इसकी तस्वीर और भी देरतक खिंची रहती है। वैसे ही रातको भी नलनी मेरे ध्यानमें रहने लगी यहांतक कि सोते उठते बैठते उसीकी सूरत आंखोंमें फिरने लगी।

जब मैं शामको सड़कपर टहलता था तो वह अदबदाकर अपने मकानसे निकल पड़ती थी और मेरे पाससे गुज़रकर अपने रिश्तेदारके घर आया-जाया करती थी। मगर न उसको छेड़नेकी अब मेरी हिम्मत पड़ती थी। और न वह मुझे टोकती थी। एक दिन चांदनी रातको वह इस तरहसे मेरे नजदीकसे अठलाकर गुजरी कि उसकी साड़ीका किनारा मेरे हाथमें लग गया। वह झिझककर सिमटी, मुड़कर देखा, लजाकर मुस्कुराई और बल खाकर चली गई। बस गज़ब हो गया। न जाने उस साड़ीमें कौनसी बिजली थी कि मेरे सारे बदनमें एक झनझनाहट-सी दौड़ गई। कलेजा धकसे हो गया। दिल धड़कने लगा। हवास गुम हो गये। बदनमें कपकपी जारी हो गई। और मैं वहीं लड़खड़ाकर बैठ गया।

---

[८]

"तीर लगे तलवार लगे

पै लगें जनि काहूसे काहूकी आंखें।"

बदनमें कपकपी शुरू होते ही मेरी पुरानी बीमारी उभर उठी और मुझे पहिलेकी तरह जूड़ी आ गई। मैं किसी-न-किसी सूरतसे उठकर गिरता पड़ता घर आया और पलंग-पर गिर पड़ा। घरभरके लेहाफ कम्बल सब ओढ़ा दिये गये, मगर मेरी जूड़ी न गई। बैठकसे सब लोग दौड़ पड़े। पड़ोसके सभी भलेमानुस आए। डाक्टर साहब बुलाये गये। थरमामेटर लगाया गया। मालूम हुआ कि बोखार १०५ डिग्री चढ़ा है, और कई दिनतक योहीं चढ़ा रहा।

एक तो बोखारकी बेचैनी। दूसरे नलनीके लिये बेचैनी। तीसरे नलनीकी बेचैनीके ख्यालसे बेचैनी। इन बेचैनियोंसे मेरी हालत दिनोंदिन बिगड़ती गई। नलनीको देखनेकी लालसा अब हरदम सता रही थी। उसके देखे बिना आंखें तरस रही थीं, दिल तड़प रहा था।

अब अपनी व्यथा सोचकर नलनीके दुःखका पता चलने लगा। मैं सोचता था कि नलनी भी मेरे लिये मेरी तरह तड़पती होगी। मेरी राह देखती होगी। किस तरह उसे

बतलाऊं कि मैं बीमार हूं। बाहर कैसे जाऊं ? ताकि वह मेरा आसरा न निहारे। फिर सोचता था कि क्या नलनी सचमुच मुझे चाहती है। अगर नहीं चाहती तो दिन दिन भर खड़ी क्यों रहती है। अगर चाहती है तो मुझसे बोलती क्यों नहीं ? मेरे मकानपर क्यों नहीं आती ? दिल कहता था कि ज़रूर चाहती है, क्योंकि अहमदसे जो मेरी तरह छुट्टियोंमें अपने पिताके पास आया करता था और जो मेरे साथ दिन-रात खेला करता था वह सीधे मुंह बात नहीं करती थी, हालांकि वह बहुत खूबसूरत था और नलनीसे बहुत भली तरह पेश आता था। तारिणी बंगाली था। अहमदसे भी खूबसूरत था। नलनीके घर आता जाता था तौ भी वह उसकी बातोंका जवाब हमेशा झिड़कियोंसे दिया करती थी। मगर मेरी मार गालीपर भी नलनीने सिवाय मुस्कराकर ललचाई हुई नज़रोंसे देखनेके मुझपर कभी कड़ी निगाह तक नहीं डाली। बातका जवाब देना कैसा ? यही सब बातें अब मेरे हृदयको वेधने लगीं और मैं अपने कुव्यवहारोंपर पछताने लगा। और जितना ही पछताता था उतना ही ज्यादा मैं उसको चाहने लगा। नलनीकी सहेलियोंमें कई नलनीसे भी खूबसूरत थीं। 'उनकी सुन्दरतायें, उनके हावभाव, उनकी मीठी छेड़खानियां अकसर मेरे

चित्तको डगमगा दिया करती थीं। एक प्रकारकी अभिलाषा मेरे हृदयमें उत्पन्न कर देती थीं। मगर नलनीको नजरोंमें कुछ और ही बात थी जो अब उसको मेरी निगाहोंमें सबोंसे सुन्दर बनाये हुए थी। उसके अटल अनुरागने मेरी तमाम झूठी अभिलाषाओंको दूर भगाकर दिलमें शुद्ध प्रेमकी आंच लगा दी।

वही नलनी थी जिसको मैं इतना मारता था और वही मैं था कि उससे बोलनेतककी अब मेरी हिम्मत नहीं पड़ती थी। उसके सामने मेरी जबान बन्द हो जाती थी। क्यों? किसी प्रेमीके दिलसे पूछो। अब मेरी हिम्मत क्या हुई? मेरी लापरवाही कहां गई? मुझमें ऐसी कायापलट हो गई? ऐसा विकार पैदा हो गया? अय प्रेम, यह सब तेरे ही आगमनकी निशानी है। यों चाहे हम किसीसे दिनमें सैकड़ों बार मिलते हों, हंसते हों, बोलते हों। कहीं कुछ भी नहीं मालूम होता। मगर करवक्त प्रेमका साया पड़ते ही खुद अपना ही दिल चोर हो जाता है। फिर झिझक परहेज डर घबराहट सब एकबार्गी दिलमें घुस पड़ते हैं। जी मिलनेको बहुत चाहता है मगर मिल नहीं जाता। पैर सौ सौ मनके हो जाते हैं। सामने जाते कलेजा कांपता है। पलकें ऐसी भारी हो जाती हैं कि नज़र उठाये नहीं उठतीं। सैकड़ों

उपाय करनेपर भी मुंहसे बोल नहीं फूटता। और इसी तरह जहां वियोग होता भी न हो वहां प्रेम तू खुद वियोग पैदा कर लेता है। तू अपनेको जितना ही छिपाता है उतना ही अपनेको प्रकट कर देता है। और इन्हीं सब बातोंसे जहां बदनामीका डर भी न हों वहां तू अपने आप अपने ऊपर बदनामी ओढ़ लेता है। ऊफ! तू बड़ा अनर्थकारी है प्रेम। ईश्वर जिसे मिटाये वह तुझे अपने हृदयमें जगह दे, जिसे तड़प-तड़पकर बेमौत मरना हो वह तुझसे लगावट करे।

मैं इसी तरहके ख्यालातमें परेशान होकर प्रेमको कोस रहा था कि ऐन दोपहरको नलनीकी आवाज नलपर सुनाई दी। मैं बाहर जानेके लिये छटपटाने लगा, मगर उठ नहीं पाता था। क्या करता? कलेजेपर पत्थर रखे लेटा ही रहा। थोड़ी देरमें मेरी खिड़कीपर खटपटकी आवाज सुनाई दी। मैंने गौरसे देखा तो मालूम हुआ कि दरारोंसे कोई झांक रहा है। मैं समझ गया कि नलनी है। चेहरा मारे खुशीके खिल गया। मगर कमरेमें सभी बैठे थे। इसलिये न कुछ बोल सका और न खिड़की ही खुलवा सका। फिर ख्याल आया कि नलनी धूपमें पत्थरपर खड़ी है, क्योंकि मेरे मकानके चारों तरफ पत्थर जड़े हुए थे जो दोपहरको गर्म तवेकी तरह जलते थे। नलनीके पैरोमें छाले पड़

जायेंगे। बस इस ख्यालसे मैं घबड़ा उठा। नलनीको पास पाकर खुशी तो बेहद हुई मगर उसकी तकलीफका ख्याल करके यह चाहने लगा कि नलनी चली जाती तो अच्छा था। यह सोचकर मैंने करवट ले ली, लेहाफ ओढ़ लिया तो भी नलनी न हटी, तब मैंने सबसे कहा दूसरे कमरेमें मुझे लेटाओ, यहां जी घबड़ाता है। वहांसे मैं हटा दिया गया। नलनी दूसरी खिड़कीपर भी पहुंची, मगर खिड़कीकी सिटकनी बन्द न थी। नलनीने धीरेसे खिड़कीको थोड़ा खोलना चाहा, मगर धक्का जोरका लग गया। खिड़की खुल गई। उसपर रखी हुई दवाकी शीशियां टूट गईं और सारा भण्डा फूट गया, क्योंकि सबोंने नलनीको देख लिया।

---

[९]

"नजर मोहे लागी रे बालेपनसें—
दिल्ली शहरसे बैद बुला दे।
नबज मोरी देख रे बालेपनमें॥"

नलनीको देखते ही मेरे दिलपर एक बिजली-सी गिरी और मैं तड़प उठा। मगर मेरे घरवाले उसपर बेहद बिगड़े,

क्योंकि वे लोग उससे पहलेहीसे ख़फा थे। वह हालहीमें हमारे यहां तीन तस्वीरोंके शीशे और एक वड़ा आईना तोड़ चुकी थी। वह जब आती थी तब अपनी चञ्चलता और लापरवाहीके कारण कुछ नुकसान कर बैठती थी। इसलिये वह मेरे घरसे निकाली हुई थी। अब मुझे मालूम हुआ कि नलनी क्यों नहीं मेरे घर आती है। तभी तो वह चोरीसे छिपकर मुझे यों देखने आयी थी। उफ! यह सोचते ही मैं पागल-सा हो गया।

उस वक्तसे मेरी बेचैनी दम-बदम बढ़ने लगी। यहांतक कि दो घण्टे बाद मेरी हालत ऐसी खराब हो गई कि मेरा प्राण मरने-जीनेके तराजूपर डगमगाने लगा। मां-बापकी आंखोंसे आंसू जारी थे। डाक्टर साहबके हाथमें मेरा नब्ज था। और मेरे ख्यालमें था सो बस यही था कि अफ़सोस! नलनी मेरे ही कारण डांटी गई।

अपनी बदहवासी, घरवालोंकी परेशानी डाक्टरकी सञ्जीदगी देखकर मैंने समझा कि शायद मेरा आखिरी वक्त आ गया है। इस वक्त ईश्वरसे प्रार्थना की कि जिस वक्त मेरा दम निकले उस वक्त नलनी मेरे सामने हो। वरना बड़ी संकटसे मरूंगा। यह सोचकर मैंने पक्का इरादा कर लिया कि जब वक्त नजदीक आयगा तब मैं नलनीको

बुलवाऊंगा। लोग एक मरते हुए आदमीकी आख़िरी बात जरूर मानेंगे।

मगर मेरा पापी प्राण न निकला। मुझे दुनियामें अभी मुसीबतें झेलनी बांकी थीं मरता कैसे? तौभी ईश्वरने मेरी आधी प्रार्थना सुन ली, क्योंकि दूसरे दिन नलनीके मां-बापमें लड़ाई हुई। उसकी मां रातको अपना दुखड़ा रोने मेरे घर आई। नलनी भी साथ हो ली।

इस दफे अपनी मांके साथ आनेसे नलनी डांटी नहीं गई। मुझे खांसी बहुत परेशान किये हुए थी। मां लौंग भून-भूनकर मुझे दे रही थी। नलनीने मांके हाथसे लौंग ले लिये और मेरे सिरहाने बैठकर खुद लौंग भूनकर मुझे खिला रही थी। सब लोग मेरी हालतपर आंसू बहाते थे, मगर मैं दिलमें हंसता था। मेरे ऐसा कौन भाग्यशाली होगा कि जिसको मैं प्यार करूं वही मेरे सिरहाने बैठी हुई मेरी तीमारदारी करे। ईश्वरसे प्रार्थना की कि मुझे सदैव बीमार रखे। उस दिनसे नलनी अपनी नौकरनीके संग रातको रोज मेरे घर आने लगी। मगर अफसोस यह था कि वह मुझसे बोलती क्यों नहीं? नलनीकी मौजूदगीका कुछ ऐसा असर पड़ा कि मैं थोड़े ही दिनोंमें अच्छा हो गया।

[१०]

"मुहब्बतमें नहीं है फर्क मरने और जीनेका।
उसीको देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पे दम निकले"

मेरा नतीजा आ गया। बावजूद पर्चे खराब होनेके मैं द्वितीय श्रेणीमें पास हुआ। मेरे स्कूलके ३० लड़कोंमेंसे केवल ४ द्वितीय श्रेणीमें निकले। प्रथम श्रेणीमें कोई भी नहीं आया। इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। पिताने उसी दिन अपनी प्रतिज्ञानुसार मुझे बाइसिकिल खरीद दी। नई साइकिल, नई उमर और नया शौक! मैं दिन-रात उसपर चढ़ा सड़कपर चक्कर लगाया करता था, क्योंकि 'साइकलिंग' का बहाना था और असलियत तो नलनीको देखा करनेकी इच्छा थी। नलनी भी मेरी घण्टी सुनते ही सौ काम छोड़कर बाहर निकल पड़ती थी।

एक दिन शामको मैं दूर निकल गया। लौटते वक्त रास्ता भूल गया। इसलिये बड़ी देरमें वापस आया। आठ बज गये थे, आस्मानपर चान्दनी निकल आई थी।

नलनी अपने दरवाजेपर न थी। मैंने धीरेसे घण्टी बजाई और चाल धीमी कर दी। नलनी अब भी न निकली। मैंने फिर जोरसे घण्टी बजाई। मगर मैं डरा कि ऐसा न हो

कि कुछ कह बैठे। मैंने साइकिल तेज कर दी। वैसे ही नलनी बेहताश दौड़ती हुई अपने मकानसे निकली और तेजीसे ठीक मेरी साइकिलके सामने बीच सड़कपर आ गई।

नलनी और साइकिलके बीचमें सिर्फ दो बालिश्तका फर्क था। साइकिल रोकनेका मौका न था। मेरे हाथ-पांव फूल गये। समझा कि नलनी चोट खा गई, क्या करूं ? बाइसिकिल टूट जाए, मेरा सर फूट जाए, परवाह नहीं मगर नलनीको किस तरह बचाऊं ? इसी उलझनमें मैंने 'हैंडिल' एकदम घुमा दिया और साइकिल छोड़कर कूद पड़ा। बाइसिकिल डगमगाती हुई कतराकर निकल गई और मेरे हातेकेनील कांटेमें उलझ गई और मैं झोकेमें नलनीके ऊपर आ गिरा। मगर था मैं बड़ा लचीला और फुर्तीला। मेरा हाथ नलनीके कन्धेपर पड़ते ही मैं सहारा पा गया और मैं सम्हल गया। उस वक्त घबराहटमें एकाएक मेरी जबान खुल गई—

मैं—"अरी नलनी ! बड़ा गजब किया तूने। ऐसा भी कोई बेहताश दौड़ता है ?"

नलनी—"तो तुम इतने जोरसे घण्टी काहे बजाया ?"

जिस बातको मेरा दिल मुद्दतोंसे ढूंढ़ता था वह उसके

इस जुमलेमें पा गया। मैं मारे आनन्दके बावलासा हो गया। मुझसे कुछ कहना न बन पड़ा। बस लड़खड़ाती हुई जबानमें इतना ही कहा कि—

मैं—"बेशक कसूर मेरा ही था। नलना! माफ करना।"

यह कहकर चाहा कि मैं उसका हाथ पकड़कर सर आंखोंसे लगा लूं। मगर वह हाथ झट खींचकर बोली।

नलनी—"हां हाँ, हाथ न छूना। हमारा हाथ जूठा है।"

मैं—"क्या तू खाना खा रही थी?"

नलनी—"अभी तो खाने बैठा था कि तुमरा घण्टी बोला। बस भाग आया।"

उफ! इससे बढ़कर प्रेमका सबूत क्या चाहता मैं। जीमें आया, उसे गोदमें उठा लूं और उसका मुंह चूम लूं। मगर उसी बीचमें मैंने साइकिल उठा ली थी मेरे हाथ दोनो बन्धे थे। मैं सटपटाकर रह गया।

मैं—"अरे राम! राम! तू आज रातभर भूखों मरी। बड़ी गल्ती हुई। नाहक घण्टी बजाई मैंने।"

नलनी—"नहीं अब भूख नहीं बुझाता।"

इतनेमें नलनीकी नौकरनी सुखिया लोटेमे पानी लेकर

मुस्कराती हुई बाहर निकली। वह नलनीसे दो ही चार बरस बड़ी थी। वह उसके बाहर आनेका कारण समझ गई।

मैं—"अब क्या करोगी तुम?"

नलनी—"चलो हम तुमरा नलपर हाथ धोयगा।"

मैं—"चलो।"

नलनी—(मुस्कराकर) "मारेगा तो नहीं?"

मैं—"अरी नलनी! मुझे कांटोंमें न घसीट। अब मैं जंगली नहीं रहा। तूने मुझे पालतू बना लिया।"

सुखिया धीरे-धीरे नजदीक आ गई। मैं बाइसिकिल लेकर वहांसे खिसका।

नलनी (सुखियासे)—"जा धोती ले आ। बोल देना, ई धोतीपर दाल गिर पड़ा है। हम नलपर नहायेगा।"

सुखिया तानेके लहजेमें बोली—"ऊपर राम राम और बगलमें छुरी।"

नलनी—"चल दूर हो पराङ्मुखी।"

झिड़कनेको नलनीने उसे झिड़क दिया, मगर बादको बहुत शर्माई, क्योंकि मैं घूम-घूमकर देखता जाता था कि उसका सर नीचा हो गया और नलकी तरफ बढ़ता कदम रुक गया।

मैं दूसरे रास्तेसे मकानपर आया और चुपचाप भावेसे छः सात लंगड़े आम और लीचियां निकालीं और छोटी बाल्टीमें रखकर नहानेका बहाना करके बाहर निकल आया।

नलपर नलनी और सुखिया दोनों मौजूद थीं।

नलनी भूखी है अब घरपर खायेगी नहीं इसलिये उसको मैं आम खिलाना चाहता था। मगर शायद वह सुखियाकी वजहसे कुछ टालमटूल करे। इस ख्यालसे सुखियाकी पहले खातिर करना मुनासिब समझा और इसलिये उसे दो आम और लीचियां दीं। वह तिरहुतकी रहनेवाली थी। वह लगी अपनी बोलीमें पूछ-पाछ करने। नलनी भी इसकी बोलीको अच्छी तरहसे बोल लेती थी।

सुखिया—"ई की छई।"

मैं –"सुझई छेना"।

सुखिया—"ई अमिलीची हमरा कथिला दे ई छ।"

नलनी—"पराङ्मुखी! कथिला कथिला की करई छे। आज तोरा की भेलई हैगे। जनई छेना आमलीची की कइल जाई छे। जो ओन्ने बइस के खाले"।

सुखिया—"हां हां बुझई छी। हम हूं भले बुझई छी।"

नलनी मेरी चाल समझ गई थी और इसलिये उनसे

मेरे दिये हुए फलोंको सुखियाको लेनेके लिये मजबूर किया सुखियाने फलोंको ले तो लिया मगर वहांसे हटी नहीं, तब नलनीने बड़ी मायूसीके लहजेमें मुझसे बंगलामें कहा। मैं भी उसका जवाब अपनी टूटी-फूटी बंगलामें देने लगा।

नलनी—"तुमि बांगला तो जाने ना सेई तो मुशकिल।"

मैं—"कैनों?"

नलनी—"तोमार संगे आमार बंगला ते कथा कहिते इच्छा करिते छे।"

मैं—"तो बोलना किछु-किछु आमी बूझेची किन्तु भालो प्रकारे बोलते पारी ना।"

सुखिया हम लोगोंकी बातें ही सुननेके लिये नहीं हटी थी। मगर अब देखा कि नलनी चाल चल गई। सिर्फ उसके न समझनेकी वजहसे वह बंगलामें बातचीत कर रही है। तब हार मानकर वह बरतन धोनेके बहानेसे वहांसे चली गई। मगर मेरी तेज़ निगाहोंने देख लिया कि वह गई नहीं बल्कि दूर पेड़ोंकी आड़में छिप गई।

नलनी—"बंगला बहुत सहल है। तुम सीखता क्यों नहीं? देखो हम तुमरा बोली जानता है, सुखियाका बोली जानता है और अपना बोली जानता है। और तुम अपना बोली छोड़कर कई और बोली ठीकसे नहीं जानता।"

मैं—"सीख लूंगा। मगर तुम आम तो खाओ।"

नलनी—"अच्छा तुमरा बात नहीं टालेगा। एक ठो लिये लेता है।"

मैं—"नहीं, ये नहीं होनेका। तुम भूखी हो। जितना मै खिलाऊं तुम्हें खाना होगा।"

नलनी—"अच्छा अच्छा हम खालेगा। तुम काहेको इतना कष्ट उठाता है?"

मैं—"नहीं, मैं तुम्हें अपने हाथसे खिलाऊंगा।"

नलनी—"तो तुम भी खाओ फिर।"

हम दोनों नलके पास बैठे-बैठे आम खाने लगे। वह रह-रहकर किसीका बार-बार क़समें खाना और किसीका जबरदस्ती मिन्नत करके आम खिलाना। उसपर प्यारी-प्यारी तकरार और मीठी-मीठी झिड़कियां। हाय! लाख भुलानेसे भी नहीं भूलतीं।

नलनी—"तुम जायेगा कब?"

मैं—"मैं तुम्हें क्या भारू हो रहा हूं? क्या तुम यही चाहती हो कि मैं यहांसे जल्दी चला जाऊं?"

नलनी—"सो बात नहीं। हम तो चाहता है तुम यहीं स्कूलमें पढ़ो।"

मैं—"अब तो मैं पास हो गया। कालिजमें पढ़ूंगा। यहां कालिज कहां?"

नलनी—"तो तुम पास हो गया। तुमरा मां बोलता था कि जब तुम पास होगा तब तुमरा ब्याह होगा।"

मुझे कभी स्वप्नमें भी अपनी शादीका ख्याल नहीं हुआ था। उसकी इस बातसे यकायक दिलपर बिच्छूके डङ्क-सा लगा। मैं तिलमिला उठा। गला भर आया, बोलना चाहा मगर आवाज़ न निकली।

नलनी—"बोलो तुमरा ब्याह कब होगा?"

मैं—"कभी नहीं?"

नलनी—"सो कैसे?"

मैं—"देख लेना, मैं शादी कभी करूंगा नहीं।"

नलनी चौंक पड़ी। उसकी आंखोंमें एक अपूर्व ज्योति चमकने लगी। उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये। उसका बदन कांप रहा था। थोड़ी देरतक मुझे अचरजमें देखती रही। फिर भी उसे विश्वास न हुआ, तब बौखलाकर पूछ बैठी। मगर जोशमें अपनी ही बोलीमें बोल गई।

नलनी—"माई री! सत्ति ब लो।"

मैं—"क़सम क्यों खिलाती है? मेरी सच्चाई झुठाई खुद ही मालूम हो जायेगी।"

नलनी—"तो फिर ईश्वर तुमको बङ्गाली काहे न बनाया?"

मैं—"क्योंकि यह काम तुम्हारे मत्थे छोड़ दिया है।"

वह मुस्कुरा पड़ी और जोशमें मेरी उंगलियोंको जो अबतक उसके हाथमें थीं, दबा बैठी। और फिर झेपकर सर नीचा कर लिया। वैसे ही सुखिया आई। उसके साथ वह चली गई और घबड़ाहटमें नहाना या कपड़े बदलना भी भूल गई।

---

[११]

"लिखा उस बुतने है नामा यकीं आता नहीं क़ासिद
ज़रा हम पहले उनके हाथकी तहरीर देखें तो।"

ईश्वर यह क्या ! जिधर निकलता था, उधर बदनामी ही बदनामी। उस छोटेसे नगरमें चारों तरफ मेरे और नलनीके नाम एक साथ अब कहे जाने लगे। हरेकके ख्यालमें मैं आवारा, बदमाश और बदचलन था और नलनी पापिनी और कुलटा थी। हत् तेरे प्रेमको ! न जाने किस कम्बख्तका शाप पड़ा है कि तेरा रास्ता कभी सीधा नहीं रहने पाता। कभी बेचैनी तड़पाती है, कभी रुखाई सताती है, कभी बेवफाई रुलाती है, कभी डाह जलाती हैं, कभी

बदनामी जान लेती है और फिर विरह और वियोग तो सत्यानास ही करके छोड़ते हैं।

जब नलनीसे प्रेम नहीं था और वह रातोदिन मेरे साथ खेला करती थी तब किसी कम्बख्तने हम दोनोंकी तरफ उंगली तक न उठाई। मगर जबसे आपसमें प्रेम हुआ और जब हम लोग खुद एक दूसरेसे मिलनेमें डरते थे, बोलनेमें हिचकते थे तो सभी देखनेवालोंकी आंखें फूट गईं और निगाहें बदल गयीं, और इस बदनामीने बिना वियोगके आपसमें वियोग पैदा कर दिया। नलनीका दर्शन मिलना भी बन्द हो गया, क्योंकि दरवाजेपर आनेसे अब वह घब-ड़ाने लगी और मैं भी सड़कपर निकलनेसे डरने लगा। मेरे ख्यालमें वह वियोग बड़ा ही तीव्र और प्राणघातक होता है जिसमें दोनों प्रेमी पास ही रहते हों फिर भी एक दूसरेको देखनेके लिये तरसते हों इसकी व्यथाको किसी प्यासेके दिलसे पूछो जिसकी प्यासके मारे जान जाती हो और उसके सामने पानी रक्खा हो मगर उसे वह छूनेतक भी न पाता हो।

मैं दिन-रात अपने ही कमरेमें सड़ा करता था। बाहर निकलनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। कभी-कभी बङ्गला सीखनेकी कोशिश करता था। इसी बीचमें मेरी शादीकी

हर तरफ़ बात होने लगी। जिन-जिन लोगोंको पिताने पहले यह कहकर टाल दिया था कि लड़का जब इन्ट्रेंस पास होगा तब उसका ब्याह करूंगा, वह सब अब आकर पिताकी गर्दन दबाने लगे। यहां तक कि मेरी शादी भी एक जगह तै हो गई। मगर नलनीके प्रेममें मैं ऐसा अन्धा था कि उस समय इन्द्रासनकी परी भी उसके आगे बुरी मालूम होती। तब भला मैं किस तरह शादीके लिये राजी हो सकता था? इसलिये मैंने दिलमें ठान लिया कि पिताकी आज्ञा मैंने कभी उल्लङ्घन नहीं की है मगर अब कुछ हो शादीके बारेमें अपनी ही ज़िद्दपर रहूंगा। बलासे वह नाराज हो जायें या घरसे निकाल दें। सब मुसीबतें झेल लूंगा, मगर शादी न करूंगा।

मैं सोचता था कि इस शादीको तोड़नेकी कौन-सी चाल चलूं। कुछ समझमें न आया। अन्तमें परेशान होकर पिताके दोस्तोंको लिखा कि पिताको वे लोग लिखें कि मैं शादी नहीं करूंगा। अगर ज़बरदस्ती की जायेगी तो मैं जहर खालूंगा।

चौथे दिन मेरे खतोंके जवाब पिताके पास आये। उन्होंने मुझे बुलाया। मैं डरते-डरते सामने गया।

पिता—"यह तुमने इन लोगोंको लिखा था?"

मैंने सर नीचा कर लिया और चुप रहा। उन्होंने फिर पूछा। मैं ने दबी जबानमें कहा 'हां'। वजह पूछी, मैं भाग आया। शादी टूट गई। आया हुआ तिलक वापस कर दिया गया। मगर पिताका मन मुझसे कुछ मोटा हो गया।

मैं पिताकी नाराजीपर बहुत पछता रहा था। एक दिन रातको अपने हातेमें अकेला परेशानीमें बैठा हुआ था। कई दिनसे मैंने नलनीको नहीं देखा था। इतनेमें नलनीके गाने-की आवाज सुनाई दी। वह अकसर अपने कोठेपर हारमो-नियम बजाया करती थी और मामूली गाने गाती थी। मगर आज उसके गानेका मतलब ही कुछ और था। वह गाती न थी बल्कि गानेके बहाने वह अपनी कोई खोई हुई चीज़ ढूंढ़ रही थी। मैं गौरसे सुनने लगा।

"फांकी दिये प्रानेर पाखी उड़े गैलो आर एलो ना
बोलो सखी कोथा जावो, कोथा गिये पाखी पावो
पूछिसे के खबर देवो, आर एलो ना।
एमन धनी के सहरे, आमार पाखी राखे घरे?
घरे मेरे केड़े नेवो, आर देवो ना।"

इतना सुनते ही मैं बेचैन हो गया और बदनामीके डर-की परवाह न करके मैं परेशानीमें सड़कपर टहलने लगा।

नलनीने मुझे देख लिया। उसने गाना बन्द कर दिया और सुखियाको पुकारा।

पांच मिनट बाद सुखिया मेरे पास आई और मुस्कुराकर अपनी बोलीमें बोली जिसका मतलब यह था।

सुखिया—"कुछ दो तो तुम्हें एक चीज दूं।"

मैं—"कौनसी चीज ?"

सुखिया—"नहीं, पहिले देनेका वादा कर लो तब बताऊंगी।"

मैं—"अच्छा दूंगा।"

उसने आंचलसे हाथ निकालकर एक काग़ज़ दिखाया। मैं खुशीसे उछल पड़ा और दौड़कर घरसे एक रुपया लाकर उसके हाथपर रख दिया और कहा।

मैं—"अच्छा अब तो खत दे दो।"

सुखिया—"मैं रुपया न लूंगी। जो नलनीको तुमने दिया है वही लूंगी।"

मैं—"मैंने नलनीको कुछ भी नहीं दिया है।"

सुखिया—"क्यों झूठ बोलते हो ? दिलपर हाथ रखकर देखो।"

मैं—"बेशक दिल अलबत्ता दिया है। और इसके सिवाय कुछ नहीं।"

सुखिया—"तो उसे और जरूरत ही क्या थी? वह सब कुछ पा चुकी।"

मैं—"तो क्या तुझे भी दिल चाहिये?"

सुखिया—"जो कहना था वह कह चुकी।"

मैं—"अच्छा रुपया ले लो, दिल बहुत मिल जायेंगे।"

सुखिया—"नहीं दिल बड़ी मुश्किलसे मिलता है; रुपया अलबत्ता हर जगह मिल सकता है।"

उसकी यह बात सुनते ही मेरे कान खड़े हो गये। मैं अचरजमें उसको देखने लगा। उसकी आंखें नीची थीं। सूरतसे भोलापन टपक रहा था। आवाज़में कपकपी थी। उसने मेरे हाथमें खत और रुपया दोनों दे दिये और बोली।

सुखिया—"नलनीने तुमसे कुछ निशानी मांगी है।"

मैं—"अच्छा कल ले जाना और मेरे लिये भी कुछ मांग लाना।"

सुखिया—"अच्छा, मगर तुम अपना वादा न भूल जाना।"

इतना कहकर वह लौट गई और धीरे-धीरे आगे चली और मैं खत लेकर उछलता हुआ अपने कमरेमें चला गया।

———

[१२]

"प्रेम तरंगे नाना रंगे ।
फखन[1] हांसाय फखन फांदाय[2] ।"

फागजपर घड़े-घड़े छापके अक्षरोंमें सिर्फ इतना ही लिखा हुआ था कि—

"भाई तुमि फेमन आछअ ।
आमि भाल थाकी ।
आपनार हाल लिखअ । इति
तोमार—
नलनी"

अब मालूम हुआ कि नलनीने मुझे बंगला सीखनेके लिये क्यों जोर दिया था । मैं उसी वक्त उसका जवाब लिखने बैठा और आधी राततक दस बारह सफे लिख डाले । मगर जब ख्याल हुआ कि अगर नलनीकी लापरवाहीसे कहीं यह खत किसी दूसरेके हाथमें पड़ जाय तब तो ग़ज़ब हो हो जायगा । उसकी भी जान जायेगी और मैं भी मुसीबतमें पड़ूंगा । बस मैंने उसको फाड़ दिया ।

सुबहको बाज़ारसे एक अंगूठी ख़रीद लाया और जब

१ कभी २ रुलाता है ।

सुखिया आई तो मैंने नलनीके पास उसे भिजवा दिया। उसने मुझे नलनीके हाथका काढ़ा हुआ एक रूमाल, एक चूड़ी और एक खत दिये। इसमें वही बात लिखी हुई थी जो पहले खतमें थी। फिर मैं जवाब लिखने बैठा और सोचा कि इस तरह लिखूं कि अगर खत पकड़ भी जाये तो यह मालूम हो कि किसी लड़कीने अपनी सहेलीको लिखा है जिसमें दोनोंकी बचत रहे। इसलिये ऐसा पहिले लिखना बहुत मुश्किल मालूम हुआ क्योंकि मैं ठीक तरह बङ्गला जानता न था तो भी छः सफे लिख डाले। अब ख्याल आया कि इसे नलनोके पास भेजूं किस तरह। सुखियाके हाथमें इतना बड़ा प्राणघातक हथियार देना ठीक नहीं। मुमकिन है कहीं वह लापरवाहीसे, पाजीपनसे, लालचसे या डाहसे कोई आफत न खड़ी कर दे। इसलिये शामको बड़ी हिम्मत करके टैनिस रैकेट और गेन्द लेकर नलनीके मकानके पास एक सरकारी इमारतकी दीवालसे खेलने लगा। नलनी धीरे-धीरे अपने दरवाजेपर आई। मैंने खेलते-खेलते एक दफे गेन्द उसके पास फेंक दिया। उसको उठानेके लिये मैं दौड़ा। उसने गेन्द उठाकर मेरे हाथमें दिया और मैंने चुपकेसे उसके हाथमें खत रख दिया और भाग गया।

आध घण्टेके बाद सुखिया एक बड़ा-लम्बा चौड़ा खत लेकर मेरे पास आई। मगर अफ़सोस वह बहुत जल्दीमें लिखावटके हर्फोंमें लिखा हुआ था। इसलिये सिवाय एक जुमलेके, जिसका मतलब यह था कि 'मेरी आंखोंके तारे! तुम्हारे खतने मेरे धधकते हुए कलेजेको शीतल कर दिया' मैं और कुछ पढ़ न सका।

मुझे मारे खुशीके पागल बनानेके लिए यही एक जुमला काफी था। तो भी मैं पूरा खत पढ़नेके लिए बेचैन था। जब किसी तरह उसे पढ़ न पाया तब हारकर मैंने नलनीका नाम उसमेंसे फाड़ दिया और एक बाबूसाहबके पास उसे ले गया, जो बङ्गला जानते थे। मैंने उनसे कहा कि देखो तो इसमें क्या लिखा है। यह कागज इसी सड़क-पर पड़ा हुआ मुझे मिला है।

वह हजरत बड़ी देरतक मन-ही-मन खत पढ़ते रहे। लिखनेवालीको भांप लिया। मैं दुनियांको चालें उस वक्त समझता न था। वह खत पढ़नेका बहाना कर रहे थे मगर दिल-ही-दिलमें कुछ सोच रहे थे। आखिरमें उन्होंने उस कागजको अपने कब्जेमें करनेके इरादेसे मुझसे कहा कि खतको छोड़ जाओ। रातको इतमिनानसे पढ़कर सुबह बतलाऊंगा। इस वक्त यह पढ़ा नहीं जाता। यह सुनते ही

मैं घबराया। जीते जी उस खतको किसी दूसरेके हाथमें नहीं छोड़ सकता था। मैं इतना कहकर कि "वाह! कैसे नहीं पढ़ा जाता। देखो मैं तो यहाँतक पढ़ लेता हूं" झट उनके हाथसे कागज छीन लिया और इधर-उधरकी बातें कर भाग आया।

शामको मैं सड़कपर आया। देखा तो बाबूसाहब वहीं टहल रहे थे। धीरे-धीरे मेरी गर्दनमें उन्होंने हाथ डाल दिया और अपने साथ मुझे लिये हुए नलनीके मकानकी तरफ बढ़े। बातें करते-करते दो एक दफे उन्होंने मेरा नाम जोरसे लिया। इतनेमे नलनीने खिड़की खोल दी और उसी जगह कुछ ढूंढ़नेके बहाने खड़ी रही। अब बाबूसाहब-ने नलनीको दिखाकर मुझे लिपटा लिया और उसे सुनाकर 'आमार नयनतारा' 'जीवननाथ' इत्यादि उन्हीं प्रेमसूचक शब्दोंमें मुझे सम्बोधन करने लगे, जिन शब्दोंमें नलनीने मुझे अपने पत्रमें सम्बोधन किया था। मैं सन्नाटेमें आ गया। शर्म और डरके मारे थर-थर कांपने लगा। निगाह नीची हो गई। पैर वहीं गड़ गये। खिड़की जोरसे बन्द हो गयी। समझा कि नलनी यह जानकर कि उसका भेद मैंने दूसरेको बता दिया मुझसे खफा हो गई।

तब मैं चोरकी तरह अपने कमरेमें मुंह छिपाये रहा।

नलनीके सामने फिर सड़कपर निकलनेकी हिम्मत न हुई। तीसरे दिन कालिजमें पढ़नेके लिए इलाहाबाद जानेकी मेरी तय्यारी होने लगी। स्टेशन जानेके वक्त मैं नलनीको एक नजर देखनेके लिये डरते-डरते सड़कपर गया। सुखिया मुझे देखते ही भीतर दौड़ गई। वैसे ही खिड़की खुली। मगर तुरन्त ही फिर बन्द हो गई। उफ! बेशक मुझसे नलनी बहुत खफा है। उसे मेरी सूरततक देखना नागवार है? मैं सर लटकाये हुए स्टेशन चला आया।

गाड़ी छूट गई। नलनीसे अब न रहा गया। खफा होनेपर भी उसका बस अपने दिलपर न चला। वह मकान-से बाहर दूर चली आई। और आकर रेलके तारके पास खड़ी हुई गाड़ीका इन्तजार करने लगी। ज्यों ही मेरी उसकी चार आंखें हुईं उसने मुझे बाल सम्भालते हुए प्रणाम किया और मैंने रूमालसे पेशानीका पसीना पोछकर जवाब दिया। गाड़ी निकल गई। नलनी आंखोंसे ओट हो गई और मैं खिड़कीपर हाथ रखकर मुंह छिपाये हुए रोने लगा।

---

[१३]

"ढाई अक्षर प्रेमका पढ़ै सो पण्डित होय"

मेरे कालिजमें प्रथम और द्वितीय श्रेणीके सिवाय तीसरी श्रेणीके लड़के लिये नहीं जाते थे। युक्तप्रदेशके सभी होनहार और तेज लड़के इसी कालिजमें आते थे। हमारे स्कूलके और तीन लड़के जो द्वितीय श्रेणीमें निकले थे वे भी यहीं आये। उस साल मेरे दर्जेमें अस्सी लड़के थे जिनमें साठ प्रथम श्रेणीके और बीस द्वितीय श्रेणीके थे। प्रथम श्रेणीवालोंका दिमाग आस्मानपर चढ़ा रहता था। हम लोगोंसे सीधे मुंह बात नहीं करते थे। और मैं तो सबसे आखिरमें भरती हुआ था। इसलिये उस वक्त सबसे नीचा समझा जाता था।

मगर स्त्रीके प्रेमसे उत्साहित होकर पुरुष दुनियामें जो न कर डाले वही थोड़ा है। सिर्फ इतना ही ख्याल कि जिस बालिकाको हम प्यार करते हैं वह भी हमको चाहती है—हमारे कलेजेको आनन्दसे बासों उछाल देता है। हमारी हिम्मतको चौगुनी बढ़ा देता है और तब हम दुनियामें ऐसे-ऐसे मुश्किल काम कर डालते हैं कि दुनिया चकित होकर हमे पराक्रमी, साहसी और तेजस्वी कहने लगती है। तभी

तो फरहादने शीरींके प्रेमसे उत्साहित होकर पहाड़-का-पहाड़ खोद डाला।

इसी तरहसे नलनीके प्रेमने मेरे जीवनमें एक नया परिवर्तन कर दिया। इसने मेरी साहित्यिक दृष्टि खोल दी। हृदय अनुभवी और विचार तीक्ष्ण कर दिये। मेरा जीवन काव्यमय हो गया। दिन-रात मेरा दिमाग विचार-समुद्रमें गोते लगाया करता था। आंखें प्रकृतिकी छटाओंको निहारा करती थीं। जो बातें, जो भाव, जो विचार बी० ए० के लड़कोंको पढ़ाये और सुझाये जानेपर भी बहुतोंको उनका पूरा ज्ञान नहीं होता वे सब मुझे आईनेकी तरह आप-से-आप साफ दिखाई पड़ने लगे।

मैं कवि औपन्यासिक और नाटककारोंके ग्रन्थोंमें भावोंकी असलियत और थाह ढूंढ़ने लगा। मुझे प्रधान लेखकोंकी पुस्तकोंमें शान्ति मिलने लगी; क्योंकि उन्हींमें अपने हृदयकी व्यथा और नलनीके हृदयका वर्णन पाता था। जिसमे नायक-नायिका प्रेम, विरह, बेचैनी, मिलन, बातचीत, मेरी और नलनीकी तरह नहीं होती थी उनको मैं फेंक दिया करता था और कभी-कभी अस्वाभाविक कहकर फाड़ दिया करता था। मेरी बातोंपर मेरे साथी हँसते थे। मगर जब मैं अपने प्रोफेसर मिष्टर शेलीसे इन बातों-

पर तर्क करता था तो वह मेरा ख्याल सही बताते थे और शाबाशी देकर कहते थे कि ये लेखक अज्ञानी और नीचे दर्जेके हैं। इनके पढ़नेमें वक्त मत खराब करो। इनमें तुम्हें सच्चा और खरा भाव कहीं नहीं मिलेगा।

इन बातोंसे मिष्टर शेलीकी श्रद्धा मुझपर दिनों-दिन बढ़ती गई। एक दिन वह पूछ बैठे कि तुम कुछ लिखते भी हो। मैंने कहा 'नहीं।' मगर अब लिखनेका कुछ-कुछ जी चाहता है। इसपर उन्होंने बहुत जोर देकर कहा कि "तुम लिखो और जरूर लिखो। इस काममें तुम्हारे ही ऐसे आदमीको सफलता मिल सकती है। मगर खबरदार! अस्वाभाविक घटना, चरित्र या बातें भूलकर भी लिखनेकी कोशिश मत करना। ऐसी किताबें मामूली पाठकोंके लिये होती हैं। तुम प्रकृति, भाव, घटना और चरित्रोंकी सत्यता लिये हुए रोचकता पैदा करनेकी कोशिश करो। जमीनपर चलो। बालूपर मकान न बनाओ। और प्रधान लेखकोंकी चुनी हुई किताबोंको पढ़ो।"

तबसे मैं नलनीके वियोगमें अपनी ही व्यथा लिख-लिखकर पत्रोंमें भेजने लगा, क्योंकि इसमें मेरी बेचैनीको कुछ ठंढक पहुंचती थी और इसीमें हमारे प्रोफेसर साहबकी आज्ञाओंका ठीक-ठीक पालन भी होता था। मगर वे

सब एक-एक करके वापस आ गये, इसलिये कि बालकों और स्त्रियोंके पढ़ने योग्य नहीं थे। मैं उनको लेकर मिष्टर शेलीके पास गया और उन्हें पढ़कर सुनाया। वह बहुत खुश हुए और बोले कि बालक! अगर तू विलायतमे होता तो बड़ा नाम और धन कमाता। तब मैंने कहा कि यहां तो कोई इन्हें छापता भी नहीं है। उन्होंने जवाब दिया कि अभी यहांके लोग भावकी सच्चाईकी कदर करना नहीं जानते। कुछ परवाह नहीं, तुम हिम्मत मत हारो। प्रधान लेखक होनेके सब लक्षण मैं तुममें पाता हूं। मैंने दिलमें कहा कि ऐसा कोई लक्षण मुझमें पैदा भी हो गया हो तो उसकी जन्मदाता नलनी है।

इसी तरह मेरा साहित्यिक ज्ञान दिनोंदिन बढ़ने लगा। लड़के सब मुझको पागल और खब्ती समझते थे। मगर पहिले ही सालके इम्तहानमें अपने ऊपरके सब द्वितीय श्रेणीवालों और छप्पन प्रथम श्रेणीवालोंको नीचे गिरा दिया और मैं प्रथम बेंचपर आ गया। ऊपरके चार लड़के जो युनिवर्सिटीमे नामी थे और वजीफे पाते थे अब वे भी अपनी-अपनी जगहपर मुझसे घबराने लगे। यह सब आशापूर्ण प्रेमकी करामात थी।

इसी बीचमें फिर मेरी शादीकी बातचीत होने लगी।

मैंने पिताको लिखा कि जबतक मैं बी० ए० पास न कर लूंगा तबतक शादी कदापि न करूंगा। ताकि इसी बहाने यह बला टले, आगे देखा जायगा। मगर डरके मारे पिताके पास न दसहरे और न बड़े दिनमें ही गया। पूरे सालभरके बाद नलनीसे मिलनेके लिये दिलमें हजारों उमंगें लिये हुए पिताके पास रातके वक्त पहुंचा।

खाना खानेके बाद जब मैं चारपाईपर लेटा वैसे ही किसीने कहा कि नलनीकी शादी हो गई। यह सुनते ही मेरे कलेजेमें गोली-सी लगी। मैं तड़फ उठा और हाय! कहकर पट्टीपर सर पटक दिया।

---

[१४]

"इश्कने गालिब निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे कामके।"

मैं अन्धेरेमें था। इसलिये मेरे चेहरेकी हालत कोई देख न सका। दिल टुकड़ा-टुकड़ा हो रहा था। मुद्दतोंके अरमान चूर-चूर हो गये थे। मैं पागलोंकी तरह चारपाई-से उठ-उठ पड़ता था। आंगनमें टहलने लगता था। ऐसा मालूम होता था कि कोई मेरा दम घोंट रहा है। लोगोंने

मैं नदीके किनारे सोचमें डूबा हुआ खड़ा था। चारो तरफ ..
छाया हुआ था। मगर मेरे दिलमें खलबली मची हुई थी। चांदनी
साफ छिटकी हुई थी।   [पृष्ठ

पूछा क्यों इतने परेशान हो ? मैंने कहा—मैं बाहर लेटूंगा। यहां गर्मीके मारे बेचैन हूं।

बाहर अकेली मेरी चारपाई पड़ी थी। दो घण्टे हो गये मगर मेरी बेचैनी दम-बदम बढ़ती ही गई। अन्तमे घबरा-कर उठ खड़ा हुआ और बिना कुछ सोचे-समझे एक तरफ चल दिया।

बारहका घण्टा बज रहा था। मैं नदीके किनारे सोचमें डूबा हुआ खड़ा था। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। मगर मेरे दिलमें खलबली मची हुई थी। चांदनी खूब साफ छिटकी हुई थी। मगर मेरे लिये रात अन्धेरी थी। दुनियां अन्धेरी थी। उम्मीदें अन्धेरी थीं। जिन्दगी अन्धेरी थी। सब चीजें अन्धेरी थीं। जिसपर इतना भरोसा, इतना एतबार, इतना गुमान था, जिसको हर तरहसे अपनी समझे हुए था, वह पराई निकल गई। अफ-सोस! अब जीऊं तो क्योंकर जीऊं ? नलनी अब मेरी नलनी नहीं रही। यह ख्याल रह-रहकर मेरे दिलमें बरछियां चलाने लगा। मैं अन्धा हो गया। दीन दुनिया सबका ख्याल जाता रहा। कलेजेमें आग धधकने लगी। ईश्वर यह कैसे शान्त हो ? गंगाकी लहरें बोलीं कि आओ मेरी गोदमें आओ, तुम्हें थपकियां देकर हमेशाके लिये आराम-

से सुला दूंगी। आती हुई रेलकी घरघराहट दूरहीसे चिल्लाई कि तुम कहीं न जाओ, बस मेरे रास्तेमें खड़े हो जाओ, मैं तुम्हारे तड़पते दिलको एकदम पीसकर तुम्हारी बेचैनी अभी दूर किये देती हूं। मैं घबराकर जल्दी-जल्दी रेलके पुलपर चढ़ गया और बीच धारेकी तरफ बढ़ा ताकि दोनों ग्राहकोंमे जिसका जल्दी दाव चल जाय वही मुझे ले ले।

गाड़ीकी घरघराहट सुनकर पुलका रखवाला हरी बत्ती लिये हुए ज्योंही गुमटीसे निकला वैसे ही वह चिल्लाया कि बीच पुलपर कौन जाता है। हटो, गाड़ी आती है। मैं ठिठुक गया, उसने फिर घुड़की बताई। मैं सटपटाकर लाइनसे हट गया। गाड़ी निकल गई। उसने आकर मेरा हाथ पकडा और कहा कि नशेमे हो क्या? देखा नहीं कि गाड़ी आती थी?

मुझसे कुछ भी करते-धरते न बन पड़ा। सिर्फ रुक-रुककर इतना ही कहा कि—

मैं—"नदीमें न कहीं गिर पड़ूं, इसीलिये बीचमें चल रहा था और दूसरे मैंने समझा कि गाड़ी आती नहीं बल्कि जाती है। इसीलिये बेफिक्र था।"

मेरी आवाज सुनते ही उसने मुझे पहचान लिया

क्योंकि पहले वह मेरे यहां कुछ दिनोंतक नौकर रह चुका था। वह बोल उठा।

"भइया! तुम यहां कहां?"

मैं—"गया था एक जगह दावत खाने वहींसे आ रहा हूं। मगर मकानका रास्ता भूल गया। इसीलिये इधर चला आया।"

वह—"तो चलो मैं तुम्हें पहुंचा दूं।"

इससे जान छुड़ानेकी सैकड़ों तरकीबें कीं, मगर उसने एक न मानी और मुझे मेरे मकानतक पहुंचा गया। और मैं चुपकेसे अपनी चारपाईपर लेट गया। मेरा उस दिनका पागलपन किसीको नहीं मालूम हुआ।

जो काम जोशके प्रथम उबालमें हो जाता है वह फिर बादको सैकड़ों उपाय करनेपर भी नहीं होता। इसलिये कोशिश करनेपर भी फिर उस दिनकी तरह मेरे दिलकी आगमें वैसी लपट नहीं उठी, मगर आग भीतर-ही-भीतर सुलगती रही। नलनी अब भी वहीं थी। उसकी मौजूदगी मेरी जलनको और भी तीव्र बनाए हुई थी।

एक बार मैं नलनीसे ज़रूर मिलना चाहता था। प्रेम-की खातिर नही, बल्कि उसकी निशानी और उसके खतोंको लौटानेके लिये—उसको जी भरके फटकारनेके बाद उसे

आखिरी सलाम करनेके लिये, मगर मिलना कैसे होवे सुखिया तो हैजेमें चल बसी और मुझसे नलनीकी तरफ देखा भी नहीं जाता था।

मेरी उम्मीदें टूट गईं। मेरी तेजी जाती रही। मेरे उत्साह भङ्ग हो गये। मैं निर्जीव-सा हो गया। मुझे कुछ खबर नहीं कि कब नलनीकी खिड़की खुलती है, कब नहीं। कभी-कभी मैं दूर मैदानोंमें निकल जाता था। कभी अपने हातेमें अकेला बैठा हुआ अपनी फूटी किस्मतपर आंसू बहाया करता था।

इसी तरह मेरी छुट्टी खतम होनेपर आई। इधर कई दिनसे बराबर मैं देखता था कि आठ बजे रातको एक लड़की अकेली मेरे नलपर रोज आती है और हाथ-मुंह धोकर चुपचाप चली जाती है। मुझे कभी शक भी न हुआ कि यह नलनी है, क्योंकि इसका पहनावा बंगाली लड़कियोंकी तरह न था बल्कि हम लोगोंके यहांकी औरतोंकी तरह था। मुझे स्त्री-जातिसे घृणा हो गई थी। इसलिये मैंने कभी उसे देखने या जाननेकी कोशिश भी न की। एक दिन योंही रातको अपने हातेमें अकेला बैठा हुआ था। नलनीकी निशानी और खत मेरे पाकेटमें पड़े थे कि वह लड़की फिर नलपर आई। इस दफे वह धीरे-धीरे मेरी

तरफ बढ़ी। मैं उठ खड़ा हुआ और अन्दाजमें कुछ आगे बढ़ा। वह बिल्कुल पास आकर खड़ी हो गई। मैंने पूछा, तू कौन है? उसने मेरी छातीपर सर रख दिया और रोने लगी।

बस, मेरी दबी हुई आग यकायक भड़क उठी। दिल धड़कने लगा। मेरी सुध-बुध जाती रही। मैं भूल गया कि नलनी पराई स्त्री है। मैं भूल गया कि चांदनी रात है। मैं भूल गया कि मेरे मकानकी सब खिड़कियां खुली हैं। मैं भूल गया कि कोई मुझे देख रहा है या नहीं। प्रेमके आवेशमें मैंने उसे गोदमें उठा लिया और पागलोंकी तरह उसका मुंह चूमने लगा। उसने मेरी गर्दनमें अपने दोनों हाथ डाल दिये और फूट-फूटकर रोने लगी और मैं भी रोने लगा।

यकायक मेरी नज़र उसकी मांगपर पड़ी। उसमें सेन्दुर देखते ही मेरे कलेजेपर सांप लोट गया। मैंने झटसे अपनी गर्दनसे उसके हाथ हटाये और कहा।

मैं—"नलनी, मैं कौन हूं तेरा? तू यहां क्या करने आई? तू जा यहांसे।"

वह और रोने लगी। रोते-रोते उसकी हिचकियां बन्ध गईं। उसने फिर मेरी गर्दनमें हाथ डालना चाहा। मैंने उसके हाथ पकड़ लिये।

मैं—"नलनी, नलनी, क्षमा कर, दया कर, मुझे अब मोहजालमें मत फंसा। ईश्वरके लिये तू जा यहांसे। मुझे भूल जा। समझ ले मैं दुनियांमें नहीं हूं।"

उसने सर हिलाया। मैंने उसकी उंगलीमें अपनी अंगूठी देखी। उसको मैंने निकालना चाहा। उसने झटसे हाथ खोंच लिया। तब मैंने अपने पाकेटसे रूमाल, चूड़ी और तीनों खत निकालकर उसके हाथपर रख दिये।

मैं—"ले, तू अपनी चीजें ले ले और तू उस अंगूठीको फेंक दे।"

उसने मुझे चूड़ी लौटा दी और कहा कि यह मेरी नहीं है। उस वक्त मुझे सुखियाका ख्याल आया कि अरे! क्या एक मामूली नौकरनी भी दिल रखती थी?

मैं—"नलनी,क्यों खड़ी है? तू लौट जा।"

नलनी—"नहीं अब घर लौटकर नहीं जाऊंगी।"

मैं—"तब कहां जाओगी?"

नलनी—"जहां तुम जाओगे।"

मैं—"हाय! जब यही ख्याल था तो क्या तू पराई हो जाती?"

वह फिर रोने लगी।

इतनेमें पिताने मुझे मकानके भीतरसे गुस्सेमें पुकारा।

ग़ज़ब हो गया। अब मेरे हवास ठिकाने हुए। देखा कि मेरे मकानकी सब खिड़कियां खुली हुई हैं। मैं वहांसे खिसका। नलनीने मेरा हाथ पकड़ लिया।

नलनी—"ठहरो, एक बात सुन लो।"

मैं—"नहीं, बस आखिरी सलाम लो।"

मैं हाथ छुड़ाकर उसे वहीं रोती हुई छोड़कर घरके भीतर भागा। यों तो नलनीसे पहिले बराबर मिलता ही रहा, मगर मेरा और उसका यही प्रथम प्रेम-मिलन था और यही अन्तिम। और हाय! अफसोस!! वह मिलन और और विछुड़न इस तरहसे?

पिता मुझे देखते ही आग हो गये, उनके मनमुटावका असली कारण अब जाना। जिस बातका उन्हें शक था उसीको शायद उन्होंने खुद अपनी आंखोंसे देख लिया या किसीकी शिकायतने उस वक्त उसे सच साबित कर दिया हो। इसलिये दिनभर खेलने-कूदनेका दोष लगाकर उन्हों-ने मुझे बेहद डांटा। उसी वक्त मेरे असबाब बांधे गये और रातहीकी गाड़ीसे मैं घर भेज दिया गया।

वही प्रेम जब आशाओंसे हरा-भरा था, मैं लाख होन-हारोंमें होनहार था, तेजोंमे तेज था। मेरे प्रोफेसर और साथी मेरे लिये बाजी लगाकर कहते थे कि युनिवर्सिटीके

इम्तहानमें नाम करेगा। वही प्रेम जब निराशाकी लूमें झुलस गया तब मैं लट्टुओंमें लट्टू और निकम्मोंमें निकम्मा हो गया। सब लोग मेरी हालतपर दिनोदिन तज्जुब करने लगे। यहांतक कि मैं एफ० ए० के इम्तहानमें फेल हो गया। फिर जब पिताके पास गया तब मालूम हुआ कि नलनीके मां-बाप प्लेगमें मर गए। वह ससुराल चली गई और उसका नाता उस नगरसे सदैवके लिये टूट गया। और मैंने भी नलनीको फिर कभी नहीं देखा।

[१]

"अफसुर्दगीके रंग यही हैं एक दिन ।
फिर दर्दे दिलकी मांगनी होगी दोआ मुझे ।"

प्रेमी, कवि और पागल तीनोंका दर्जा एक ही है, क्योंकि प्रेमी प्रेममें बुद्धि और समझ खो देता है, कवि सूक्ष्म विचारोंमे अपनेको भूला रहता है और पागल तो स्वाभाविक पागल हुई है। मगर इन तीनोंमें सबसे बढ़कर पागल मैं प्रेमीको समझता हूं, क्योंकि कविकी कल्पनाएं पातालसे लेकर आकाशतक विचरती जरूर है फिर भी नियमोंके बन्धनोंके भीतर ही रहती हैं, मगर प्रेमीके ख्यालातमें भला नियम, बन्धन या असम्भावनाओंका गुजर कहां ! जहां सूर्यकी किरण भी पहुंचनेके लिये तड़पती

रहती हो, जहां हवा भी जानेसे घबराती हो वहां भी प्रेमीके ख्यालात बेलाग, बेधड़क और बेरोक चले जाते हैं। इसके और इसकी प्रियतमाके बीचमें लाख असम्भावनाओंके पहाड़ खड़े हों, जिनके कारण वह स्वप्नमें भी अपनी हृदयेश्वरी-को पा नहीं सकता, तो भी इसके ख्यालात उन बाधाओंको चीरते फाड़ते, रौंदते-कुचलते, फांदते हुए अपनी प्राण-प्यारीके चरणोंमें आकर लवलीन हो जाते हैं और उसके दिलमें यही उम्मीद बंधी रहती है कि उसको प्यारी उसको मिलेगी। अगर वह चांदको भी चाहेगा तो भी वह चांदके पानेको असम्भव समझकर कभी उसके ख्यालको छोड़ नहीं सकता, बल्कि वह तो यही सोचेगा कि चांद मेरा है, वह मिल सकता है। मगर उसे पाऊं तो क्योंकर?-मिले तो कैसे? यह बातें पागलपनकी नहीं तो और कैसी हैं! इसीलिये तो प्रेमीको मैं आंखवाला अन्धा, समझदार बेव-कूफ, होशियार, दीवाना और पागलोंका सरताज कहता हूं।

इसी तरहसे एक दिन मैं भी नलनीके पीछे आंखवाला अन्धा था, मगर जब उसकी शादी हुई तब मेरी आंखें खुलीं और अपनी बेवकूफी देखी। अगर मैं बेवकूफ न होता तो नलनीको भूलकर अपनी न समझता। फिर आजके दि[illegible]

मुझे वियोग और डाहकी आगमें इस बुरी तरह जलना न पड़ता। अच्छा हुआ उस दगाबाजकी एक ही इम्तहानमें कलई खुल गई। जिसके प्रेममे इतनी भी ताकत न आई कि सामाजिक अड़चनों और लोक-रीतिके वन्धनोंको तोड़ सके, उस प्रेमपर क्या भरोसा? जबतक प्रेममे आदमी आत्म-समर्पण न कर दे तबतक वह सच्चा प्रेमी या प्रेमिका कहां हो सकता है? क्योंकि—

"लोककी लाज औ सोक प्रलोकको,
वारिये प्रीतिके ऊपर दोऊ।
गवको, गेहको, देहको,
जा तो सनेहमें हां तो करे पुनि सोऊ।
'बोधा' सुनीति निबाह करै,
धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोकको भीत डरात जो भीत तो,
प्रीति के पैंड़ परै जनि कोऊ।।"

इसलिये अगर किसी कारणसे नलनी मेरा साथ दे भी जाती तो वह भी, के दिनतक? आज निबाह हो जाता तो कल वह किसी मुसीबतके सामने आते ही मुझे धता बता-

कर दूर भागतो। खैर, दिलसे कांटा तो निकल गया, मगर बिसबिसाहट बाकी रह गई। प्रेम तो जाता रहा, मगर तबियतमें एक अजीब उचाट समा गई। सारी दुनिया मुझे दगाबाज और धोखेबाज दिखाई देने लगी। कभी प्रेमसे व्याकुल होकर, ईश्वरसे प्रार्थना करता था कि मुझे इस रोगसे छुटकारा दे। और अब जब छुटकारा मिला, तो तबियतकी उचाटसे मैं ऐसा ऊबने और घबराने लगा कि इसके आगे मैं पहलेकी मुसीबतमें पड़ा रहना ही बेहतर समझता था। मगर अब किसीको प्यार करनेके लिये वैसा भोला-भाला दिल कहांसे लाता? और तो और रही, अगर नलनी ही मिल जाती तो उसे भी अब मैं किसी तरह प्यार नहीं कर सकता था। जो एक दफे ठोकर खाता है वह कदम फूंक-फूंककर रखता है। मगर यह मालूम न था कि टांगें जब एक दफा ठोकर खाकर कमजोर हो जाती हैं, फिर लाख सम्भालनेपर भी ठोकर खा ही जाती हैं।

---

[२]

"किसी छूटे हुए कैदीको फिर वहशत समाई क्या?
वरना खुदबखुद हिलती है क्या जन्जीर जिन्दामें।"

जिस शादीमें दाम्पत्य-प्रेम होनेकी सम्भावना न हो

उससे तो शादीका न होना ही अच्छा। इसलिये जबतक मैं नलनीके प्रेममें फंसा हुआ था, तबतक मैं बराबर अपनी शादीसे इन्कार करता रहा, क्योंकि मैं समझता था कि नलनीको छोड़कर दूसरी लड़कीको मैं प्यार नहीं कर सकता। मगर जब नलनीने अपनी शादीके वक्त मेरा या मेरे प्रेमका कुछ भी ख्याल न किया तो अकेली नलनीहीकी तरफसे मेरा दिल नहीं हटा, बल्कि सारी स्त्री-जातिसे मुझे घृणा हो गई, और ऐसी कि मुझे लड़कियोंसे बाततक करना नागवार था। जब औरतोंकी तरफसे मेरे ऐसे ख्यालात थे तो अब मैं शादीके लिये क्योंकर राजी हो सकता था? पहले प्रेमके कारण शादी नहीं करना चाहता था और अब घृणाके कारण शादीसे भागने लगा।

"मेरी कारेली" ने भी औरत होकर अपने Vindetta 'विनडेटा' * नामक उपन्यासमें खुद औरतोंहीकी इस कदर बुराइयां, दगाबाजियां, बेवफाइयां दिखलाई हैं कि पढ़नेवाला अगर स्त्रियोंको पूजता भी होगा, तोभी वह पढ़नेके बाद औरतोंसे नफरत करने लगेगा। और मैं तो स्त्री-जातिसे पहिलेहीसे जला बैठा था। नाखून पाकर गञ्जेकी

---

* इसका अनुवाद प्रतिशोध' के नामसे हमारे यहांसे प्रकाशित हुआ है।—प्रकाशक।

जो हालत होती है, वैसी ही उन दिनों इस किताबको पाकर मेरी हुई। उसका एक-एक शब्द सीधे कलेजेमें घुस गया। पिताने शादीके लिये हर तरहसे मुझे मजबूर किया। दोस्तोंने मुझे लाख-लाख समझाया; मगर मैं किसी तरह राजी न हुआ। जब हिन्दू-विवाहका आदर्श ही प्रेम नहीं है, बल्कि केवल सन्तान-उत्पत्ति और गृहस्थी-का चलाना है, तो मैं ऐसे विवाहकी फांसी अपने गलेमें लगाना नहीं चाहता था, क्योंकि न मैं गृहस्थीके जञ्जालमें फंसना चाहता था और न सन्तानके लालन-पालनके झगड़ेमें पड़ना। कई भाई-बहिनोंकी मौत मेरे गोदमें हो चुकी थी। उनकी मृत्युके संकटसे उनकी अन्तिम दृष्टि मेरे कलेजेको टुकड़े-टुकड़े कर चुकी थी। पिताओंको अपने लड़कोंको स्कूलोंमें भर्ती करानेमें डिप्टी कलक्टरीकी नामजदगी करानेसे भी बढ़कर कोशिश करते देख चुका था। पढ़-लिखकर होशियार होनेपर ग्रेजुएटोंको नौकरी-की तलाशमें दर-दर ठोकरें खाते देख चुका था। अपनी बहिनोंकी शादियोंके लिये पिताको ऐरे गैरोंकी खुशामदें करते और हर जगह नाक रगड़ते देख चुका था। इन मुसीबतोंको देखकर मैं ईश्वरसे बराबर यही प्रार्थना करता था कि मुझे बेसन्तान रखना, मगर विवाहके जञ्जालमें

फंसाकर इन आफतोंमे न डालना। मैं नहीं समझता कि सन्तानके लिये लोग क्यों मरते हैं? क्या इसीलिये कि मेरा नाम चले? मगर यह मालूम नहीं कि उनके मरनेके बाद उनकी सन्तान द्वारा उनका नाम कितने दिन चलता है। अगर नाम ही छोड़नेका ख्याल है तो क्या इसके सिवाय और कोई तरकीब नहीं है? अगर कोई कहे कि नहीं है, तो मैं खाली कहकर नहीं बल्कि करके दिखला दूंगा कि हैं और बहुत-सी हैं। साहित्य-सेवाका अङ्कुर मेरे दिलमे उग ही चुका था, अब इन ख्यालातने उसे सींचकर अच्छा खासा पौधा बना दिया। इसलिये अब मेरे लिये साहित्य-सेवी होना जरूरी हो गया। उसी वक्तसे मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि सन्तानके अभावको साहित्य-सेवा द्वारा पूरा करूंगा और जो नाम सैकड़ों संन्तान होनेसे भी नहीं फैल सकता वह मैं साहित्य-सेवासे संसारमें फैलाऊंगा और छोड़ जाऊंगा। तभीसे मैं उस पौधेको शौकिया ही नहीं बल्कि विवश होकर दिनोंदिन पालने लगा।

मगर मेरा पौधा लाख कोशिश करनेपर भी बढ़ता हुआ नजर न आया, क्योंकि लेखनीका जोर और ताकत दिलके जोश और अरमानके साथ सब नलनी खाकमें मिला

गई। लेखक, चित्रकार और कवियोंका काम बिना प्रेमके नहीं चल सकता। फिर मेरे शून्य हृदयमें मेरा पौधा क्योंकर पनपे? जो प्रेम मेरे दिलमें साहित्यका अंकुर उगाकर मुझे छोड़ गया था अब उसीके लिये मेरा मुर-झाया हुआ प्यासा पौधा तड़पने और छटपटाने लगा।

अब मैं करूं तो क्या? प्रेम कहां पाऊं? प्रेमकी खातिर स्त्रियोंको मानना जरूरी है। मगर मेरा दिल कहता था कि स्त्रीजाति प्रेम करनेकी वस्तु ही नहीं है। यह ज्यादे-से-ज्यादे खेलने, दिल बहलाने और शारीरिक भूख बुझानेकी सामग्री है। इनसे आत्माको संतोष नहीं हो सकता, इनके ऊपर उत्तम भाव दिखाना वैसा ही है जैसे बहिरेके आगे गाना और अन्धेके आगे रोना। यह तो विलासिनी हैं। इसलिये कामिनी कहलाती हैं। यह प्रेम-भाव क्या जानें? प्रेमके ऊंचे ख्यालात क्या समझें? इनकी दोस्ती मतलबसे भरी, छलसे छनी, कपटसे लसी होती है। राजा दशरथ कैकेयीको कैसा प्यार करते थे, मगर हत्यारिन कैकेयीने उनके साथ कैसा सलूक किया? तुलसीदासजीने अपनी स्त्रीसे मिलने-के लिये जानकी परवाह न की। रातके वक्त, बढ़ती हुई नदीमें फांदे! मुर्देके सहारे पार निकले! सांपको कमन्दके धोखेमें पकड़कर कोठेपर चढ़े और यों जाकर स्त्रीका दर्शन

प्राप्त किया। मगर उस कठोर-हृदयाने उनकी कैसी आवो-भगत की कि उन्हींका दिल जानता होगा। यों कहनेको चाहे धमकी दृष्टिसे लाख कोई कहे कि स्त्रीने ज्ञान सुझाया और ईश्वर-भक्तिका उन्हें रास्ता बताया, वह क्या ज्ञान बताती जो ऐसे प्रबल प्रेमका अनुभव करनेके खुद अयोग्य साबित हुई। रागसे वैराग्य, प्रेमसे भक्ति तो होती ही है। जब संसारसे मन फटता है तभी भक्ति-भाव दिलमें पैठते हैं। तुलसीदासजी ज्ञानी हुए, भक्त हुए, अपने सौभाग्यसे — या इस देशके सौभाग्यसे। उस स्त्रीका क्या अनुग्रह? उसने तो उनके दिलको चूरचूर कर डाला था। अरमानोंको कुचल डाला था! मनसूबोंको मसल डाला था!! सच पूछो तो उन्हें जीते-जी मार डाला था!!! किन-किन उम्मीदोंसे भरे जानपर खेलकर वह उससे मिलने आये थे। क्या यही सत्कार पानेके लिये? अगर वह लापरवाह प्रेमके योग्य होती या उसके कठोर हृदयमे तुलसीदासजीके ऐसा चौथाई प्रेम होता तो उस वक्त वह उन्हें पाकर मारे खुशीके दीवानी हो जाती कि लेक्चर झाड़नेके लिये अक्ल लाती? जो आदमी एक पल भी अपनी प्रेमिकाके बिना रह न सके उसके दिलपर ऐसी चोट पहुंचे कि वह तलमलाकर उसके पाससे भागे, फिर मुड़कर जिन्दगीभर उसका मुंह न देखे

शान्ति पानेके लिये ईश्वर-भक्तिकी शरण ले! उफ!! निःसन्देह यह चोट वज्राघातसे भी बढ़कर होगी। इसका दर्द वही प्रेमी बता सकता है जो अपने धधकते हुए कलेजेको शान्त करनेके लिये भरा हुआ तमञ्चा अपनी खोपड़ीकी तरफ उठा रहा हो या जहरका प्याला अपने कांपते हुए ओठोंसे लगा रहा हो। इन सबूतोंपर भी मैं कैसे स्त्री-जातिकी तारीफ करूं या उसे प्रेमके योग्य बताऊं?

मगर तू धन्य है! स्त्री-जाति! तू लाख खोटी होनेपर भी संसारकी रोचकताओंकी जड़ है! तेरे बिना दुनियाका कोई काम चल नहीं सकता, तू ही पुरुषोंकी ताकत है, तू ही हिम्मत है। तू ही दौलत है और तू ही इज्जत है। गृहस्थी तू ही चलाती है, वैराग्य तू ही दिखाती है, सन्तान तुझीसे पैदा है, साहित्य तुझीसे पनपता है, प्रेम तू ही उभाड़ती है, काम तू ही भड़काती है, फिर तुझसे कैसे भागूं? और कबतक भागूं? दिलको नफरत तुझसे मुझे भगाती जरूर है, मगर कमबख्त नौजवानी नहीं भागने देती। साहित्य-सेवाका शौक भी यही कहता है कि प्रेमके लिये न सही तो कम-से-कम मेरी ही खातिर उनकी संगत कर। अब मैं किसकी सुनूं और किसकी न सुनूं? अगर किसी तरहसे कुछ घड़ीके लिये स्त्रीका संग करनेको राजी भी होता हूं

तो हमारा समाज कहता है कि खबरदार ! जबतक विवाह-को वेदीपर जिन्दगीभरके लिये किसी स्त्रीको साथिन नहीं बनाते हो तबतक मैं अपने जानेमें तुम्हें किसी स्त्रीके पास नेकनीयतीसे भी एकान्तमे हंसने-बोलने न दूंगा। इसलिये स्त्रीकी "सोसायटी" का कुछ भी मजा लेना चाहते हो तो विवाह करो, क्योंकि तुम्हे सिर्फ उसीके साथ एकान्तमे बैठने दूंगा और किसीके साथ नहीं।

क्या करता ? इन्हीं ख्यालातसे एक दिन परेशान होकर और घरवालोंको दिनोंदिन मेरे लिये फिक्रमन्द होते देखकर मैंने अपने दोस्त अहमदसे कहा कि मैं शादी करनेके लिये राजी हूं। फिर क्या था ? - यह खबर बिजलीकी तरह फैल गई और जिस तरहसे घोड़ा मोल लेनेवाले खरीदते वक्त जानवर परखते हैं उसी तरहसे लड़कीवाले आ-आकर मुझे जांचने और परखने लगे। यद्यपि पिताने अभी किसी-को इस बारेमें जबान नहीं दी तो भी यह बात न जाने कैसे शहरभरमें फैल गई कि मेरी शादी मेरे ही मुहल्लेमें एक जगह तै हो गई है और लड़का देखनेके लिये औरतें दावतके बहाने उसे अपने घर बुलानेवाली है। इस बातकी सचाई-झुठाई जब मालूम हुई, जब एक दिन "टेनिस" खेलनेको क्लब जानेके लिये मैं अपनी बाइसिकिल तीन बजे दिनको साफ़-

करने लगा तब चाचीने कहा कि आज खेलने मत जाओ, क्योंकि तुम्हें एक जगह दावत खाने जाना है।

मैं—"दावत तो रातको होगी,उसके लिये अपना खेलना क्यों बन्द करूं ?"

चाची—"नहीं, रातमें बाबूजी घरपर होंगे इसलिये तुम्हें इस वक्त वे लोग बुलायेंगे।"

मैं—"मगर यह कैसी दावत है ? मेरा वहाँ कभी आना जाना नही है, न उनके यहांसे मेरे यहां कोई आता-जाता है; दूसरे इस वक्तकी दावत और वह भी बाबूजीके चुपचाप !"

चाची कुछ न बोली। मैं वहांसे उठकर अपने हातेमें आया और लीचीके पेड़पर चढ़कर लीचियां खाने लगा। इतनेमें एक दाई आई और मुझको साथ ले चली। दिलमें यही सोचता जाता था कि खैर शादी तो फर्ज अदाईके लिये करूंगा, इसलिये मुझे इसकी परवाह नहीं कि दुल- हिन गोरी हो या सांवली ; खूबसूरत हो या बदसूरत। तो दूसरोंके मनकी बात क्यों ताड़ूं ? क्योंकि मुझे यकीन था कि कोई लड़की लाख खूबसूरत क्यों न हो, मगर मेरे दिलको वह मोह नहीं सकती ! इतनेहीमें एक कुएंपर चूड़ीकी झनकार हुई। नज़र उठाकर उधर देखा और देखते ही कलेजा थामके रह गया। उफ ! मेरी सारी

घ्रातव्येष्वपि किं? तदास्यपवनः
श्रव्येषु किं? तद्वचः॥
किं स्वाद्येषु! तदोष्ठपल्लवरसः
स्पृश्येषु किं? तत्तनुः।
ध्येयं किं? नवयौवनं सुहृदयः
सर्वत्र तद्विभ्रमः॥"

[अर्थात्—सबसे बढ़कर देखनेके लिये दुनियामें कौन सी चीज अच्छी है? कहते हैं कि सुन्दर आंखवाली स्त्रीका प्रेमसे दमकता हुआ चेहरा, सूंघनेके लिये क्या है? उसके मुंहका भाफ, सुननेके लिये क्या है? उसकी मीठी बोली; सबसे स्वादिष्ट चीज क्या है? उसके ओठोंका रस, छूनेके लिये क्या है? उसका कोमल अङ्ग, ध्यान करनेके लिये क्या है? सच्चे दिलसे उसकी नौजवानी। इसके सिवाय संसारमें सब चीजें वृथा हैं।]

वाहरी स्त्री-जाति! तेरी बलिहारी है! जिन-जिनको ज्ञानके लिये, पराक्रमके लिये, वैराग्यके लिये, एक-से-एक अलौकिक गुणके लिये सारी दुनिया पूजती है उनसे भी तूने अपनेको पुजवाकर छोड़ा। फिर मैं क्या? मेरी फिला-सफो क्या? मेरी घृणा क्या? तेरी एक ही चितवनके आगे

सबकी काया पलट हो गई। बेशक, मैं तेरा बड़प्पन मान गया। कठिन-से-कठिन विषय, गूढ़-से-गूढ़ ज्ञानकी थाह मनुष्य कोशिश करनेसे पा जाता है, मगर तू ऐसी गम्भीर है कि लाख बरस तेरे पीछे सर मारनेपर भी तेरी थाह नहीं मिल सकती। तू जीती मैं हारा, यह तूने मेरे घमण्डकी सजा दी, अपने अनादरका बदला लिया; जो भाव नलनी बरसों कोशिश करनेपर भी मेरे नासमझ और भोलेभाले हृदयमें न उभार सकी थी, वह कुंएपर पानी भरनेवाली एक तेरह बरसकी छोकरीने एक ही नजरमें मेरे समझदार, होशियार और खिलाफ दिलमें भड़का दिये। इसके आगे अब मालूम हुआ कि नलनीने तो प्रेमकी आग धीरे-धीरे सुलगाई थी, मगर इसने तो एकबारगी इसको जला दिया। उसकी आंच मीठी थी, मगर इसकी लपटमें उफ! बलाकी तेजी थी। कहां मैं मारे घृणाके स्त्रियोंसे भागता था और कहां मैं उस लड़कीको फिर देखनेके लिये इतना व्याकुल हुआ कि मुझे कुछ भी ख़बर नहीं कि दावतमें क्या खाया क्या न खाया? कौन सामने आया, कौन नहीं? किसने शोख़ियां दिखलाईं और किसने अठखेलियां? किसीने अपने हाथके काढ़े रूमाल दिये, किसीने पानके साथ रुपये थमाये; मगर मैं बिलकुल गुमसुम उल्लूकी तरह बैठा हुआ था, आंखें

खुली हुई थीं, मगर कुछ दिखाई नहीं देता था, अगर कुछ दिखाई देती थी तो बस, वही प्यारी चितवन! और सुनाई देती थी तो वही चूड़ियोंकी मीठी झनकार !!

मैं यही सोचता था कि वह पानी भरकर चली गई होगी। दूसरा घड़ा भरने आई होगी। वह भी अब भर चुकी होगी। अब तीसरा घड़ा भरने आयेगी। शायद इसके बाद फिर कुएंपर आवे या न आवे। जब पानीकी जरूरत पूरी हो जायगी तो वह वहां फिर क्यों आने लगी! यह ख्याल आते ही मैं घबरा उठा, और औरतोंकी दी हुई चीजें और रुपये वहीं उन्हींके घर छोड़कर वहांसे बदहवास भागा।

धड़कते हुए दिलके साथ उस कुएंके पास पहुंचा और बेचैनीके साथ उम्मीदभरी आंखोंसे चारों तरफ उसे ढूंढा, मगर कहीं उसका पता न पाया! घर आया, फिर लौटा, फिर आया और फिर गया। इसी तरह बीसों बार शामतक उस कुएंके पास आया और गया, मगर वह दिखाई न पड़ी। अन्तमे रातको यह दोहा पढ़ते सो गया।

अनियारे दीरघ नयन, किती न तरुनि समान।
वह चितवन औरे कछू, जिहिं बस होत सुजान॥

———

[४]

'नेक सी कंकरी जाके परै,

वह पीड़के मारे सुधीर धरै ना।

कैसे परै कल ऐरी अटू,

जब आंखिमें आंखि परै निकरै ना॥''

उस दिनसे न रातको नींद और न दिनको चैन। हर वक्त वही मनमोहनी सूरत और प्यारी चितवन आंखोंमें फिरने लगी। दस दिनतक मैं उसको उस गलीमें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गया, मगर अफसोस उसका कुछ भी निशान न मिला मेरे बार-बार उधर आने-जानेसे मैं उल्टे बदनाम हो गया। लोग मुझे देख-देखकर हँसते थे और ताना मारते थे कि यही हजरत हैं जिन्हें शादीसे नफरत थी और अब जिस दिनसे दुलहिन देख आये हैं, तबसे बदहवास इसी गलीमें चक्कर लगा रहे हैं। कोई कहता था क्यों न हो, लड़की ही ऐसी खूबसूरत है। अगर खूबसूरत न होती तो भला इनके पिता उस गरीबके घर इनकी शादी करनेके लिये क्यों राजी होते? मैं यह सुन-सुनकर जल उठता था और अपनी लगी शादीको कोसता था कि कम्बख्त ब्याहकी चर्चा भी इसी मुहल्लेमें होनेको थी, जिसकी वजहसे मेरे इधर आने-

जानेपर यह आफत पड़ी। सब आते-जाते थे, मगर मेरे ही लिये यह परहेज और रोक-टोक! कुछ नहीं, यह प्रेमकी बदनसीबी थी। इस कम्बख्तका रास्ता कभी सीधा नहीं होता। और यहां तो सर मुड़ाते ही ओले पड़े। सिर्फ आंख ही लड़ी थी। बातचीतकी नौबत ही नहीं आई थी। जान-पहिचान भी न हुई थी कि बाधा उपस्थित!

अब मुझे खुद ही उधर जाते झिझक मालूम होने लगी। सोचा कि, अच्छा उधर न जाऊंगा। मगर दिलको कैसे समझाता? रह-रहकर मैं उस गलीमें जानेके लिये मकान-से निकलता था, मगर अपने फाटकपर आकर खड़ा हो जाता था। आगे कदम नही उठते थे। वहीसे उधर आने-जानेवाले हर राहीको हसरत-भरी निगाहसे देखा करता था और बार-बार यही कहता था कि—

"इलाही नक्शे पाये गैर ही मुझको बना देता।
वह जाता कूये जानांसे मैं रहता कूये जानांमें॥"

मगर अब वह मुझे कहां देखनेको मिलेगी? यह भी तो नही जानता कि वह कौन है? कहांसे आई है? रहती होगी उसी जगह कहीं-न-कहीं जरूर। मगर घर नहीं मालूम। मैंने उसे पहिले कभी नहीं देखा था। शायद मेरा

दोस्त अहमद उसे जानता हो, क्योंकि मैं सालभरमें एक या दो दफा यहां आता हूं और वह हर छुट्टीमें आता है। मगर उससे पूछूं तो किस तरह पूछूं? यह ख्याल फजूल था, क्योंकि मर्दोंके दिलमें कभी प्रेम छिपाये छिप नहीं सकता। जरासा ही छेड़नेसे प्रेमी बेचारा अपने आप अपने दिलकी व्यथा उगलने लगता है। वह समझता है कि सुननेवाला मेरी सहानुभूति करेगा। मुझे संतोष और ढाढस देकर मेरी तकलीफको हल्का करेगा। मगर यह खबर नहीं कि लाख दिलीसे-दिली दोस्त क्यों न हो, कैसा ही कोमल हृदय क्यों न रखता हो, प्रेमकी कहानियोंपर हजार-हजार आंसू क्यों न बहाता हो; मगर प्रेमीकी बातें सुनकर हमेशा उसे वह बेवकूफ बनायेगा, ठट्ठा मारेगा, ताने और फब्तियां कसेगा और जलेपर मरहम लगानेके बजाय और भी निमक छिड़केगा। यही हालत अहमदसे कहकर मेरी हुई। पता-निशान तो खाक न मिला, हां दर्द अलबत्ता और बढ़ गया और शर्मके मारे मैं और भी मर गया।

क्या उसका ख्याल छोड़ दूं? मगर कैसे? वह ख्याल तो मुझे एक पलके लिये भी नहीं छोड़ता। मैं फिर उसे क्योंकर छोड़ूं? उफ! गैरमुमकिन है। अगर वह कहीं

घड़ा लिये उसीका मुँह देखता था। वह गर्दन नीचे किये खड़ी थी। रह-रहकर तिरछी नजर मुझपर डालती थी और मुस्कुरा देती थी। बड़ी मुश्किलोंसे कुछ देरके बाद मेरी लड़खड़ाती हुई जबानसे सिर्फ इतना निकला—

मैं—"अरे! तुम यहां कहां?"

वह—"वहीं जहां देख रहे हो।" कहकर मुस्कुराने लगी।

मैं—"खूब! यहां आई कैसे?"

वह—"पांव-पैदल।" और शोखीसे मेरी तरफ देखकर अपने पैरोंकी तरफ देखने लगी।

मैं—"अरे तुम यहां क्या करने आईं?"

वह—"वही करने जो तुम कर रहे हो।"

यह कह हँस पड़ी और दूसरी तरफ देखने लगी।

मैं—"मैं क्या कह रहा हूं, मैं तो नहा रहा हूं।"

वह—(उसी तरफ देखती हुई) "नहीं, अपनी तरफ देखो तो मालूम हो।" अब मुझे मालूम हुआ कि मैं धारसे अलग बैठा था और घड़ेको दोनों हाथोंमें इस तरह पकड़े हुए था कि उसके मुँहमें पानीकी धार पड़ रही थी। यह देखकर मैं खुद ही हँस पड़ा। फिर दिल मजबूत करके पूछा।

मैं—"तुम रहती कहां हो ?"

वह – "जिस मुहल्लेमें तुम रहते हो।"

मैं—"मगर किसके घर ?"

वह—"अपने घर ?" शरारतसे फिर मुझे देखा और मुस्कुराई। वाह! वाह! बात-बातमे शोखी, चालमें शोखी, अदामें शोखी, निगाहमें शोखी। उफ़! बलाकी शोख लड़कीसे पाला पड़ा। इससे बातें करना तो अपना ही मुँह पीटना है। जवाब देती है। मगर वाहरे जवाब देनेका तरीका कि एक बात भी नही बताती। अब क्या करूं ? इधर घड़ा भी आधेसे ज्यादा भर गया। फिर मैंने बौखलाकर पूछा।

मैं—"मगर तुम तो यहांकी रहनेवाली नहीं मालूम होती।"

वह—"तुम अपनी तो कहो, तुम यहांके कब रहनेवाले हो ?" मैं फिर सटपटाया, घड़ेका पानी मुँह तक आ चला।

मैं "नहीं, मैंने इसलिये पूछा कि तुम्हें पहिले कभी नही देखा था।"

वह—"और उस दिन कुंएपर किसने देखा था ?" कहकर मुस्कुराई, फिर शर्मा गई और मैं मुंह ताकता ही रह गया।

मैं—"अच्छा, अपना नाम तो बता दो।"

वह—"वाह! वाह!! इतनी बातें कीं बिना नाम ठिकाना जाने हुए? जाओ अब न बताऊंगी।"—हाय! घड़ा भर गया। उसने घड़ा लेनेके लिये हाथ बढ़ाया।

मैं—"नहीं ठहरो, एक बात बता दो, तब घड़ा दूंगा।"

वह—"अच्छा, एक ही बात बताऊंगी।"

मैं—"माना! यह तो बता दो तुमने आज उस कुएंसे पानी क्यों नहीं भरा? वह तो शायद तुम्हारे मकानके नजदीक है।"

वह—"कल कुआं साफ किया गया है, अभी पानी गन्दा है। लाओ, मेरा घड़ा दो।"

मैं—"मगर रास्तेमें तो कई कुएं और पड़ते हैं।"

वह—"बात पहिले ही पूरी हो गई। अब कुछ न बोलूंगी।"

मैं—"फिर आओगी?"

वह—"न बताऊंगी, घड़ा दे दो।"

अब क्या करता। हार मानकर घड़ा देनेके लिये मैंने घड़ा उठाया। उसने अपना हाथ बढ़ाया। जैसे ही उसकी उंगलियां मेरे हाथसे छू गईं, वैसे ही मेरे बदनमें एक बिजली-सी दौड़ गई। मैं कांपने लगा और इस तरह कि

मैं अपनेको संभाल न सका। जबतक वह मेरे हाथसे घड़ा ले तबतक घड़ा मेरे हाथसे छूट गया और पत्थरकी जमीनपर गिरकर फूट गया। मैं मारे झेंपके वहीं सर झुकाये बैठा रह गया। जब नजर उठाई तो देखा कि अहमद आड़से निकलकर खिलखिला रहा है। पानीकी धार खिलखिला रही है। मगर उसका पता नहीं।

———

[५]

"हसरत यह किसके हुस्न मुहब्बतका है कमाल।
कहते हैं सब जो शायरे रंगा अदा मुझे॥"

कहां पहिले कोशिश करनेपर भी मेरी लेखनी मुश्किल-से चलती थी। कहां अब उस लड़कीसे मिलनेके बाद उस-की बातचीतने मेरे मुर्दा दिलमें ऐसा जादू फूंक दिया कि मेरी लेखनीकी चाल आप-से-आप सौगुनी तेज हो गई। मेरा मुरझाता हुआ साहित्यका पौधा लहलहा उठा और जादूके पेड़की तरह दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। दिलमें एक अपूर्व आनन्दकी लहरें उठती थीं, जिसकी मौजमें ख्यालात तैरते, फिसलते, कलोलें करते हुए नाच रहे थे। कलेजा बांसों उछल रहा था। अंग-अंग मारे

खुशीसे थिरक रहे थे। तबियतमें ऐसी मौज समा गई कि जिसकी मस्तीमें यह असार संसार मुझे परिस्तान मालूम देने लगा।

खुशी और रंज दबानेसे नहीं दबते। किसी-न-किसी तरह बिना जाहिर हुए नहीं रहते। तो मैं अपनी खुशी कैसे रोक सकता था। मारे झेंपके अहमदसे मैंने उस वक्त एक बात भी न की। नहाकर सीधा मकानमें घुस गया और फिर निकला ही नहीं। मेरे कालेजके दोस्तोंके कई खत आये थे, मगर किसीका जवाब नहीं दिया था। मैंने सोचा, अच्छा हुआ, आज मैं इस खुशीमें सबोंसे बातें करूँगा। इस तरहसे दिलके उल्लास बहुत कुछ निकल जायेंगे। बस, मैं खत लिखने बैठ गया और दसों खत लिख डाले। जब लिफाफेमें रखते समय उनको मैं पढ़ने लगा, तब मैं खुद ही अचरजमें पड़ गया कि ऐसे खत तो मैंने जिन्दगीभर नहीं लिखे थे। हरएक खत एक अच्छा खासा निबन्ध था। वह सुन्दरता, मधुरता, चुलबुलापन और शोखी जो उस लड़कीमें थी वह मेरे खतोंमें झलक रही थी। इस बातकी ताईद भी कुछ दिनों बाद हुई जब मेरे हर दोस्तने जवाबमें यही लिखा कि "भाई, तुम्हारा खत तो अखबारमें छपा देनेके काबिल है। हम और यहांके

हमारे दोस्तोंने कई वार उसको पढ़ा और मज़ा लिया। ईश्वरके लिये तुम हमें बराबर लिखा करो। हमलोग बेचैनी-से तुम्हारे खतकी राह देख रहे हैं।" तभीसे साहित्यके पौधेने मेरे दिलमें अच्छी तरहसे जड़ पकड़ ली। अब मुझे उसके सूखनेका अन्देशा न रहा। मगर इसको किस फुल-वारीमें लगाऊं? और अपनी लेखनीके लिये कौनसा विषय चूनूं? इसके लिये मैं अबतक अन्धकारमें पड़ा हुआ था। मगर उस लड़कीके कमलकी तरह खिले हुए हंसते चेहरेने वह अन्धकार भी मिटा दिया। उसकी जगमगाती हुई रोशनीमें हरदम मुझे वही हंसमुख सूरत, वही चंचल मूरत, वही शोख़ और शर्मीली निगाहें, वही बांकी अदायें दिखाई देने लगी और वही मेरी लेखनीका विषय हो गई।

खैर, साहित्य-सेवाकी मांग तो यों पूरी हुई। मगर अब दिलकी मांगने परेशान करना शुरू कर दिया। यह कमवख्त क्या चाहता है? समझमें नहीं आया। मैं समझता था कि एक दफा यह अच्छी तरहसे देखनेको मिल जाती और दो-दो बातें हो जातीं; तो मेरा हौसला पूरा हो जाता। मगर अब मिलने और बातें करनेके बाद तो प्रेम-की आग और भी भड़क उठी।

लेखककी प्रकृति विचारमय होती है। जिन मामूली-

से-मामूली, ओछी-से-ओछी बातोंको दुनिया नहीं देख सकती और न देखनेकी परवाह करती है, अगर उनको सुनती भी है तो समझ नहीं सकती, यह बातें लेखककी नज़रसे किसी तरह नहीं बच सकतीं। वह बेचारा उनको देखता है और उनके हजारों मतलब निकालता है। फिर प्रेमिकाकी और अपनी प्रेमिकाकी ज़रा-ज़रासी बातें लेखककी नजरसे क्योंकर छिप सकती हैं? और प्रेम तो आदमी क्या गदहेको भी विचारमय बना देता है। फिर वही आदमी जो कभी विचार करना जानता था, इस दिमागी रोगमें पड़कर लोगोंसे दूर भागता है और एकान्तमें बैठकर दिन-रात सोचा ही करता है। और अपने ही ख्यालातसे परेशान होने लगता हैं। फिर लेखकका तो स्वभाव ही विचारमय ठहरा; उसपर प्रेमका असर कैसा पड़ सकता है और प्रेममें पड़कर उसके ख्यालात उसे कितना परेशान कर सकते हैं, न लिखा जा सकता है न बताया जा सकता है। शराब तो अच्छे खासे आदमीको पागल बना देती है; और अगर पागलको शराब पिला दी जाय तो क्या दशा हो? वही जाने, देखनेवाले क्या समझें। वही हालत लेखक या किसी विचारमय आदमीकी प्रेममें होती है।

उस लड़कीकी बातचीतमें जाहिरा कोई मानी-मतलब न थे। खाली मसखरापन ही मसखरापन था। मगर उसके एक-एक शब्द, एक एक बात, बोलचालका ढंग, मसखरापनका रंग, चितवनकी शोखी, बेबातकी हंसी, चुलबुली अदायें और शर्मीली निगाहोंमें सैकड़ों मानी मुझे दिखाई पड़ने लगे। यहांतक कि उस वक्त ऐसा मालूम होता था कि अगर उसकी बातोंपर टीका लिखूं, तो हर बातपर एक-एक पुस्तक हो जाय। अनजाने आदमीके हाथमें उसका घड़ा देनेमें न झिझकना, पहिले ही जवाबमें हेलमेलका रङ्ग झलकना, फिर किसी बातका जवाब सीधा न देना, कुएंपरकी देखा-देखीको याद रखना इत्यादि मेरे दिलको चुपकेसे कुछ कह गये। मगर मुझको मालूम नहीं। इसीलिये उस बातको जाननेके निमित्त मैं बेताब था। कुछ-कुछ शक तो मैं करने लगा था, मगर क्या वह शक सही है? बिना पूरा सबूत पाये अभी मैं ऐसा क्योंकर समझता?

दूसरे दिन शामको अहमद मिला और पूछने लगा कि—"क्या वह वही थी?'

मैं—"हां।"

अहमद—"मैं पहिले ही ताड़ गया था; मगर हो बड़े

किस्मतवर। बलाकी हसीन है। तुम्हारी कसम, ऐसी चञ्चल तो मैंने देखी नहीं।"

मैं—"तब फिर मुझपर क्यों ठट्ठा मारते थे? आखिर तुम भी तो उसका दम भरने लगे।"

अहमद—"मगर तुम्हारी तरह दीवाना नहीं हो गया।"

मैं—"दीवाना कैसे होते? उसकी नजरने तुम्हें दीवाना बनाया नहीं।"

अहमद—"वाह! उसको मैंने खूब देखा और उसने भी मुझे बड़ी देरतक देखा। उसकी खूबसूरतीकी तारीफ अलबत्ता करता हूं, मगर दिलपर कुछ असर न हुआ।"

मैं—"अहमद! जिन नजरोंसे जालिमने मुझे ताका है, वही नजर अगर वह एक भी तुमपर डाल देती तो तुम क्या तुम्हारे फिरश्ते भी दीवाने हो जाते, क्योंकि देखनेकी नजर और होती है और छेड़नेकी निगाह और। एक खालिस पानी है तो दूसरी हद दरजेकी नशीली शराब। पानी चाहे गिलासभर पियो या घड़ाभर पी जावो, उसमें नशा कहाँ?"

अहमद—'तुम हो खब्ती। ऐसे ही उड़ाया करते हो।"

मैं—"मगर तुमने अच्छी तरहसे देखा कब? वह तो घड़ा फूटते ही गायब हो गई थी।"

अहमद -"वाह! वह नया घड़ा लेकर फिर आई थी और चम्बेपर बड़ी देरतक रही। कई दफा पानी भर करके उसने उड़ेल दिया। तुम तो अन्दर थे।"

यह सुनते ही मैं यकायक सोचमें पड़ गया। घड़ा मुझसे फूटा था। भला उसने अपने घरवालोंसे इस बारेमें क्या कहा होगा? सच बोली होगी या झूठ। या ईश्वर! वह झूठ ही बोली हो तो अच्छा है। बाजे मौके ऐसे होते हैं जहांपर सच बोलनेसे झूठ बोलना ही मुनासिब है। खैर, नया घड़ा लेकर आई तो सही, मगर देरतक क्यों ठहरी? क्या अहमदके कारण या नये घड़ेके धोनेमें देर हो गई या किसीकी राह देखती थी। नया घड़ा एक दफा पानी भरके उड़ेल देनेसे खूब धुल जाता है। फिर बार-बार पानी भरके क्यों उड़ेला? न जाने दिलने क्या समझा कि उसकी बेकली बढ़ चली। अहमदको अब मुझसे बातें करनेमें कुछ मजा न आया और वह उठकर चला गया। मैं वहीं सर झुकाये सोचता ही रह गया कि अब भला क्यों वह वहां आने लगी? कुएंका पानी अब तो साफ हो गया होगा। और मैं क्योंकर उस तरफ जाऊँ? फिर कैसे भेंट हो? मैं उसी उलझनमें था कि मेरी तकदीर चमकी और फाटकपर चूड़ियोंकी झनकार सुनाई दी। जब

तक मैं उठूं उठूं तबतक वह घड़ा लिये दम्बेके पास पहुंच गई। वहां जानेकी मेरी हिम्मत न पड़ी। इसलिये मैं फाटकपर आकर उसके लौटनेका इन्तजार करने लगा। वह घड़ेको सरपर रखकर लौटी और ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगी त्यों-त्यों मेरे दिलकी धड़कन बढ़ने लगी। वही आंखें जो उसको देखनेके लिये अकुला रही थीं, अब उसको सामने पाकर जमीनकी तरफ ऐसी गड़ गईं कि लाख कोशिश करनेपर भी नहीं उठीं। कुछ तो इसका कारण यह भी था कि घड़ा फूटनेसे मुझसे वह नाराज होगी। फिर आंख मिलानेकी हिम्मत कहांसे लाता? इतनेमें उसकी रसीली आवाजने मेरी मोह-निद्रा भंग की।

वह—"रास्ता रोके क्यों खड़े हो?"

मैं चौंक पड़ा और डरते-डरते उसकी तरफ निगाह उठाई। वह ओठोंको दबाकर हँसी रोक रही थी, मगर आंख लड़ते ही मुस्करा पड़ी और फिर शर्माकर नीचे देखने लगी।

मैं—"आखिर तुम हो कौन?"

वह—"आदमी।"

हाय! फिर वैसी ही बेतुकी बातचीत!

मैं—"दिल्लगी नहीं, तुम्हारा नाम क्या है?"

वह—"क्यों पूछते हो? मैं तो तुम्हारा नाम नहीं पूछती।"

जाहिरा इस बातसे लापरवाही और झुंझलाहट टपकती थी, मगर दिलको कौन जाने इसमें कौनसा छिपा हुआ भेद दिखाई पड़ा कि वह मारे आनन्दके मतवाला हो गया। वह यही कहता था कि यह दुबारा तेरा और अपना संग अपनी बातमें जाहिर कर रही है। पहिले अपना मुहल्ला बताते वक्त एक दफा यह ऐसे ही कह चुकी है कि उसी मुहल्लेमें रहती हूं जिसमें तुम रहते हो। बातोंके ऊपरी मानी चाहे जो कुछ हों, मगर इसमे लगावटके मतलब भी कुछ-न-कुछ हैं जरूर; जिसको दिल समझ गया है, मगर मुझको साफ-साफ बताता नहीं, इसीलिये मैंने बौखलाकर फिर पूछा—

मैं "तुम्हें क्या गरज जो मेरा नाम पूछोगी? तुम न पूछो न सही, मगर मैं तो पूछता हूं।"

वह—'आखिर क्यों?"—अब किस तरह कहता कि जपनेके लिये पूछता हूं। जबानपर बात आ-आकर रह जाती थी।

मैं—"अच्छा भई, न बताओ। नाराज तो हुईं हो।"

वह—'मैं क्यों किसीसे नाराज़ होने लगी?"

मैं—"हाय ! हाय ! किसीसेका जिक्र नहीं। यहांपर तुम हो और मैं हूं, इसलिये जो कुछ तुम्हें कहना हो वह अपनी या मेरी कहो। तुम मेरे साथ सारी दुनियाको क्यों लपेटती हो ? मुझे औरोंके वारेमें कुछ भी जाननेकी परवाह नहीं है और यह तो मैं जानता ही हूं कि किसीसे बिना वजह कोई नाराज क्यों होने लगा ? मगर मैंने तुम्हारा घड़ा फोड़ा है, फिर क्यों न तुम......।"

वह—"अरे ! नहीं, उसके लिये तो मैं बहुत खुश हूं, क्योंकि तुम्हारी वजहसे मुझे यह नया घड़ा देखनेको मिला। अच्छा, अब जाने दो।"

मैं—"तुम्हारा रास्ता नहीं रोकता। लो मैं अलग खड़ा हूं ! मगर थोड़ी देर तो और ठहरो।"

वह—(नजर नीची किये हुए) "क्यों ?"

मैं—"क्योंकि सुबहतक तुम्हारे कुएंका पानी जरूर ही साफ हो जायगा, फिर मुझे देखनेको कहां मिल सकती हो भला ?"

वह—(मुस्कराकर शर्मांती हुई) "कुएंका पानी तो आज सुबहीको साफ हो गया था।"

मैं—"फिर तुम कैसे आ गई ?"

वह—(कनखियोंसे देखती हुई)—"तो क्या तुम चाहते हो मैं न आऊं ?"

मैं—"नहीं, नहीं, ईश्वरके लिये ऐसा न समझना। मैं सिर्फ इतना जानना चाहता हूं कि नजदीकका साफ पानी छोड़कर इतनी दूर पानी भरने क्यों आई?"

वह इस सवालसे चकराई। मैं बड़ी बेचैनीसे उसका मुंह ताकने लगा कि देखू क्या कहती है? क्योंकि इसी जवाबमें इसके दिलका भेद जाहिर हो जायगा और उसीके साथ यह भी मालूम होगा कि मेरा शक ठीक है या गलत। मगर इतनेमें वह झिझक कर पीछे हटी और कतराकर निकलने लगी। उस वक्त उसके चेहरेका रंग भी एकाएक गम्भीर हो गया।

मैं—"क्यों, कहां?"

वह—(मुंह फेरे हुए)—"कोई आ रहा है।"

अब मुझे होश हुआ तो देखा कि सचमुच कुछ दूर सड़कपर अहमद आ रहा है। इधर यह मेरे फाटकसे बाहर हो गई। वैसे ही मैंने बड़ी बेताबीसे पूछा—"मगर मेरी बातका जवाब?"

वह—(दबी जबानसे मुंह फेरकर।)—"कल दूंगी।"

मैं—"कहां?"

वह—(उसी तरह)—"यहीं और इसी वक्त।" इतना कहकर यह तो गलीमें हो रही। उधर अहमद मेरे पास आ

पहुंचा। मगर इसके पीछे हटकर फाटकपर कतराकर निकल जानेसे अहमदको पता न चला कि यह मुझसे मेहँदीकी टट्टीकी आड़में खड़ी हुई बातें कर रही थी। स्त्री-जाति तेरी बलिहारी है! तेरी मूर्खसे मूर्ख छोकरी भी प्रेममें चालाकसे चालाक मर्दोंके कान काटती है। अगर तू इतनी होशियार न हुआ करती तो तेरे प्रेमियोंके मुंहपर रोज ही कालिख लगा करती।

---

[६]

"सौ बार जिस गलीसे होकर जलील आये।
फिर ले चला है देखो कमबख्त दिल मचलके॥"

अहमदने आते ही पूछा कि कौन था? मैंने कहा—"वही।" उसने मुस्कराकर फिर पूछा कि कुछ बातें हुईं? मैंने कहा—"नहीं।" और जल्दीसे बाइसिकिलकी बात छेड़ दी, क्योंकि मैं जानता था कि उसे साइकिलका बड़ा शौक है। इसके आगे वह खाना-पीना, दीन दुनिया सब भूल जाता था। इसका नाम सुनते ही वह मेरे सर हो गया कि अपनी बाइसिकिल निकालो और मुझे चढ़ना सिखाओ। मैंने बहाना कर दिया कि साइकिल बिगड़ी हुई है, कल ठीक

करूंगा। तो भी वह मेरी जानको अटका रहा और न जाने क्या-क्या कहता रहा। मेरी कुछ समझमें न आया। मैं बराबर यही सोचता रहा कि वह लड़की अहमदको देखकर क्यों इस तरह भागी? मुझसे बातें करते वक्त जब किसी राहीको उधर आते देखती थी तो बारबार क्यों आड़में खिसक जाती थी? ये तो उसकी नादानी और नासमझी-के चिह्न नहीं हैं। वह समझती है कि उसका मेरे साथ अकेलेमें बात करना लोग बुरा मानेंगे। जब दूसरे इस बात-को बुरा समझते हैं तो उसने फिर क्यों नहीं बुरा समझा? वह मुझसे मिली क्यों? इतनी देरतक बातें क्यो की? जिस कामको वह बुरा समझती है फिर वह जान-बूझकर क्यों करती है? जरूर इसमें कुछ-न-कुछ भेद है। उसी भेदको मैं जाननेके लिये व्याकुल हूं और उसी भेदपर मेरी तक़दीरका फंसला है। प्रेमीको प्रेमके सिवाय और क्या चाहिये? यही मैं भी चाहता था। अगर मुझे उसका प्रेम मिल जाय, तो क्या कहना है? उसपर मैं सारी दुनियाको निछावर कर दूं। वह प्रेम शायद इसी भेदमें छिपा हो। कैसे मालूम हो? मुमकिन है मेरी बातके जवाबमे कल इसका कुछ पता चले। मगर आजकी रात क्योंकर कटेगी? फिर दिनभर काटना है! उफ! बड़ी मुश्किल है। इन्हीं ख्यालातमें शाम

हुई। इन्हीं ख्यालातमें सारी रात तड़प-तड़पकर काटी। इन्हीं ख्यालातमें डूबा हुआ सुबहहीसे उसका इन्तजार करने लगा।

अगर प्रेमीको मालूम हो जाय कि उसकी प्रेमिका उसको बिलकुल नहीं चाहती तो उसे सब्र हो सकता है, उसकी बेचैनी घट सकती है, उसका प्रेम ठंडा पड़ सकता है। और अगर यह पता चल जाय कि वह भी चाहती है, तो प्रेम घट नहीं सकता बल्कि चार हाथ आगे बढ़ जाता है। तोभी दिलमें एक तरहका संतोष रहता है जिससे बेचैनी ज्यादा नहीं सताती। मगर यह ज़ालिम प्रेमिकायें न यह बात साफ तौरसे जाहिर होने देती हैं और न वह इसी दुविधाकी आगमें हरदम अपने प्रेमियोंको जलाया ही करती हैं। उनकी नजर कुछ कहती है, तो उनकी ज़बान कुछ और ही सुनाती है। अगर शोखी कुछ हिम्मत बढ़ाती है तो उनकी शर्म तुरन्त ही उसपर पानी फेर देती है। इस तरहसे मैं भी उसकी बातोंका कभी कुछ मतलब निकालता था और कभी कुछ और डावांडोलीकी हालतमें बुरी तरहसे परेशान था।

किसी-न-किसी तरहसे आखिर शाम हो चली, मगर अभीतक उसकी झलक नहीं दिखाई दी, इसी वक्त अहमद भी

आ पहुंचा। अब मुश्किल हुई कि किस तरह उससे म कहूं कि तू चला जा। आखिर घबराकर मैंने बाईसिकिल निकालकर हातेमें ऐसी जगह खड़ी कि जहांसे फाटक नही दिखाई देता था और उससे कहा कि लो 'पेंचकश' और 'टायर' निकालकर देखो शायद 'पञ्चर' है। उसे जोड़ लो। जिसमें उसके ख्यालात उधर लगे रहें, जबतक मैं इधर इस लड़कीसे दो-दो बातें कर लूं। मगर उसने न माना और जिद्द करने लगा कि तुम्हीं खोलो। मैं न खोल पाऊंगा। इसी बीचमें वह आ पड़ी।

अब मेरी परेशानी देखनेके काबिल थी। दीवानोंसे बदतर हालत हो रही थी। मैंने अहमदसे लाख-लाख कहा कि जबतक तुम 'टायर' खोलो मैं आता हूं, मगर उसने एक न माना और इधर वह पानी भरके लौटी। अब मुझमें ताब कहां? उसके रोकनेपर भी मैं फाटककी तरफ लपका, उसने दौड़कर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं मारे गुस्सेके अन्धा हो गया और पेंचकश जो मेरे हाथमें था उसे तानकर मारा और फाटकपर दौड़ गया। उस लड़कीने मुझे आते हुए देखा, मगर रुकी नहीं। सीधे अपने घर चली गई। बस, बदनमें आग ही तो लग लई। अपनेको उस वक्त बहुत धिक्कारा कि जिसको तेरी जरा भी परवाह नहीं

उसके लिये तू इतना परेशान   इतनी बेचैनी !! इतना इन्तजार !!! यहींतक नहीं बल्कि तूने अपने सबसे प्यारे दोस्तको उस लापरवाहके लिये जख्मी कर डाला। जो काम जिन्दगीभर नहीं किया वह तू आज कर बैठा। उफ् ! थुड़ी है तुझपर !!

उसी वक्त मैं अहमद्के पास आया। ईश्वरको हजार-हजार धन्यवाद कि पेंचकशकी नोंक उसकी कमीजकी ज़ेबमें रखे हुए लोहेके सिगरेट-केसपर फिसल गई थी। और इस तरह वह बाल-बाल बच गया था, तौभी मैंने उससे बेहिसाब माफियां मांगीं और परेशानीमें जो-जो बातें उस लड़कीसे हुई थीं और क्यों मैं उससे मिलनेके लिये इतना बेताब था, सब उससे उगल बैठा और वादा किया कि मैं इसी वक्तसे उस जालिमका ख़्याल अपने दिलमें आने न दूंगा और अगर फिर कभी उसका जिक्र मुझे करते हुए देखना, तो जो चाहे सजा देना।

मगर, वाहरे बेहया दिल ! तेरी छटपटाहटके आगे न कसम, न वादाके बन्धनका जोर चला। एक घण्टाके बाद क्या देखता हूं कि मैं एक गेन्द उछालता हुआ और यही गुनगुनाता हुआ उसकी गलीमें जा रहा हूं कि—

"वो निरमोहनि रूपकी राशि,
जो ऊपरके उर आनति ह्वै है।
बारहुवार विलोकि घरी घरी,
सूरत तो पहिचानति ह्वै है॥
'ठाकुर' या मनकी परतीत है,
जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत हैं नित मेरे लिये,
इतनो तो विशेषहु जानति ह्वै है॥

---

[७]

वादये वस्लको हँस हँसके न टालो कलपर।
तुमने फिर आज निकाला वही झगड़ा देखो॥

आज मैं अपनी किस्मतका फैसला सुननेको बेचैनीमें लज्जा और बदनामीके ख्यालको चूल्हेमें झोंककर उसकी गलीमें निकल ही पड़ा। बलासे लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे, परवाह नहीं। प्रेम जब नाउम्मेदीके चट्टानपर टकराकर इन्तहाई दर्जेको पहुंच जाता है, तब झिझक, हिचकिचाहट और बदनामीका डर सब कोसों दूर भाग जाते हैं। वही

हालत मेरी आज हो रही थी। मैं जानता था कि आज वह सिर्फ मेरी बातका जवाब देनेके लिये आई थी। वरना उसके कुएंका पानी साफ हो ही गया है। अब यहां क्या करने आयगी? मगर वह न रुकी तो उसका क्या कुसूर। मुझे पहिले हीसे फाटकपर खड़ा रहना चाहिये था। जब उसे मैंने बातें करनेका मौका ही न दिया तो उसे क्या गरज थी जो मुझसे बातें करनेके लिये सरपर घड़ा लिये मेरे आने तलक खड़ी रहती। देखनेवाले क्या कहते? अब कलसे उसके यहां आनेकी कोई उम्मीद नहीं है। तो चलूं उसीके कुएंपर। मुमकिन है वहाँ भेंट हो जाय। यही सब अनाप-शनाप सोचता हुआ उसके कुएंके पास पहुंचा। मगर वहां कोई नहीं।

अब यहां कोई रुकनेका बहाना पाऊं तो शायद उसका कुछ पता चले। यह पहिलेहीसे सोचकर मैं गेंद उछालता हुआ आया था और उस कुएंके पास इस तरह उसे उछाला कि वह कुएंमें जा गिरा। मैं फौरन लौट पड़ा और दौड़कर मकानसे एक छोटी बाल्टी और रस्सी ले आया और उसे कुएंमें डालकर गेंद निकालने लगा। इतनेहीमें सामनेवाले मकानसे वह लड़की निकली और दौड़ती हुई मेरे पास आई और बोली—

वह—"हां, हां! यह क्या करते हो?" यह सुनकर सारा गुस्सा रफूचक्कर हो गया। मेरे गलेका फूलोंका हार कुएंसे बाल्टी निकालनेमें रस्सीसे उलझ रहा था। मैंने हार निकालकर उसके हाथोंमें देकर कहा।

मैं—"लो जरा इसे रक्खो तो बताता हूं।"

वह—(हार लेकर) "मैं तुम्हें पानी न भरने दूंगी।" कहकर मेरे हाथसे रस्सी छीन ली।

मैं—"मैंने तुम्हें कभी भी अपने यहांसे पानी भरनेके लिये मना नहीं किया तो मुझे तुम क्यों अपने कुएंसे पानी भरनेसे रोकती हो?"

वह—"तुम क्यों रोकते? मगर मैं तो तुम्हें रोकती हूं।"

मैं—"आखिर क्यों?"

वह—"जिन्दगीभर तुमने कभी और भी पानी भरा है कि आज ही चले हो बड़े पानी भरनेके लिये। चलो हटो, मैं भरे देती हूं।"

मैंने उससे रस्सी छीन ली।

मैं—"वाह! वाह! अपना काम क्या खुद करनेमें भी बुराई है। मैं अपना पानी तुम्हें नहीं भरने देता। घड़ा फोड़नेका बदला आज तुम जरूर निकाल लोगी और मेरी बाल्टी कुएंमें गिरा दोगी।" यह कहकर मैं हँस पड़ा।

वह—"मेरे हाथोंसे तो नहीं, मगर तुम्हारे हाथोंसे अदबदा कर बाल्टी गिर पड़ेगी। तुम कलम पकड़ना जानो या पानी भरना ?"

मैं—"मगर तुम्हारे नन्हें-नन्हें हाथ तो फूलसे भी कोमल हैं। भला तुम क्या पानी भर सकोगी ?"

वह—"चलो हटो, लाओ रस्सी मुझे दो।" उसने फिर रस्सी पकड़ ली, मगर मैंने छोड़ी नहीं।"

वह—"रस्सी छोड़ दो ; नहीं तो मैं फिर कभी न बोलूंगी।

उफ ! यह धमकी मेरे लिये मौतसे भी बढ़कर डरावनी थी। मैंने चुपकेसे रस्सी छोड़ दी। उसने पानीके साथ खरका गेंद भी निकाल दिया। उस पानीको फेंककर फिर पानी भरा।

मैं - "नाहक तुमने यह पानी भरा। मैं इसको अपने हाथसे नहीं फेंक सकता। अब इसे मुझे ले ही जाना पड़ा।"

वह—"तो मैं फेंके देती हूं।" यह कहकर उसने बाल्टी की तरफ हाथ बढ़ाया। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

मैं—"हां हां, खबरदार ! ऐसा मत करना। यह तो मेरे लिये गंगाजल है। इसका एक-एक बून्द मैं पी

जाऊँगा।" यह कहकर मैंने बाल्टी उठानी चाही। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया।

वह—"तुम आगे चलो, मैं बाल्टी लिये आती हूं।"

मैं—"नहीं, मैं तुम्हें ले जाने न दूंगा। मैं खुद ही ले जाऊंगा।

वह—"क्या तुम्हें मुझपर इतना भी इतबार नहीं? घबराओ नहीं। मैं लिये आती हूं। तुम चलो तो आगे।"

अजीब घपलेमें पड़ा। गोकि बाल्टी बहुत ही छोटी थी। मुश्किलसे तीन लोटे पानी आता था। तौभी उसीसे उसमें पानी भराकर और उसीसे अपने घर उसे पहुंचाऊं। यह किस तरह मैं बरदाश्त कर सकता था? और इधर पानी फेंककर बाल्टी खाली भी मुझसे न की जा सकती थी। क्या करता? मैं वहांसे भाग आया। थोड़ी देर बाद वह बाल्टी लेकर आई। मेरे दरवाजेपर उसे रखकर लौटी और फाटकपर आकर बोली—

वह—"अच्छा, रास्ता छोड़ो मैं जाऊं।"

मैं—"जबतक कलवाली बातका जवाब न दोगी तबतक मैं न जाने दूंगा।"

वह—"कैसी बात और कैसा जवाब!" कहकर मुस्कराने लगी।

मैं—"वाह! वादा करके खूब भूलती हो।"

वह—"अपनी तरह मुझे भी लिखना-पढ़ना सिखा देते तो लिख लेती। फिर न भूलती।"

मैं—"नहीं, सच बताओ, कल क्यों पानी भरने आई थी?"

वह—"और आज भी तो आई थी।"

मैं—"हां, मगर तुमने बताया नहीं कि कल पानी भरने क्यों आई थी।"

वह—"और तुम अपना बम्बा छोड़कर मेरे कुएं पर पानी भरने क्यों गये थे?"

मैं—"मेरा तो गेंद गिर गया था।"

वह—"खूब! आपको सारा मैदान छोड़कर गेंद खेलनेको जगह वहीं मिली। अच्छा, अब जाने दो, देर होती है।"

मैं—"बिना जवाब दिये तुम न जाने पाओगी।"

वह—"देखो, बड़ी देर हो रही है।"

मैं—"तुम खुद ही देर कर रही हो। क्यों नहीं जवाब दे देती?"

वह—(बिगड़कर) "अच्छा जाती हूं, देखूं कैसे रोकते हो?" यह कहकर मेरे पाससे गुजरने लगी। मैंने

डरते-डरते चुटकीसे उसका आंचर पकड़ लिया। वह मुस्कराकर घूम पड़ी।

वह—"अच्छा कल फिर आऊंगी। जाने दो।"

मैं—"मगर जवाब?"

वह—"कल।"

मेरे हाथसे आंचर छूट गया। मैं देखता ही रह गया और वह अठखेलियां दिखाकर थिरकती हुई चली गई।

---

[८]

"नेक नीरे जाय करि बातनि लगाई करि,
कछु मन पाइ हरि थाकी नाहीं बहियां।
सैननि चरचि लई गौननि थकित भई,
नैननिमें चाह करै बैननिमें नहिंयां॥"

जमीन जबतक गोड़ी-जोती नहीं जाती, तबतक वह अनाज कहां पैदा कर सकती है? वैसे ही दिलपर जबतक चोट नहीं लगती तबतक भावोंकी उत्पत्ति कहां? विचारोंमे उपज कहां? और लेखकों और कवियोंका तो दिल ही खेती-बारी है। इसी पैदावारसे वे साहित्यका भांडार भरते हैं। फिर मेरे दिलकी खेतीका क्या कहना था?

गहरे चोट और उनपर रसीले नयनोंकी अमृत-वर्षा ? भाव लहलहा रहे थे, मस्तीकी हवासे पानीकी लहरोंकी तरह मौजें मार रहे थे। इस ईश्वर प्रदत्त प्रकृतिपर मैं आपही फूला न समाता था, मगर इस दीवानेको कोई अड़ोस-पड़ोसमें गुण-ग्राहक न पाकर मैं अधीर हो रहा था। इस-लिये टूटे-फूटे साहित्यके व्यापारियोंके हाथ उन्हीं कच्चे भावोंको अमौसे मैं बेभाव लुटाने लगा और यों साहित्यके भांडारको दोनों हाथोंसे भरने लगा। एक-एक घण्टेमें एक-एक निबन्ध और २ रा दे दिनमें एक-एक छोटी-मोटी पुस्तक धनाधन तैयार होने लगी।

दिलकी लगीको ठंडक पहुंचानेके लिये एक चतुर सखीका होना जरूरी है, क्योंकि बिना दुखड़ा रोये दर्द नहीं सहा जाता। वैसे ही आनन्द भी बिना प्रकट किये उसका मजा पूरी तरहसे नहीं लूटा जाता। मगर प्रेमकी तकदीर ऐसी खोटी है कि किताबी किस्से-कहानियोंपर ज्ञानी, पण्डित, धार्मिक और वज्र हृदयवाले पाठक सभी पसीज जाते हैं और उन दिमागी पुतले-पुतलियोंके रंज वो गममें शरीक होते हैं। उनकी खुशीसे खुश होते हैं, और अन्त-तक यही दुआ करते रहते हैं कि इन दोनोंका अन्त सुखान्त हो। वो भी इनके असली और शरीरधारी प्रेमी-

प्रेमिकाओंसे कोई बाततक नहीं पूछता। इन दुखियोंको सहानुभूतिका एक आंसू भी कर्ज पाना तो अलग रहा, उल्टे यह सभीकी नजरोंमें जलील रहते हैं, पापी और कुटिल समझे जाते हैं। यहांतक कि लुंगाड़े और व्यभिचारी लोग भी इनको वेवकूफ बनाकर इनको बुरी तरह हंसी उड़ाते हैं। इसीलिये चारों तरफसे हारकर मैंने अपनी लेखनीको सखी बनाया, मगर मेरी चतुर और कमसिन लेखनी नासमझ सहचरीकी तरह अभी सिर्फ आनन्दमें चुहलें करना जानती थी इसीलिये वह कवियोंकी लेखनीकी तरह अपनी बलाको राधा-कन्हैयाके गलेमें नहीं डालती थी; अपनी बदनामी उनकी आड़में नहीं छिपाती थी। खाली अपनी छेड़ वो शोखीसे पाठकका मन मोहती थी।

इसलिये लेखनी तो मजेमें रही मगर मैं मुसीबतमें पड़ गया। क्योंकि अब मुश्किल यह हुई कि मैंने अहमदसे अपना हाल कहकर दूसरी बाधा अपने आप पैदा कर ली। उससे वादा कर चुका था कि मैं अब उस लड़कीका कभी भूलकर भी नाम न लूंगा। और अब वह अगर मुझे उससे बातें करते देखेगा तो बुरी तरह मुझे थूकेगा। उस गली-से भी जानेसे रहा, इसीलिये फिक्र हुई कि उससे मिलूं तो कैसे ? और बिना मिले चैन भी नहीं। इतनी दफा

मिला तो इधर-उधरकी बातें कीं। कभी यह भी न कह सका कि मैं तुझे प्यार करता हूं। पता नहीं चलता कि क्यों दिलकी बातें दिलमें रह जाती हैं? कोशिश करनेपर भी उसके सामने जबानपर नहीं आतीं। इन्ही विचारोंमे सारी रात और सारा दिन काटा। आखिरको वह अपने वक्तपर आई। मैं फाटकपर ही खड़ा था। मेरे पाससे होकर वह हातेके भीतर चली गई। मेरी तमाम सोची हुई बातें दिमागसे गायब हो गईं। एक शब्द भी जबान-से न निकला।

पानी भरके लौटी। इस दफा मैं रास्तेमें खड़ा हो गया। वह पास आकर खड़ी हो गई और मुस्कुराकर बोली—

वह—"जाने दो अभी, फिर आऊंगी।"

मैं हट गया। वह चली गई। बादको दिलमे कहा कि अच्छा बेवकूफ बनाकर निकल गई। अब क्यों आने लगी? तोभी मैं उसकी राह देखने लगा। इतनेमें वह फिर दिखाई पड़ी। इस दफा घड़ा न था। संयोगवश अभी अहमद भी नहीं आया था।

मैं—"कहो, क्या मेरी बातका जवाब देने आई हो?"

वह—"तुम्हें तो जवाबकी पड़ी है। लो, अपनी माला

वह शर्माकर मुसकरा पड़ी और नीची नज़र किये हुए बहुत धीरेसे बोली—"जो कोई देख ले तो।"

[पृष्ठ ११२

लो।" यह कहकर उसने अञ्चलके भीतरसे हाथ निकालकर एक ताजे फूलोंका नया हार दिखाया।

मैं—"कैसी माला ?"

वह—"वाह! इतनी जल्दी भूल जाते हो। अभी कल होकी तो बात है तुम कुएं पर छोड़ आये थे।"

मैं—"मगर यह तो ताजा हार है।"

वह—"तुमने भी तो ताजा ही दिया था, जैसा दिया था वैसा लो।"

मैं—"मेरे हाथोंमें दोगी तो यह उन्हींको पहनायेंगे जिसपर यह शोभा दे।"

वह—"भई ले भी लो, दिक न करो।"

मैं—"अच्छा, देती हो तो अपने हाथोंसे पहिना दो।"

वह शर्माकर मुसकरा पड़ी और नीची नजर किये हुए बहुत धीरेसे बोली।

वह—"जो कोई देखले तो ?"

हाय! हाय! अब दिलको ताब कहां। लपककर उसको गोदमें उठा लिया और उसके प्यारे-प्यारे गालोंको चूम लिया। वह छटककर मेरी बाहोंसे निकल गई और बिगड़ कर बोली।

वह—"जाओजी, यही तो अच्छा नहीं लगता।" फिर

मेरी तरफ माला फेककर झुंझलाती हुई भाग गई। मैं ज्यों-का-त्यों खड़ा रह गया। हारके फूल हंस पड़े और पेड़ोंकी पत्तियां तालियां बजाने लगीं।

---

[९]

"उधर वह बदगुमानो है, इधर यह नातवानी है।
न पूछा जाये है उससे न बोला जाये है मुझसे ॥"

वह आती तो रोज थी, मगर ईश्वर जाने उसकी निगाहें झेप या शर्म या गुस्सेकी वजहसे कुछ फिरी हुई मालूम होती थी जिसकी वजहसे फिर उससे बात करनेकी मेरी हिम्मत न पड़ी। दूसरे, अहमद भी ठीक उसीके आनेके वक्त आया करता था, इसको देखकर उस लड़कीकी तरफ और भी मुझे लापरवाही दिखानी पड़ती थी। कोई मौका न मिलता था कि फाटकपर जाता और न उस कुएंपर जानेके लिये कोई बहाना ही पाता था।

मेरे पिताको गाने-बाजेका बड़ा शौक़ था। इसलिये हमेशा कोई-न-कोई गवैया या उस्ताद हमारे यहां टिका ही रहता था। पिता पहिलेहीसे चाहते थे कि मेरा लड़का इस हुनरसे वञ्चित न रहे। मगर मेरे लड़कपनमे वे सिर्फ इस

ख्यालसे अपनी महफिलसे मुझे अलग रखते थे कि कच्ची उमरमें लड़के गाने-बाजेसे बिगड़ जाते हैं। मगर अब मुझे कालेजमें पढ़ता हुआ देखकर उन्होने मुझे एक सितार बजानेवालेके सुपुर्द कर दिया। मैं भी बड़े शौकसे "डारा डाराडा डिर डारा" बजाने लगा। मगर मैं यह झमेला दो-पहरहीमें रखता था; ताकि मेरा शामका वक्त खाली रहे। मगर एक दिन उस्तादजी देरसे आये और शामतक टलने-का नाम ही न लिया। जब किसी तरहसे मेरी जान न छूटी तब हारकर मैंने कमरेसे बाहर ठीक बम्बेके सामने चारपाई बिछवाई। इसलिये कि और न सही तो कम-से-कम इन लालची आंखोंहीकी लालसा मिटाऊंगा।

उस्तादजी चारपाईपर बैठे हुए एक गत बजा रहे थे। सितारकी आवाज सुनकर चार-पांच बेफिक्रे और जमा हो गये। इतनेहीमें वह जालिम आ पड़ी। उस्तादजीने उसे देखते ही गाना छेड़ दिया—

"गोरी धीरे चलो गगरा छलक न जाये।
अरे हां पतली कमरिया लचक न जाये॥"

फिर क्या कहना था। बेफिक्रे हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गये। लगे बोलियां कसने। 'जरा और संभलके।' 'कहीं ठोकर न लगे।' इत्यादि। मेरे सरसे पैरतक आग

लग गई। मगर करता क्या? गर्दन झुकाये चुप बैठा रहा। उसने चलते-चलते एक तीखी नजर मुझपर डाली। मेरा कलेजा कांप उठा।

उस्तादजीके जाते ही मैंने सितारको उठाकर पटक दिया। तोमड़ी फूट गई। उस दिनसे मैंने फिर सितार नहीं छुआ। दूसरे दिन उस्तादजी फिर उसी वक्त आये। मैंने उन्हें फाटक ही परसे लौटालना चाहा। कह दिया कि न जाने कैसे सितारकी तोमड़ी फूट गई। मगर वह कहां टलनेवाले। वह फाटक ही पर लगे मुझे बातोंमें लगाने। बेफिक्र भी चक्कर लगा रहे थे। मैंने सोचा कि मैं टल जाऊं। फिर ख्याल आया कि मेरे जानेसे ये लोग जायंगे नहीं, बल्कि और खुश होंगे। अगर मैं रहूंगा तो कम-से-कम उसका एक तो तरफदार मौकेपर रहेगा। मुमकिन है ये लोग कुछ पाजीपन ही कर बैठें, यही सोचकर मैं ठहरा रहा! इतनेमें वह दिखाई पड़ी। उस्तादजी यह कहकर फौरन बम्बेपर चले गये कि "अच्छा आज योंही लौट जाना है तो कम-से-कम हाथ पैर ही धोलूं। आज गरमी भी बलाकी है।"

वह कुछ देर बम्बेके पास खड़ी रही। मगर उस्तादजी-का हाथ-पैरका धोना खतम ही नहीं होता था। अब वह

लगे उससे छेड़छाड़ करने। यह देखकर वह लौटी। तब तो उस्तादजी और रंग लाये। लपककर उसका हाथ पकड़ लिया। मेरी आंखोंमे खून उतर आया। जीमें आया कि दौड़कर उस्तादजीका गला घोंट दूं। मगर उसने झटककर हाथ छुड़ा लिया, और बिना पानी भरे ही लौट पड़ी। फाटकपर आकर उसने मुझपर शिकायत भरी एक कड़ी निगाह डाली और चली गई। उफ! उस निगाहमें जालिमने यही कहा कि "मुझे मालूम है यह सब तुम्हारी शरारत है।" उसके बाद उसने आना बन्द कर दिया।

[१०]

"आज रूसो बाल चले लालजू मनावनको,
जामा पहिने उलटो न बांधे पेंच कसि कसि॥
'देवकीनन्दन' कहे पटुका लपेटे कर,
लरकैं पितम्बरकी छोर भूमि खसि खसि॥
पौर लौं आंगन लौ जान पाये बीचैं रही,
चूमी कारी, कारी, कारो घोरी घौरी बसि-बसि॥
ब्यानी गाय कांधरको रूप देखि बिरुझानी,
मान छोड्यो मानिनी दिवानी भई हँसि हँसि॥"

किस तरह उसका भ्रम दूर करूं ? किस तरह उसको मनाऊं ? यही सोच मुझे अब दिन-रात रहने लगा। वह आती भी नहीं कि उससे कुछ कहूं। और अगर उस गलीमें जाऊं भी तो जबतक वह मेरे पास आयगी नहीं तबतक उससे कैसे बोलूं ? जब वह यहां मुझसे आंख चुराती थी तो वहां भला वह क्योंकर मेरे पास अपने लोगोंके सामने आ सकती है। जिस मकानसे वह निकलती थी, वह 'वसन्ती' का घर है। वसन्ती मेरे जान-पहिचानकी जरूर है; मगर वह मुझे देखते ही चिढ़ती है। क्योंकि कई दफा पहिले मैंने उसे अपने हातेसे निकलवा दिया था और अपने बम्बेपर नहाने नहीं दिया था। और दूसरी बात यह है कि वह आज-कल अपनी ससुरालमें है। अगर होती तो उससे इस लड़की की खातिर मुलामियतसे मिलता और मेल कर लेता। और यों उस गलीसे गुजरते वक्त उससे दो-चार बातें करनेके बहाने उसके दरवाजेपर खड़े-खड़े आंखों ही से अपनी बेकलीका हाल कुछ इसको सुनाता। वसन्ती मुझसे सबोंके सामने बातें करनेमें नहीं शर्माती; क्योंकि वह मुझसे कुछ बड़ी है और दूसरे उसको छेड़नेकी आदत है। मगर जब वह है ही नहीं तो इसके बारेमें सोचना ही फिजूल है। ऐसी हालतमें जब तकदीर ही मदद करे तभी वह मान

सकती है। खैर, जो काम मेरे करने लायक है वह क्यों न कर डालूं ? उस्तादजीको क्यों न निकलवा दूं ? उनसे तो मैं जला बैठा था। अगर मेरा बस चलता तो उनके कलेजे-का खून पी लेता।

और आखिर मेरे सोचनेका यह नतीजा निकला, इस-लिये मैंने अपनी उंगलियोंको तारपर खूब रगड़ कर जखमी बना लिया। तब पिताके पास गया और कहा—"मैं सितार बजाना नहीं सीखूंगा, हारमोनियम मंगा दीजिये।"

पिता—"क्यों ?"

मैं—"क्योंकि सितारसे मेरी उंगलियां कट जाती हैं।"

पिता—"देखूं।" मैंने अपना हाथ दिखा दिया।

पिता—"मगर यह तो दाहिना हाथ है। इससे तो स्वर नहीं निकलता। इससे तो खाली आवाज पैदा की जाती है।

अब मैं सिटपिटाया और घबड़ाया कि बना बनाया खेल बिगड़ गया। हाय! कैसी भद्दी गलती की। हाथ जखमी भी किया तो गलत। चालाकी पकड़ गई। मगर तुरन्त ही संभलकर जवाब दिया।

मैं—"क्या जानूं, किस हाथमें मिजराब पहना जाता है और किस हाथसे पर्दे दबाये जाते हैं। मुझे उस्तादने बताया ही नहीं। मैं इसी हाथसे पर्दे दबाता था।"

पिता—"उस्ताद बड़ा बेवकूफ है। तुझे एकदम लबड़हत्था बनानेवाला है क्या? अच्छा लाओ अपनी सितारी, मैं तरकीब बताये देता हूं। फिर उंगली न कटेगी।"

मैं—"मेरी सितारी रातको मेजपरसे गिरकर फूट गई।"

पिता—"फूट गई! बड़े लापरवाह हो तुम। अपनी चीज ठीक तौरसे नहीं रखते। अच्छा जाओ, मेरा सितार ले आओ। मगर उसे तोड़ न देना कहीं।"

मैं—"नहीं, मुझे सितारसे बड़ी उलझन मालूम होती है। अभी नहीं सीखूंगा। बादको कभी सीख लूंगा। आखिर आप दूसरी सितारी मेरे लिये खरीदेंगे ही। फिर हारमोनियम क्यों नहीं ले देते?"

पिता—"मगर हारमोनियम कोई बाजामें बाजा है? उसमें सब स्वर नहीं निकलते और जब उसमें पड़ जाओगे तो फिर कोई बाजा सीखनेकी तबीयत न चाहेगी। अच्छा, आज दोपहरको City Stores से व्याला ले-लेना।"

मैं जानता था कि उस्ताद व्याला बजाना भी जानता है—सिर्फ वह हारमोनियम ही नहीं जानता था। अब क्या करूं?

मैं--"प्याला बजाते तो मुझे शर्म मालूम होगी। लोग मुझे सारङ्गीवाला कहेंगे। मुझे हारमोनियम ही मंगा दीजिये। भट्टाचार्य बाबूने सिखा देनेका वायदा भी किया है।"

पिता हंस पड़े और कहा—"अच्छा जाओ, उन्हींको अपने साथ दूकानपर ले जाना और 'लिङ्कल रोड' का कोई खरीद लेना। सीखनेके लिये चाहिये। बादको अच्छा-सा कलकत्तेसे मंगा देंगे।"

इस तरहसे मैंने उस्तादजीका क्रिया कर्म कर डाला। शामको चिराग़ जले। मेरी मांकी एक सखी साहिबा तशरीफ लाईं। मैं खाना खा रहा था। उन्होंने आते ही पूछा—

सखी—"क्यों बहिन! तुमने क्या इनकी शादी तै कर ली?"

मां—"मैं तो चाहती हूं कि तै हो जाय, मगर उन्होंने (याने मेरे पिता) अभी साफ-साफ 'हां' या 'नही' नहीं किया है।"

सखी—"जान-बूझकर अन्धी न बनना। भला वहां तुम्हें मिलेगा क्या?"

मां—"मगर लड़की तो खूबसूरत है!"

सखी—"वह खूबसूरती कै दिनकी? और दूसरे बाहर-

वाले खूबसूरती थोड़े ही देखने आयंगे। वे लोग तो हैसियत देखेंगे। क्या दिया क्या लिया यह सब देखेंगे।"

यह बात मेरे दिलमें खटकी। मैं ताड़ गया कि इनका कहना मतलबसे खाली नहीं है, क्योंकि इनकी भी लड़की ब्याहने योग्य थी। मगर पूरी काली भवानी थी। मेरे मां-बाप लड़कपनसे उसे देखते आये थे। इसलिये मुझे विश्वास था कि इनके यहां किसी तरह मेरी शादी नहीं हो सकती। अच्छा है, इनको लगी हुई बातचीत उखाड़ने दो। फिर बेखटके मैं उस गलीमें घूमूंगा। वह फिर बोली—

"दूसरे इसी शहरमें पहिले नन्हें बाबूके घर शादी तै की थी। और ऐसे अमीर घरानेमें तै करके तुमने शादी तोड़ दी, और फिर इसी शहरमें तुम ऐसे गरीबके घर बातचीत कर रही हो। तो मैं क्या, सभी लोग तुमपर थूकेंगे कि इन्हींमें कोई-न-कोई ऐब जरूर है तभी तो गरजू होकर टूट पड़े, नहीं तो ऐसे पढ़े-लिखे लड़केको नन्हें बाबू कब छोड़ते?"

इसी तरहकी ऊंची-नीची बात सुझाकर मांका ख्याल उन्होंने एकदम बदल दिया। बीचमें अपनी धन-दौलत और अपनी लड़की श्रीमती कौशल्या देवी उर्फ काली-भवानीकी भी स्तुति करती जाती थीं। मगर इसका असर वैसा ही हुआ जैसा बेजान मूर्त्तिपर पुजारीकी स्तुतिका।

जब वह चलने लगीं तो मैंने कहा—"चलो चची, तुम्हें पहुंचा आऊं।" चचीको बाछें खिल गईं। बड़े प्यारसे कहा—"आओ बेटे।" मगर जब बेटे साहिब सड़कपर पहुंचे तो अकड़ गये कि—"इधरसे नहीं इस गलीसे चलो तो चलूंगा, वरना नहीं। क्योंकि घटा घिर आई है। पानी बरसने ही वाला है।"

चची—"क्या इधरसे नजदीक है?"

मैं—"बहुत।" मगर सच पूछिये तो गलीका रास्ता बड़े घुमावका था। जब उस लड़कीके मकानके पास पहुंचा तो देखा कि उसके बरामदेमें एक चिराग जल रहा है। वह कुछ सो रही है और बसन्तीकी मां हुक्का पी रही है। अब तो चचीके साथ एक कदम भी आगे चलना खलने लगा। जीमें आया कि यहींसे उनको रास्ता बताऊं, मगर मुरौवतके मारे जाना पड़ा।

चची तो अपने मकानमें घुस गईं। मगर मुझको दरवाजे हीपर रोक दिया और कहा कि "बेटे, जरा यहां ठहर जाना।" बेटे साहिब बहुत चकराये कि आज यह अनोखी रोक-टोक कैसी? इससे और भी उत्कंठा बढ़ गई और हजरत धीरे-धीरे मकानके अन्दर घुस ही गये।

आंगनमें पहुंचते ही चचीने कौशल्यासे कहा—

"जा भीतर भाग यहांसे, जल्दीसे रेशमी साड़ी बदल ले।"

अब तो मुझसे हँसी न रुकी। जबानसे निकल ही तो गया कि "रेशमी साड़ीकी इज्जत न बिगाड़िये, मैं खुद ही जा रहा हूं।" यह कहकर वहांसे भागा और वसन्तीके घरके पास आकर दम लिया। पानी एकाएक बरसने लगा, तो भी मैं उस जगह चोटोंकी चाल चलने लगा। वह लड़की उस वक्त अकेली बैठी थी। आहट पाते ही वह उठ पड़ी और न जाने कैसे उसने अंधेरी रातमें मुझे पहचान लिया। प्रेम अपने प्रेमी-प्रेमिकाओंके दिलमें कुछ अजीब बिजली पैदा किये रहता है; जो हर वक्त दोनोंके दिलोंमें बिना तारके दौड़ती रहती है। यह। Science of Telepathy है। और यह इल्म प्रेमहीसे पैदा होता है। तभी तो "बिहारी" कहते हैं कि—

"कागदपर लिखत न बनत, कहत संदेस लजात।
कहि है सब तेरो हियो, मेरे हियकी बात॥"

और यही बात 'कबीर साहिब' भी कह गये हैं कि—

"प्रीतमको पतियां लिखूं जो कहुं होय विदेश।
तनमें मनमें नैनमें, ताको कहां सन्देश॥"

यह तो सैकड़ों कोसकी दूरपरकी वात हुई। तो प्रेमिका अगर चिककी आड़में हो या सहेलियोंकी झुरमुटकी ओट-में छिपे तो कहीं प्रेमीकी नजरसे वह छिप सकती है? या प्रेमी अगर भीड़में हो या अंधेरेमें हो तो उसकी आहट प्रेमिकाको न मालूम हो—क्या मानी? मिलापके समय न पलक उठती है और न जवान खुलती है तौभी तो दोनोंके दिल हजार जवानसे वातें करते ही हैं। एक दूसरेका हाल जान लेते हैं, जैसा कि हज़रत दाग फरमाते हैं—

"शर्मसे गो आंख मिलाते नहीं देखा उनको।
पार होतो हैं कलेजेके निगाहें क्योंकर?"

और इसीकी 'हसरत' मोहानी साहिव भी ताईद करते हैं कि—

"खामाशोकी अजब यह
गुफ्तगू है वस्लमें बाहम।
न कहते हैं वह कुछ हमसे
न हम कुछ उनसे कहते हैं॥"

इसलिये उसके दिलने मेरी आहटसे मुझे पहचाना तो कोई अचरज न था। वह मुझे पानीमें भीगते हुए देखकर आखिर बोल ही पड़ी।

वह—"अरे क्यों भीगते हो ? जरा ठहर क्यों नहीं जाते ?'

मैं—"लो, मैं ठहर गया।" यह कहकर वहीं गलीमें खड़ा हो गया। बादल अब और छाती फाड़के बरसने लगे। मैं पानीमें अब और भी तरबतर होने लगा।

वह—"अजीब आदमी हो। मैंने वहां रुकनेके लिये थोड़े ही कहा है।"

मैं—"नहीं। वहां आऊंगा जभी जब तुम मेरे यहां पानी भरनेके लिये आनेका वादा करोगी"

वह—"अच्छा आऊंगी, तुम भाग तो आओ।"

मैं बरामदेमें चला गया और उंगलियोंसे सरसे पानी निकालने लगा। वह लपककर मेरे पास आई और मेरे कमीज़के सिरे पकड़कर जल्दी-जल्दी उसमेसे पानी निचोड़ने लगी। इतने ही में किसीने भीतरसे पुकारा 'चंचल'! वह अन्दर चली गई। और मैं हँसता, उछलता, कूदता, फांदता पानी हीमे घर दौड़ आया। खुशीमें ऐसा दीवाना हो गया कि मालूम होता था कि लाखों रुपये कहीं पड़े मुझे मिल गये।

---

[११]

"हम हैं मुश्ताक और वह बेजार।
या इलाही यह माजरा क्या है ॥"

उस दिनसे वह बराबर आने लगी। मगर अहमदके डरके मारे एक दफ़ा भी उससे न बोल सका। इसलिये कई बार अहमदसे लड़ाई कर लेनेकी कोशिश की। मगर वह मुझसे ख़फा ही नहीं होता था। अब हारमोनियम आ जानेसे वह और भी दिन भर परछाहीकी तरह मेरे साथ रहने लगा। खैर, मैं खाली उसका दर्शन पाना ही बहुत समझता था। न बातचीत हो, न सही; मगर उसकी निगाहोंमें कुछ रुकावटके चिह्न दिनोंदिन मुझे मालूम होने लगे। इससे फिर परेशानी बढ़ने लगी।

आखिर भाग्यको मेरी हालतपर तरस आया और मेरी परेशानी कम करनेकी युक्ति निकाली। एक दिन रातको मां-बापको बातें करते सुना कि पिताने मेरी लगी हुई शादीके बारेमे साफ तौरसे इन्कार कर दिया। ईश्वर जाने किसलिये! उसी वक्तसे मैं सुबह होनेकी दोआ करने लगा ताकि मैं आज़ादीसे उस गलीमें अब चक्कर लगाऊं।

सुबहको मुंह-हाथ धोकर सीधे उस गलीमे चला

गया। वाहरी किस्मत! जब ईश्वर देता है तब छप्पर फाड़के। देखा कि बसन्ती भी आ गई है और अपने बरामदेमें बैठी हुई है। मैंने अदबदाकर उसे छेड़ा। वह भी खुशीसे मिली। इस तरहसे उससे बोलचाल पैदा कर ली। फिर तो बीसों दफे दिनमें उधर जाने लगा और हर दफे बसन्तीके जरा टोकनेपर मैं खड़ा हो जाता था, और इधर-उधरकी बातें करता था। और बीच-बीचमें नजर बचाकर चञ्चलको प्यासी चितवनसे देख लिया करता था। बसन्तीकी बातोंसे मालूम हुआ कि चञ्चल इन लोगोंकी दूरकी रिश्तेदार है। इसके मां-बाप मर गये हैं। इसलिये कुछ दिनोंके लिये यह मिहमान होकर आई है। कहांसे आई है और कबतक रहेगी यह सब मारे शर्म और डरके न पूछ सका, कि ऐसा न हो मेरी दिलचस्पी जाहिर हो जाए।

अब बसन्ती भी मेरे घर आने लगी और सभी लोगोंके सामने किसी-न-किसी बहानेसे बेधड़क मेरे पास चली आती थी। और बड़ी देरतक बातें करती थी। जब कोई नहीं होता था तो उसके सरसे ओढ़नी और आंचर भी अपनी जगहसे हमेशा सरक जाते थे। एक दिन वह मेरी मांके सामने पूछ बैठी—

वसन्तो—"क्योंजी ! पहिले तुम मुझसे सीधे मुंह बोलते क्यो नहीं थे ?"

मैं—"पहिले नासमझ था।"

वसन्ती—"नासमझ तो हमारे सामने हमेशा ही रहोगे।"

मैं—"वाह ! कहीं कहना न ऐसा। अब मैं समझदार हो गया हूं।"

वसन्ती—"ओ हो हो ! कलके छोकरे आज मेरे सामने समझदार बनने चले हैं।"

यह कहकर हंसीसे उसने मेरे गालमे गुद्दा लगा दिया। जीमें आया कि खींचके एक तमाचा मार दूं। मगर क्या करता। अगर वह गुस्सेमें भी एक नहीं सैकड़ो गुद्दे मुझे लगाती तो भी मैं किसीकी खातिर चुपकेसे सह लेता। इसी तरह उसकी लपछप दिनोंदिन बढ़ने लगी। यहांतक कि अपने मकानपर भी 'चञ्चल' के सामने मुझसे चुहलें करने लगती थी।

एक दिन शामको जब वसन्तीके मकानसे लौट रहा था वैसे ही चञ्चलने मेरे बरामदेपरसे पानी लानेके लिये घड़ा उठाया। बसन्तीने झटसे उसके हाथसे घड़ा छीन लिया और खुद ही पानी भरने चली। 'चञ्चल' का चेहरा गुस्सेसे तमतमा उठा। बिगड़ कर बोली—

चं०—"जब तुम्हीं पानी भरने जाती हो तो मेरी बेला जाय खाना बनाने," मैंने रास्तेमें बसन्तीसे पूछा कि इस खाना बनाने और पानी भरनेसे क्या मतलब? उसने कहा कि तुम्हारे बम्बेके पानीसे दाल बड़ी जल्दी गल जाती है।

मैं—"मगर तुम तो कभी पानी भरने आती न थी। तुम्हे कैसे मालूम हुआ?"

बसन्ती—"उसी चिकनमुंही छोकरीने बताया।"

मैं कुछ समझकर दिलमें हंसा। मगर इस मस्तानी देवीपर बेहद गुस्सा आया कि आज एक मौका चञ्चलसे बात करनेका मिला भी था, वह इस कम्बख्तने छीन लिया।

मैं समझता था कि बसन्तीके होनेसे मेरी परेशानी कम होगी, मगर अब मालूम हुआ कि यह और भी बढ़ चली। उसके मारे न वहां चञ्चलसे बात करनेका मौका पाता था और न अहमदके मारे यहां।

आज अहमद बुरी तरह हारमोनियमका एक नया गत बजानेमें उलझा हुआ था। चञ्चलके आनेका वक्त भी करीब था। मैंने अहमदसे कहा कि आवाज भी मिलाते जाओ वरना गत भूल जाओगे। ताकि उसका ध्यान बाजेको

तरफ़ एकदम तन्मय हो जाये। इतनेमें चञ्चल दिखाई पड़ी। मैं चुपकेसे उठा और धीरे-धीरे टहलता हुआ बढ़ा। जब मेरे पाससे वह गुजरने लगी तो तानेमें बोली—

चञ्चल—"अब तो बिना उधर गये चैन ही नहीं पड़ता ? पहिले तो उधर कोई झांकता भी न था !"

जबतक मैं कुछ जबान हिलाऊं वह दूर निकल गई। जब लौटते वक्त फिर मेरे बराबर पहुंची तो मैं कुछ कहनेहीवाला था कि वह बोल उठी—

चञ्चल—"अब मैं आजसे न आऊंगी।"

जो कुछ कहनेवाला था, मैं भूल गया। मैं खड़ा सोचता ही रह गया और वह नजरोंसे गायब हो गई।

---

[१२]

"वख्तको ऐश ग़रीबोंका गवारा न हुआ।
हम रहे गैरके कोई हमारा न हुआ॥"

हाय! क्या सोचा था और क्या हो गया। मैंने उसकी खातिर बसन्तीसे हेलमेल पैदा किया। उसको देखनेके लिये बार-बार उसकी गलीसे निकलता था। मैं उसके पास जरा खड़ा रहनेके निमित्त बसन्तीसे हंसता-

बोलता था। मगर भाग्यकी बलिहारी! वह क्या-से-क्या समझ गई! मैं किस तरह उसे बताऊं कि मैं पहिले क्यों नहीं उधर आता था। वह पढ़ी भी तो नहीं है कि सारा हाल लिखकर चुपकेसे उसे दे दूं।

अब दिलमें ठान लिया कि अगर वह बरांडेपर आयगी तो जिस तरह मुमकिन होगा उसका भ्रम दूर करूंगा। बलासे अहमद मुझे उससे बातें करते देख ले और मुझपर थूके, परवाह नहीं। उसकी खातिर सब सहूंगा। मगर उसने आना ही एकदम बन्द कर दिया। बसन्तीके घर उससे कभी बात करनेका मौका भी नहीं मिलता था। और अब तो और भी मुश्किल हुई, क्योंकि मुझे देखते ही किसी-न-किसी बहानेसे मेरे सामनेसे वह भाग जाती थी।

मैं पागलोंकी तरह उसकी गलीमें दिनभर चक्कर लगाया करता था इसी उम्मीदमें कि शायद उससे चार आंखें हो जायं। मगर ज़ालिमने कभी आंख उठाकर मुझे देखा भी नहीं। अगर कभी धोखेमें उसकी नजर मुझपर पड़ भी गई तो वह बेमानी मतलबकी थी। अब बसन्तीको छेड़-खानी जलते हुए अंगारोंकी तरह लगने लगी। मगर खूनके घूंट पीकर रह जाता था।

अब मेरे कालेज खुलनेके कुल पांच दिन रह गये।

अहमदका स्कूल खुल गया था। इसलिये वह पहिले ही चला गया। ईश्वरसे रोज प्रार्थना करता था कि एक दफा भी बरबेपर वह चली आती तो अपने दिलका हाल उससे कह सुनाता। साफ-साफ शब्दोंमें कह देता कि अरे निर्दयी! मैं सिर्फ तुझीको चाहता हूं। मगर प्रार्थना स्वीकार न हुई।

इसी तरह तीन दिन बीत गये। मैं बिनापानीकी मछलीकी तरह दिन-रात छटपटाता रहता था। उसे मालूम था कि मैं कल जाऊंगा, क्योंकि जब वह मुझे आते देखकर अपने बरामदेसे भागकर भीतर जा रही थी तो मैंने उसे सुनाकर बसन्तीसे कहा था कि मैं फलाने दिन जानेवाला हूं। मगर तो भी वह नहीं ठहरी। मुझे पागलोंकी तरह उस गलीमें चक्कर लगाते देखकर सब मुहल्लेवाले मुझपर फिर हंसने लगे थे और आवाजें कसते थे, मगर मैं सब उसके खातिर सहता था। मैं यही चाहता था कि बलासे मुझपर जो कुछ हो तो हो, सिर्फ उससे चलते-चलाते दो-दो बातें हो जायं, ताकि उसका मैं भ्रम दूर कर दूं और अपना प्यार जता दूं। अगर कुछ भी पता पाऊंगा कि उसके दिलमें मेरे लिये भी मुहब्बत है तो दूर्गा-पूजा- सरपर जरूर आऊंगा, वरना नहीं। । और

आज जानेके लिये मेरी तैयारी हो रही थी। मुझे विश्वास था कि आज चञ्चल जरूर आयगी। मैं सुवहहीसे उसकी राह देखने लगा। दोपहरतक मैं खुद भी वीसों वार उसकी गलीमें गया, मगर वह न मेरे यहां आई और न मेरी आवाज सुनकर भीतरसे अपने वरामदेमें निकली। अव मेरा वदन सुलगने और दिल खौलने लगा।

गाड़ीका वक्त आ गया। मेरे असवाव स्टेशन भेजे जाने लगे। मैं कपड़े पहिने फाटकपर वड़ी वेचैनी और वेकलीके साथ उसका इन्तजार कर रहा था कि शायद आती हो। जो हार उसने दिया था, मैंने उसे रूमालमें बांधकर वड़ी हिफाजतसे रख छोड़ा था। यही उसकी एक निशानी मेरे पास थी। वह वंधा हुआ रूमाल इस वक्त मेरे हाथमें था। इसलिये कि अगर उसको मेरी मुहब्बतका विश्वास न होगा तो इन्ही सूखे हुए फूलोंको दिखाकर उसका शक दूर करूंगा। मगर अफसोस! वह न आई।

आई भी तो कौन? अकेली वसन्ती। उसे देखते खाँ जल-भुनकर खाक हो गया। मर्दोंके आंसू लाख घूंट पं करनेपर भी नही निकलते। निकलते भी हैं तो अट और वह भी जव दिलपर सख्त-से-सख्त चोट

लगी होती है। मगर औरतोंके आंसू पलकोंमें होते हैं? जिस तरहसे वह पलक गिराती है इसी तरहसे वह जब चाहें तब बिना कोशिशके आंसू गिरा सकती है। चाहे अन्दरसे हंसती क्यों न हों? इसी तरह वसन्तीने भी आते ही आंखोंमें आंसू छलका लिये। उस वक्त मैं अपनी झुंझलाहट छिपा न सका, चिढ़कर बोल ही उठा—"चलो, हटो यहांसे सिर न खाओ।" इतना कहकर मैं फाटकसे बाहर सड़कपर चला गया और वह मेरे घरके भीतर गई।

वसन्ती आई और वह न आई। इतनी कठोरता! इतना जुल्म! उफ! अब मैं बरदाश्त नहीं कर सकता था। अपने दिलको बेकली रोक नहीं सकता था। अपने गुस्सेको दबा नहीं सकता था। बिलकुल पागल-सा हो रहा था। जीमें आया कि मारो गोली उस लापरवाह-को। बिना उससे मिले ही स्टेशन चला जाऊं। मगर फिर दिलने रोका कि शायद वह बीमार हो या कोई काममें लगी हो। गाड़ी छूटनेमें अभी बीस मिनट बाकी हैं। वसन्ती यहां है। वहां मैदान खाली है। तुम्हीं न चले चलो।

मैंने कहा, जो हो सो हो। मगर मिलूंगा जरूर। और

साफ-साफ दिलका हाल कह डालूंगा। यह सोचता हुआ मैं आंख बचाकर गलीमें घुस गया और फिर सरपट दौड़ा। वह बरामदेमें अकेली सोचमें बैठी थी। मुझे देखते ही उठी और भागनेवाली थी कि मैंने दूर हीसे कहा—

मैं—"अरे जरा ठहर जा, जालिम !"

वह ठिठुककर खड़ी हुई। मगर न मेरी तरफ देखा और न कुछ बोली।

मैं - "मैं जा रहा हूं।" मगर कोई जवाब नहीं।

मैं—"मुझे तुमसे कुछ कहना है।" फिर भी चुप।

इतनेमें एक आदमी वहां आ गया। उसने इससे कुछ कहा और यह भी आंख मिलाकर और मुस्कराकर उससे बोली। यह देखते ही मेरे कलेजेमें जैसे सैकड़ों बिच्छुओंने यकायक डंक मार दिये। मैं तड़प उठा। जिसके लिये मैं मरा जाता हूं, जिसकी एक मीठी नजरके लिये तरस रहा हूं और वह जालिम ऐसी लापरवाह कि मुझे फूटी-आंख देखती भी नहीं। मुंहसे बाततक नहीं करती। और खास-कर ऐसे वक्त, जब कि हम दोनों छूट रहे हैं। शायद फिर मिले या न मिलें। और मेरी ही आंखोंके सामने गैरसे मुस्कराकर बोली। उफ! मारे गुस्सेके मैं अन्धा हो गया उस वक्त मुझे मालूम हुआ कि मैं भी कैसा बेवकूफ हूं कि

अब भी प्रेमका दम भरता हूं। थुड़ी है ऐसेमनहूस प्रेम-पर! थुड़ी है ऐसे वेहया प्रेमीपर! थुड़ी है ऐसी लापरवाह प्रेमिकापर! जो मेरी परवाह नही करती तो मैं उसकी क्यो परवाह करूं?

"फिर जाने दे जो फिर गये तकदीरकी तरह।
गेसुएयार 'शाद' तो कोई खुदा नहीं॥"

यह ख्यालात आनन-फानन मेरे खौलते हुए दिमागमें आये और उन्होंने आते ही मुझे वेकावू कर दिया। मैंने हारका बंधा हुआ रूमाल उसे खींचकर मारा और कहा—"ले जा, अपनी चीज।" फिर सीधा भागता हुआ स्टेशन आया।

मगर उसके बाद हाय! बहुत पछताया, बहुत रोया, उसे फिर बहुत ढूंढ़ा, मगर उसका पता न पाया। अफ-सोस! आखिरी वक्तमें भी किस्मतने मुझे उससे कुछ कहने न दिया, और यों दोनोंके दिलकी बात हमेशाके लिये दिल-हीमें रह गई, क्योंकि हम दोनों उस वक्तसे ऐसे भाग्य-चक्रमें पड़ गये कि न मुझे मालूम है कि वह कहां है और न वह जानती है कि मैं कहां हूं।

———

गङ्गा-जमनी

दूसरा खण्ड

नवयुवक-प्रेम

जूलियट

[१]

प्यारी नोरा !

तुम ऐसे वक्त क्यों बीमार पड़ गई कि मेरे कमरेसे हटाकर तुम 'सिक-रूम' (बीमारोंके कमरे) में पहुंचाई गई। तुमसे आज बातें करनेका जी चाहता है। मगर कैसे करूं ? तुम्हारे पास पांच मिनटसे ज्यादा किसीको बैठनेका हुक्म नहीं है और दूसरे उस वक्त कोई-न-कोई तुम्हारे कमरेमें जरूर ही मौजूद रहता है। फिर दिलकी बातें क्योंकर हों ? और बिना कहे रहा भी नहीं जाता। खासकर आजकी-सी बात न कहते बनती है और न दिलमें रखते बनती है। आज यकायक दो बजे मेरा सर दुखने लगा। उसी वक्त मैं स्कूलसे चली आई। अकेले कमरेमें बैठे-बैठे जब तबियत घबराने लगी तब मैं अखबार पढ़ने 'कामन रूम' (आम कमरा) में चली गई। वहां भी

जब जी न बहला तब मेजपरसे 'ब्लाटिंग पेपर' उठाकर मुंहपर उससे हवा करती हुई 'बोर्डिंग हाउस' की फुल-वारीमें टहलने लगी। न जाने क्यों 'ब्लाटिंग पेपर' को मैं बार बार देखने लगी। यह सिर्फ एक ही दफेका इस्तमाल किया हुआ है, क्योंकि इसपरके पहिले छापके उल्टे हर्फ दूसरे छापसे विगड़ने नहीं पाये हैं। यह बात जरूर है कि वह छपे हुए हर्फ गिचपिच और फूले हुए हैं और उसपर उल्टे होनेकी वजहसे यों उन्हें कोई सपनेमें भी पढ़ नहीं सकता। मगर गौरसे देखनेसे मालूम होता था कि इससे कोई खत छापा गया है। और उसकी बीचकी कुछ लाइनं छोटी और बराबर हैं। यह देखते ही मेरा दिल खटका कि हो-न-हो उस खतमें कविता लिखी गई है। किसीको अपने मां-बाप या किसी रिश्तेदारको कविता लिखनेकी जरूरत नहीं होती। फिर ऐसा खत किसको लिखा गया है—यह जाननेके लिये मेरी उत्कण्ठा बढ़ने लगी। बस मैं उस 'ब्लाटिंग'को लिये हुए अपने कमरेमें चली आई और घण्टों उसको पढ़नेके लिये सर मारती रही, मगर एक शब्द भी न निकाल सकी। यहांतक कि शाम हो गई; सब लड़कियां स्कूलसे आकर 'रेवरेन्ड विन्थराप'का लेकचर सुनने बड़े गिरजेघरको गईं। मगर मैं उस खतको पढ़नेके लिये इतनी
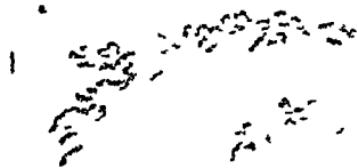
मेजपरसे ब्लाटिंग पेपर उठाकर मुंहपर उससे हवा करती हुई बोर्डिंग हाउसकी फुलवारीमे टहलने लगी। [पृ० १४२

बेचैन थी कि मैं सख्त सरदर्दका बहाना करके लेट गई। जब रात हुई तब लैम्प जलाकर फिर ब्लाटिंगको पढ़नेकी तरकीबें सोचने लगी। आखोरमें तरकोब हाथ आ गई। झट मैंने ब्लाटिंगकी छपी हुई तरफको लम्पके सामने किया और उसकी आड़मे खड़ी होकर उसे उल्टी तरफसे पढ़ने लगी। ऐसा करनेसे हर्फ सब सीधे मालूम होने लगे, मगर तो भी बहुत धुन्धले थे। इतने होमें सामने मेजपर रखे हुए आईनेपर नजर पड़ी। फिर क्या था, पूरा खत-का-खत सीधे हर्फोंमें लिखा हुआ उसमें साफ दिखाई दिया। सिर-नामा पढ़ते ही मेरी आंखोंके सामने अन्धेरा छा गया। दिल धड़कने लगा और हाथसे ब्लाटिंग छूट गया।

मैंने फिर कांपते हुए हाथोंसे उठाया और आईनेमें पढ़ने लगी। नोरा! तुम्हें किस तरह बताऊं उसमें क्या लिखा था? उसके शुरूके तीन ही शब्द मेरे कलेजेमें न जाने क्यों चुटलियां ले रहे हैं। वह क्या थे, लो, तुम भी सुन लो। "मेरे प्यारे साइन्स मास्टर!" इतना सुनते ही तुम भी जरूर चौंक पड़ोगी। तुम्हारा साइन्स मास्टर बड़ी शिफारशोंसे इस स्कूलमें नौकर हुआ है। और यह भी मैं जानती हूं कि उसकी बड़ी-बड़ी शिफारशोंपर भी उसकी नौजवानीकी उमर देखकर "मिस फ्राउनिङ्ग" उसको

मनसूबे खाकमें मिल गये। मैं भी फिर सबोंकी तरह कहने लगी कि न इसके दिल है और न सुन्दरता देखनेके लिये आंख। मगर इन तीन शब्दोंने मेरे ख्यालात कुछ घड़ीके लिये बदल दिये। मैं जल्दी-जल्दी उस खतको इस उम्मीदमें पढ़ने लगी कि इसमें मास्टरके दिलका भेद कुछ जान पाऊंगी, क्योंकि इसमें जरूर उसके खेतोंका हवाला दिया होगा। मगर इस बातमें नाउम्मीद हुई, क्योंकि यह पहिला खत है जो मास्टरके पास भेजा गया है, और वह भी गुम-नाम। इसको किसने लिखा है—कुछ पता नहीं चलता। किसपर शक करूं? यहां तो मुझे सभी चोर दिखाई पड़ती हैं। लड़कियोंकी लिखावट बहुतोंकी एक-सी है! दूसरे खत बहुत बनाकर लिखा गया है। तीसरे, ब्लाटिंग पर रोशनाई फूली हुई और कहीं-कहीं साफ उतरी भी नहीं है। आज मास्टरका खुद एम० ए० और बी० एल० पढ़ने-का दिन है। इसलिये वह हमारे स्कूलमें आया न था। खत स्कूलमें आज किसी तरह उसके पास पहुंचाया नहीं जा सकता था। यह जरूर ही डाकमें छोड़ा गया होगा। आज खत क्यों लिखा गया, क्योंकि लिखनेवालीको मालूम था कि आज लेक्चर सुनने बड़े गिरजेको जाना है और वहां लेटरबाक्स है। वहीं आंख बचाकर खत छोड़नेका

मौका मिल सकता है। क्या गल्ती हुई है! कहीं मैं भी आज वहां गई होती, तो मुमकिन था कि मैं उस लड़कीको ताड़ जाती। मगर अफसोस खत देरमें मिला। कल मास्टरको यह खत मिलेगा। मगर कल छुट्टी है। परसों जब वह स्कूल आयगा तब देखना चाहिये कि मास्टरपर इसका क्या असर पड़ा और वह किसपर शक करता है। अगर वह गावदी और वेदिलका है तो इसकी वह कुछ परवाह न करेगा या वह किसोसे इसकी शिकायत करेगा।

मेरी अच्छी नोरा! क्या तुम परसोंतक अच्छी नहीं होगी? दिलको मजबूत करके परसों तुम स्कूल जरूर जाओ और भांपो कि इस ख़तका क्या गुल खिलता है। अफसोस! मैं साइन्स नहीं पढ़ती और न उर्दू 'सेकेन्ड फार्म'। अगर मैं मास्टरके दर्जेमें कुछ देर भी बैठनेका वहाना पाती तो तुम-से ऐसा न कहती। मैं खुद ही उसके दिलको टटोल लेती। मैं दाईके हाथ आजका आया हुआ अंग्रेजी मासिक पत्र तुम्हारे दिल बहलानेके वहानेसे भेजती हूं और उसके भीतर अपना खत और गुमनाम खतकी एक नकल रखकर किताबका एक वर्क मोड़े देती हूं। इससे तुम हमेशाकी तरह समझ जाना कि इस चढ़ाए हुए वर्कके भीतर कुछ

छिपा हुआ सन्देशा है। अच्छा अब गुडनाइट और चुम्बन।

तुम्हारी—
'मेरी'

गुमनाम प्रेमपत्रकी नक़ल

६ अगस्त १९१४

"मेरे प्यारे साइन्स मास्टर !

"क्या करूं ? अब दिलपर वस नहीं चलता। इसके भेदको तुम्हें बतानेके लिये मजबूर हो गई हूं, क्योंकि इसको मैं अब और तुमसे छिपा नहीं सकती। मगर कहूं तो क्योंकर कहूं—

"दिल मिला था जो मुझे काश जबां भी मिलती।
तब यह नागुफ्तावेह हालत न हमारी होती॥
दिलमें यक दर्द हैजो ओठ छिये बैठी हूं।
क्या कहूं किससे कहूं राज पिये बैठी हूं॥
दिलमें है यह कि तुम्हें बानिये बेदाद कहूं।
जीमें आता है तुम्हें मैं खिलम-ईजाद कहूं॥
मालिके दिल कहूं और दारुये दीवाना कहूं।
पर जबां बन्द है क्या तुमसे कहूं या न कहूं॥"

बस कह चुकी। इससे ज्यादा नहीं कहा जाता। मगर क्या तुम मुझे जान सकते हो, मैं कौन हूं? अगर जान गये हो तो मिहरबानी करके अपने दिलका हाल मुझे जल्दी बताना। तुम्हें कसम है, इस खतका हाल कोई जानने न पावे। हो सके तो इसे जला देना।

"प्रेममे मतवाली
तुम्हें प्यार करनेवाली
कोई......"

---

[२]

प्यारी नोरा!

आखिर तुम आज स्कूल न गई। बड़ी बेवकूफी की। आजका-सा तमाशा तुमने जिन्दगीभर न देखा होगा। तुम्हारा साइन्स मास्टर बड़ा ही दिलचस्प, दिलदार और होशियार आदमी है। वह मेरी भूल थी जो उसे गावदी समझती थी। उसकी बेरुखी और बेखबरीकी वजह कोई दिली चोट और बदनामीका डर मालूम होता है। वरना यों तो वह छेड़खानियोंमें हम लोगोंसे भी तेज़ है। खत तो मास्टरको मिल गया है। जिस वक्त उसने स्कूलके हातेमें पैर रखा उसी दमसे मैं उसका रङ्ग-ढङ्ग ताड़ रही

थी। आज वह बहुत परेशान मालूम होता सीको खबर न निगाहें चारों तरफ रह-रहकर फेंकने लगा। ठी निकली। चारों दरवाजे खुले रहते हैं, मगर उनकी कुर्सी ऐसी मुस्टरने पर थी कि दूसरे दर्जमें बैठी हुई लड़कियोंको ठीक तरहसे नहीं देख सकता। उसने आते ही कुर्सीसे ठोकर ली और झुंझलाकर कुर्सी और मेज घसीटकर ऐसी जगह कर दी, जहांसे वह हर तरफके दर्जेकी लड़कियोंको देख सके। फिर वह नजर बंचा-बचाकर एक-एकको अपनी नजरोंसे परखने लगा। आज इतने दिनोंके बाद मेरी भी आंखें उससे लड़ीं। नोरा! मैं कह नहीं सकती कि उस वक्त मेरी हालत क्या थी। न जाने क्यों बदन थरथरा उठा, दिल धड़कने लगा और पलकें गिर गईं।

ओलिकाकी हालत आज देखने काबिल थी। उसकी सारी शोखी, शरारत और चुलबुलाहट न जाने क्या हो गई। वह शुरूसे आखीरतक मास्टरको नजरोंसे बचनेकी कोशिश करती थी। यहांतक कि उसके दर्जेमें जानेसे आज हिचक रही थी। बड़ी मुश्किलोंसे गई भी तो चोरकी तरह और जाकर मुँह छिपाकर आड़में सबसे पीछे बैठी। ऐसी झेंप रही थी कि मास्टरको सलाम करना भी भूल गई। तब मास्टरने खुद गुडमार्निंग किया। मगर इसपर भी 'जेली'

…ाव न निकला तब मास्टर मुस्करा पड़ा बस कर पूछा कि "जेसी! आज तुम छिपती क्यों हो? क्या तुम आकर अपनी जगहपर बैठो।" मगर 'जेसी' कांपने लगी और वहांसे न उठी।

मास्टरको अब यकीन हो गया कि खतकी लिखनेवाली 'जेसी' है। और मैं भी यही समझती हूं, और मास्टरको मैं इस बातमें शाबाशी जरूर देती हूं, कि उसने ठीक चोर पकड़ा। मगर इस काममें 'जेसी' अकेली नहीं है, बल्कि कई लड़कियोंकी रायसे उसने ऐसा किया है, क्योंकि आज स्कूलमें एक अजब खलबलीसी मची हुई थी। मेरी तरह बहुतसी लड़कियां मास्टरको घूर रहीं थीं। हर जगह उसीकी बातें हो रही थीं। इसीलिये मास्टर जिधर देखता था उधर ही धोका खाता था। मगर आखिरमें 'जेसी' हीपर उसकी नजर जाकर अटकी। तब मास्टर मुस्कराता हुआ उठा और बोर्डपर सवाल लिखनेके बहाने, २०० लड़कियों और १५ निस्ट्रेसोंकी आंखोंमें धूल झोंककर, 'जेसीके खतका जवाब दिया। नोरा! तुम्हारे मास्टरने बेशक यहांपर गजबकी होशियारी दिखलाई। मेरी अक्ल दङ्ग रह गयी, तबियत फड़क उठी और जी खुश हो गया। न समझनेवालियां सब ताकती ही रहीं और मास्टर सम-

झनेवालोंसे छेड़-छाड़ कर गया और किसीको खबर न हुई। मगर समझनेवाली वहांपर मैं ही अकेली निकली। 'जेसी' भी अन्धी थी। लो, तुम भी सुन लो, मास्टरने बोर्ड पर क्या लिखा था। यह ख्याल रहे कि मास्टर उस वक्त 'जेसी' के दर्जेको उर्दू 'सेकेण्ड फार्म' पढ़ा रहा था।

बोर्डपरका लिखा हुआ सवाल।

"बड़े अक्षरके शब्दोंकी 'पार्जिङ्ग' करो"

"**आपने** आजका अखबार पढ़ा होगा। उसमे **लिखा** है कि जब शाहजादा रूस अपनी मांसे यह कहकर कि **तुम हमको** दुश्मनोंके खीमोंमें जानेसे मत रोको, ईश्वर सब **भला** करेगा, **जान** पर खेलकर कैदखानेके पास **गये**, जहां उनके बाप कैद थे। बदले हुए भेसमें **देखकर** उस सञ्जा **खतको भला** कोई क्या पहचानता? मगर जैसे ही वह दो-चार **हाथ** फाटकसे बढ़े होंगे कि उन **को** जासूसोंने **पहचान** लिया और वह पकड़ गये। यह **भी** एक बड़ी पुरदर्द कहानी है जिसका सिर्फ तर्जे बयान ही **सितम** ढानेके लिये काफी है। वह खूनियोंसे गिड़-गिड़ाकर कहने लगे कि **तुम्हें** जान ही लेना है तो **हम** मरनेके लिये तैयार हैं। हमारे बापको छोड़ दो। इसपर वह सब **मान गये**। बादशाहको छोड़ दिया और फिर यह

लोग इस नये कैदीकी मौतके लिये इस किस्मका तीर-अन्दाज ढूंढ़ने लगे जिसका निशाना खाली न जाये। बस अब क्या कहना है, वह बेचारे इस तरह कुर्बान हो गये।"

नोरा! अब तुम ही सच सच कह दो, तुम्हारे मास्टर-का 'जेसी' को जवाब देनेका तरीका कितना प्यारा और छिपा हुआ है। उसने कई बार 'जेसी' को सवाल करनेके बहाने कहा कि 'जेसी' सिर्फ बड़े अक्षरोंके शब्दोंपर ध्यान दो तभी तुम्हारे जवाब ठीक निकलेंगे। मगर उसकी इतनी अक्ल कहां जो मास्टरके दिमागका मुकाबला करती। नोरा! तुम भी जरा बड़े अक्षरके शब्दोंमें पढ़कर देखो। मास्टरने खतका जवाब दिया है। मैं उन शब्दोंको तुम्हारे लिये इकट्ठा किये देती हूं।

"आपने लिखा है तुम हमको भला ज़ान गये।
देखकर खतको भला हाथको पहचान गये।
यह भी एक तर्जे सितम है तुम्हें हम मान गये।
यह नये किस्मका अन्दाज है कुर्बान गये।"

देखा नोरा? इस कैदखानेमें सख्त पहरेके बीचमें सफाई-से चोरी करनेको चोरी नहीं, बल्कि एक हुनर कहूंगी। इसलिये मास्टरको बुरा कहनेके बदले मैं उसे उसी ढमसे

तारीफकी नजरसे देख रही हूं, और उस वक्त भी इसी तरह मैं ड्राइङ्गके दर्जे में बैठी हुई उसे देख रही थी कि मास्टरकी एकाएक आंख मुझसे लड़ गई और मैं मुस्करा पड़ी। वह बौखला गया। उसने 'जेसी' की तरफ देखा और फिर मुझको देखा। मैं फिर मुस्कराई और इस दफे वह भी मुस्करा पड़ा। अच्छा, गुडनाइट, प्यारी नोरा!

तुम्हारी— वही—'मेरी',

[३]

मेरी रूठी हुई नोरा!

तुम नाहक ख़फ़ा हो। मैं क़सम खाकर कहती हूं, मैं मास्टरको प्यार नहीं करती और न प्यार करूंगी। 'जेसी' हो या तुम हो या कोई हो, जो चाहे उसे प्यार करे, मैं किसीको ऐसा करनेसे नहीं रोकती। न मैं 'जैसी'के रास्ते में बाधा डालती हूं। तुम सैकड़ों बातें मुझे गुस्सेमें कह गई। हर तरहसे तुमने समझाया, फटकारा। मैं तुम्हारी डाँट-फटकारको सर आंखोंपर धरती हूं। मैं उस वक्त तुम्हारी किसी बातका जवाब नहीं दे सकी, बल्कि तुम्हारे कहनेपर मैं भी समझने लगी थी कि मैं जो कुछ कर रही हूं, बुरा कर रही हूं। मगर अब दो दिनसे, तुम्हारा साथ छूट जानेसे, तुम्हारी बातोंका असर जाता रहा। मैं फिर

अपने पुराने इरादेपर पलट आई। बल्कि इसके बारेमें तुमसे बहसतक करनेको तय्यार हूं। जबानसे कुछ कह नहीं पाती, इसलिये कलमकी मदद लेती हूं। मगर तुम तो अब दो दिनसे 'बी' 'ब्लाक'की 'मानिटर' हो गई हो ! मेरे कमरे-को छोड़कर टीचरों (उस्तानियों) की तरह अपने नये कमरे-में अकेली रहने लगी। भला इस शानपर मेरी बातोंको अब क्यों सुनेगी ? खैर, सुनो या न सुनो, मगर बिना कहे मैं रहूंगी नहीं। तुम कहती हो कि यह कमीनापन है कि तुम 'जेसी'के कबूतरको अपने जालमें फंसाना चाहती हो। और मैं पूछती हूं कि उस 'कबूतर' पर 'जेसी'का कौन-साहक है। वह तो जंगली है। सालभरसे आकर हमारे मुहल्लेके पेड़पर बैठता है। इतना अलबत्ता मानती हूं कि 'जेसी'ने दाना फेंककर उसकी भड़क कम की और जमीनपर उतरनेकी हिम्मत दिलाई। मगर इसके बाद 'जेसी'ने क्या किया ? कुछ नहीं। अगर उसको वह सचमुच पकड़ना चाहती थी तो कबूतरको उड़नेका वह मौका ही न देती। मगर उसे इसकी कब तमीज़ थी। कबूतर वहांसे उड़ गया और अब मेरी छतपर मंडला रहा है, तो फिर अपने जालमें उसे क्यों न ला गिराऊं ? और इसमें कौन-सा कमीनापन है ? यह तो दुनियाका कायदा है। हलवाई मिठाई बनाते हैं मगर

उसका मजा शौकीन लेते हैं। किसान भूखों मरते हैं मगर उनकी मिहनतसे पैदा किये हुए अनाजको पेटभर खानेवाले कोई दूसरे ही होते हैं। सिपाही लड़ाईमें जान देते हैं मगर जीतकी बड़ाई राजाको मिलती है। इसलिये 'जेसी' का पर-काया हुआ कबूतर मेरे जालमें आ फंसे, तो मेरा क्या कसूर? दूसरे, सच पूछो तो मास्टरके लायक 'जेसी' है भी नहीं। शेर और बकरीकी छेड़छाड़ कैसी? बराबरकी नोक-झोंक हो, तब तो मजा भी है। अगर 'जेसी' मास्टरके जोड़की होती तो उसके जवाबको समझ न जाती? खाली समझती ही नहीं बल्कि उसी दम उसके पीछे वह मर मिटती। मगर वहां तो "टुकुर-टुकुर दीदम और खाक बला कुछ न फ़हमीदम"। इसीलिये तो मेरी मौक़ेकी मुस्कराहट मास्टरके शकको गड़बड़ाकर 'जेसी' परसे मुझपर खींच लाई और अब उसे पूरे तौरसे यकीन हो गया है कि खतकी लिखनेवाली मैं ही हूं और मैं भी यही चाहती हूं कि वह धोखेमें पड़ा रहे,क्योंकि मुझे न जाने क्यों इसमें एक अनोखा मजा आ रहा है और इस मजेको हाथसे खोना नहीं चाहती। इसीलिये आज मैं मास्टरपर अपना रङ्ग और जमा आई; ताकि 'जेसी' की तरफ फिर उसका ख्याल भटकने न पावे। देखो, मास्टरसे न मेरी बोलचाल है, न साहब-सलामत है, और न

भूलसे भी, उसे मुझको या मुझे उसको, इस स्कूलमें टोकनेका कोई बहाना है। फिर भी मैं आज उससे छेड़-छाड़ कर आई और मजा यह कि इस तरह कि न कोई देख सका, न जान सका, और न सुन सका। वह न पास आये, न मैं सामने गई। न वह बोले, न मैं बोली। न खत लिखा, न हाल कहलाया। मगर तोभी दिल्लगी कर आई। वह भी मुझे मान गये होंगे कि हां आज कोई अलबत्ता मेरी जोड़की मनचली दिलवर मिली है। दिलपर उन्होंने आज वह चोट खाई है कि कभी खाई न होगी। जैसे उन्होंने सबोंकी आंखोंमे धूल झोंककर अपनी अक्लमन्दीसे इस कैदखानेमें छेड़खानी की, वैसा ही जवाब आज वह पा गये। तुम लोगोंको तो निरी गावदी और हद दर्जेकी बेवकूफ समझते होंगे, जो इतने दिनोंसे उनके साथ पढ़ती हो। बातें करनेका मौका पाती हो। फिर भी तुम लोगोंके किये-धरे कुछ न हो सका। मगर आज उनकी आंखें खुल गई होंगी। तबियत फड़क उठी होगी। दिल तड़प गया होगा।

आज जब आध घण्टेकी छुट्टी हुई, लड़कियां सब खेलने चली गई और वह 'टीचर्स रिटाइरिङ्ग रूम' में जाकर सिगरेट पीने लगे। मैं उसके दर्जेमें गई और मेजपरसे उसकी किताबें उठाकर देखने लगी। उसमें 'उर्दू' का

'जमाना' नामक एक मासिक पत्र भी था। मैं उसे खोल-कर पढ़ने लगो। उसमें "खां" साहबका 'पयाम रुकमनी' (रुकमनीका खत) छपा था। बस क्या था, मांगी मुराद मिली। इस प्रेम-पत्रके लिखनेमें इस शायरने वेशक कमाल कर दिया है ऐसी ला-जवाव, दिलमें चुभनेवाली, शायरी मैंने आजतक पढ़ी न थी। उसमें उसका किस्सा यह था कि 'रुकमनी' 'कन्हइया' को चाहती थी। मगर उसके बाप-भाईने 'शिशुपाल' से उसकी शादी ठहराई। तब वह बहुत घबराई। तिलक भी चढ़ गया और शादीका दिन भी नजदीक आया। उस वक्त रुकमनीकी हालत देखने काबिल थी। जब उसका कुछ बस न चला तब उसने मजबूर होकर चुपचाप 'कन्हइया' को खत लिखा। उसमे उसने अपनी बेकसीकी हालत, बाप-भाईकी जबरदस्तियां और अपनी मौतकी तैयारियां दिखलाकर इस तरह खतम किया है कि—

"मेरा अब रोज आखिर आजके दिनको समझ लेना
फिदाये कफ्श आली जान रुक्मनको समझ लेना॥
लबोंपर आके दम अब तालिबे दीदार होता है।
निकल जाये कि ठहरे कहिये क्या इरशाद होता है'॥

नोरा ! तुम मास्टरसे वह किताब मांगकर इसे जरूर पढ़ना। वह कविता इतनी मजेदार है, मैं तारीफ नहीं कर सकती। मैं उसके पढ़नेमें इतनी मस्त थी कि मुझे खबर न हुई कि मास्टर दर्जेके दरवाजेतक आकर लौट गये। जब मैंने आंख उठाई तब देखा कि वह दूरसे मुझे 'जमाना' पढ़ती हुई देख रहे हैं। उस वक्त मुझे छेड़की सूझी। मैंने सोचा उन्होंने मेरे हाथमें 'जमाना' देख तो लिया ही है अब कोई ऐसी तरकीब करूं कि यह प्रेम-पत्र मेरी तरफसे उनके ऊपर हो जाये। यह खयाल करके मैंने पेनसिलसे 'रुकमनी' के खत' के सिरनामेपर यह लिख दिया कि—"यही उनको भी।"

इसके बाद उसके कुछ पदोंपर, जो मेरे मतलबके थे निशान लगा दिये और जहां उनमें 'रुकमनी' के नाम थे उसे काटकर 'कोई' लिख दिया और किताब उनकी मेज-पर वैसी ही रखकर चली आई। मुझे वह पद, जिनपर मैंने निशान लगाये हैं, याद हो गये हैं। उन्हें तुम भी सुन लो और देखो कि यह छेड़खानी कैसी हुई और 'जेलो' के गुमनाम खतके सिलसिलेमें यह कैसी ठीक बैठती है, क्योंकि वह उसकी लिखनेवालीका नाम जाननेके लिये परेशान थे ही और यह अब कुछ और ही गुल खिलायेगी।

(यही उनको भी)

"जो पूछें नाम मेरा श्यामकी बदनाम बतलाना।
जो पूछें काम तफरीहे दिले नाकाम बतलाना ॥
जो पूछें वजह कुलफत इश्कका अन्जाम बतलाना
जो पूछें हाल जन्ते दर्दका सरसाम बतलाना ॥
वतन पूछें तो कहना यों तो एक मुशकिलमें
रहती हूं।
मगर अब आशिकीकी आखिरी मंजिलमें
रहती हूं ॥"

* * * *

निगहबाने जहां रंगे जमाना देखनेवाले।
निगाहे मेहरसे गम दूसरोंका देखनेवाले ॥
कहां हो हालते दर्दे जनूंजा देखनेवाले।
इधर भी यक नजर अब सारी दुनिया देखनेवाले ॥
बहाले जार है कोई जलीलो ख्वार है कोई।
बहुत दिनसे मरीजे लज्जतें दीदार है कोई ॥

आखिरी पदमें 'कोई' की जगहोंपर 'रुकमिन' थे, और देखो हिन्दू-मतानुसार 'कृष्ण' के लिये 'सारी दुनिया देखने-

वाले' का प्रयोग इस मौकेपर कितना अच्छा हुआ है। और मेरे लिये सारी दुनिया यह स्कूल ठहरा। दूसरे 'श्यामको बदनाम' मेरे लिये निभ सकता है, क्योंकि 'श्याम' 'कुंवर कन्हाई' के आम मानी प्रेमी हई हैं, और मास्टर भी हिन्दू हैं। फिर क्यों न उनको मैं श्याम कहूं ? वह लो, कम्बख्त खानेकी घण्टी बज गई। पूरा हाल न लिख पाई। अच्छा, सलाम, और तुम्हारे गालोंके मीठे-मीठे चुम्बन।

तुम्हारी—'मेरी'।

---

[४]

वाह! नोरा! वाह! तुमने तो लुटिया ही डुबो दी। मैं नहीं जानती थी कि तुम्हारे ख्यालात इतने तङ्ग हैं और तुम पक्षपातसे भरी हुई हो। तुम मुझे मास्टरसे छेड़खानी करनेसे मना करती हो इसलिये कि वह हिन्दू हैं। क्यों नोरा क्या हिन्दूको उसी ईश्वरने नहीं पैदा किया है जिसने हमको और तुमको बनाया? क्या हिन्दू उस परम पिताकी पूजा नहीं करते? क्या हिन्दूके हमारे तुम्हारे ऐसे दिलोदिमाग नहीं होते? जान नहीं होती या खून नहीं होता? फिर क्यों मैं उनका ख्याल छोड़ूं या उन्हें प्यार करनेसे बाज आऊं? अरे! यह मैं क्या कह गई?

खैर, जो कह गई सो कह गई। मुझसे 'प्यार' का लफ़्ज लिखकर काटा नहीं जाता। अब शादीकी बात। सुनो नोरा, मैं बड़ी मुंहफट और आजाद ख्यालकी हूं। मैं शादी दिल मिल जानेको समझती हूं। असली शादी वही है। इसको चाहे समाज माने या न माने। जहां दिल न मिले और पादरी या पण्डित या काजीने जबरदस्ती हाथ मिलवा दिया उसे मैं शादी हर्गिज न कहूंगी, बल्कि बवाल-जान, धर्मकी तबाही, और समाजकी सत्यानासी। तुम मेरा मिजाज जानती ही हो। मैं शादी अव्वल तो किसीसे करूंगी ही नहीं और करूंगी भी तो उसी आदमी-से जो मुझे प्रेममें हर तरहसे जीत लेगा और मुझे बिन दामोंकी लौंडी बना लेगा। मगर इस तरहका प्रेमी मुझे आजतक नजर नहीं आया। एडगर, बर्टी, जान, विलियम— कई नौजवानोंने मुझपर मीठी निगाहें डालीं, मगर मेरे दिलमें वह लपट न उठी जिसमें मैं दीन दुनियाके ख्यालको झोंक दूं। "एडवर्ड" ने अलबत्ता मेरे दिलमें कुछ गर्मी पैदा कर दी थी। मेरे मां-बाप चाहते हैं कि मैं उसीसे शादी करूं। मेरा भी अबतक इरादा था कि स्कूल छोड़नेके बाद एडवर्डहीको अपना हाथ दूं। मगर अब मास्टरके सामने उसका ख्याल डगमगा गया। इसलिये जब उसको

इतनी जल्दी भूल सकती हूं तब मैं उसका साथ जिन्दगी-भर क्योंकर दे सकूंगी ? वह मास्टरसे देखने-सुननेमें हर हालतमें अच्छा है। रंग खूब गोरा, बदनका निहायत तगड़ा और मजबूत। मगर न जाने मास्टरमें कौनसी बात है जो इनके सामने उसका ख्याल दब जाता है। इस-लिये मैं अब 'एडवर्ड' को भी छोड़ती हूं. और उससे शादी न करूंगी, और मास्टरसे मैं शादी करूंगी या नहीं करूंगी; कर सकती हूं या नहीं कर सकती हूं यह सब मैंने कुछ नहीं सोचा है, क्योंकि सोचनेमे न जाने क्यों मेरे दिलमें तकलीफ होती है। फिर मैं क्यो उससे छेड़खानी करना चाहती हूं, क्योकि मजबूर हूं तबीयत नहीं मानती। खाली रूखी रोटीसे भी तो पेट भर सकता है फिर लोग चटनी अचार क्यों खाते हैं ; नाक तो सांस लेनेके लिये ही है फिर लोग लेवेण्डर इत्र या फूल क्यों सूंघते हैं, कान आवाज सुननेके लिये हैं तो यह गाना और बाजा क्यों सुनना चाहते हैं ? लोग थियेटर सरकस देखने क्यों जाते हैं ? दिल बहलानेके लिये। इन कामोंको धर्म या समाज बुरा नही कहते। फिर मेरे दिल बहलानेमें ये क्यो विघ्न डालते हैं ? मैं समाज या धर्मको खातिर अपने जीको कुढ़ाना नहीं चाहती। ईश्वरने भी स्त्रीको पुरुषके लिये और पुरुषको

स्त्रीके लिये बनाया है और धर्म और समाज भी तो स्त्री-पुरुषका मेल कराते हैं और मैं भी तो यही करना चाहती हूं। तो फिर मेरा मिलाप क्यों बुरा है? सिर्फ इसीलिये कि मैं उनकी मदद नहीं लेती या उनके नियमोंपर नहीं चलती? दूसरी बात तुम यह पूछती हो कि क्या मैं उनको सचमुच चाहने लगी। इसका जवाब मैं ठीक दे नहीं सकती। इतना जानती हूं कि हरदम वह अगर मेरे पास ही रहते तो फिर क्या कहना था। अगर यह गैर मुमकीन है तो मैं भी तुम्हारी तरह शुरूसे कहीं "साइन्स" पढ़ती आती, तो भी दिलके बहुत कुछ अरमान बातोंहीमें पूरे हो जाते। खैर, जो बात नही हो सकती उसके लिये रोना बेकार है। मगर आगे कदम बढ़ाकर मैं पीछे लौट भी नही सकती। अब इसका नतीजा क्या होगा, यह सोचना फजूल है। एक घड़ीमें क्या होनेवाला है, कोई कह नही सकता। तो फिर मैं नतीजा सोचकर अभीसे क्यों अपने जीको कुढ़ाऊं? जबतक चैनसे गुजरती है गुजरने दो "आकबतकी खबर खुदा जाने।" और अगर नतीजा सोचनेके लिये मुझे तुम जिद करती हो जिससे मैं मनकी लहरको असम्भावनाकी चट्टानपर टकराते हुए देखकर दूसरी तरफ मोड़ दूं तो लो, मैं नतीजा उन्हीसे न पूछकर तुम्हें बता दूं,

ताकि साथ ही उनके भी दिलका कुछ पता चल जाये। देखूं मेरी तरह वह भी आजाद ख्यालके हैं या धर्म समाज-के कोल्हूके निरे बैल ही हैं। अच्छा, पूछूं तो क्योंकर पूछूं? बिना उनकी अगुवानी किये हुए मैं खत भी लिख नहीं सकती। यही सोच रही हूं। दिमाग काम नहीं देता। तबीयत परेशान हो चली। बिस्तरेपर जाती हूं।

* * * *

उफ! चार बज गये। आज रातभर नहीं सोई। बिस्तरेपरसे ग्यारह बजे उठ बैठी और तबसे अबतक बराबर कुर्सी-पर बैठी हुई हूं। मैंने इतनी देरमें एक उपन्यास लिख डाला। अभी खतम नहीं हुआ। क्योंकि मैं खुद ही नहीं जानती कि इसके बाद क्या होनेवाला है। इसमे मैंने आज-तकका, नाम बदलकर, अपना ही हाल लिखा है। इसका नाम मैंने "As you like it" (जैसी मर्जी तुम्हारी) रखा है। इस उपन्यासको तुम्हारे पास भेजती हूं। तुम जब मास्टरको अपनी साइन्सकी कापी सही करनेके लिये देना तो उसके साथ कल्ह इसको भी दे देना और कहना कि मेरी एक सखीने इस कहानीको लिखा है। इसकी गलतियां ठीक कर दीजिये और आगे किस ढंगपर इसको बढ़ाकर खतम करना चाहिये वह बता दीजिये। देखो नोरा, अगर वह

होशियार होंगे तो फौरन मुझे ताड़ जायेंगे। मेरी छेड़खानो-को मान जायेंगे। मेरा सारा हाल जान जायेंगे। और आगे लिखनेका ढंग बतानेमें वह अपने दिलका भेद बता जायेंगे। देखूं क्या लिखते हैं। यह जाननेके लिये मैं अभीसे बेचैन होने लगी। सलाम प्यारी'।

तुम्हारी वही 'मेरी'

---

[५]

यह कैसे कहती हो कि उन्होने कापी वैसे ही लौटा दी। उसपर कुछ भी नहीं लिखा ? अगर तुम्हारी आंखोंमें प्रेमकी ज्योति होती तो तुमको दिखाई पड़ता कि उसमें क्या लिखा है। जिस समय तुमने मेरी कापी मुझे वापस की थी उस वक्त तुम्हारी बातसे मैं भी चकरा गई थी। मगर कमबख्त डोरा और लूसी आ पड़ीं, इसलिये मैं कुछ तुमसे उस वक्त कह न सकी। डोरासे तो मेरा नाकोदम है। पांच मिनटके लिये भी मेरा साथ नहीं छोड़ती। शामको मैंने इसलिये Hide and seek (लुकाछिपो) का खेल शुरू किया था, जिसमे छिपनेके बहाने मैं तुमसे एकान्तमें जाकर कुछ बातें करूं। मगर मेरी कोशिश बेकार हुई।

उन्होंने क्या लिखा है। कुछ भी नहीं। फिर भी सब कुछ लिख डाला। दिलमें इस सफाईसे चुटकी ली है कि गुदगुदी भी है और दर्द भी। कभी हँसी आती है और कभी रुलाई। उन्होंने मेरे उपन्यासके नामको सिर्फ बदल दिया है। "As you like it" को काटकर "Romeo juliet" (रोमियो जूलियट) कर दिया है। बस और कुछ भी नहीं। मगर इन दो शब्दोंमें वह जादू है कि न समझने-वाले और भी बौखला गये। मगर इन्हींमें वह अपने दिलका सारा भेद मुझे बता गए और हँसाकर फिर मुझे रुला गये।

इन बातोंसे शायद तुम मुझे पगली समझने लगी होगी। तुम कहती होगी कि उपन्यासका सिर्फ नाम बदल देनेमें उन्होंने कौन-सी ऐसी करामात भर दी कि जिससे उनके दिलका हाल भी खुल गया और परिणाम भी मालूम हो गया। लोरा, मैं सच कहती हूं उन छोटेसे दो शब्दोंमे ऐसा ही कुछ भेद है। अगर सभी इसको समझ सकती तो फिर उनकी होशियारीकी तारीफ ही क्या थी। उनकी इसी खूबीपर तो मेरा दिल उनसे छेड़छाड़ करनेके लिये मजबूर किये हुए है। हर दफे यही लालसा लगी रहती है कि देखूं अब वह किस तरह खुलते हैं।

नोरा, शायद तुमने 'रोमियो जूलियट' का नाटक नहीं पढ़ा है। यह शेक्सपियरका एक मशहूर ड्रामा है। किस्सा यों है कि रोमियो एक प्रेमी व्यक्ति था। वह पहले किसी स्त्रीको प्यार करता था। मगर उस स्त्रीने उसके प्रेमकी कुछ परवाह न की। उसके दोस्त एक दिन उसका दिल बहलानेके लिये उसे 'जूलियट' के जलसेमें ले गये। वह अधमरा तो था ही, वहां वह जूलियटके नयन-बाणसे और भी घायल हो गया। वह जल्सेके बाद छिपकर जूलियटसे मिला। तब दोनो एक दूसरेका नाम और खान्दान जानकर बहुत पछताए, क्योंकि दोनों खान्दानोंमें सख्त दुश्मनी थी। इससे इन दोनोंका आपसमें सम्बन्ध होना गैर मुमकिन था। यहांतक यह किस्सा मेरे किस्सेके मर्ममें मिलता है, क्योंकि उसमें ख़ान्दानका झगड़ा था और इसमें धर्मका, मैं मसीही मतकी और वह हिन्दू मतके। सम्बन्ध हो तो क्योंकर, यही मैं उससे जानना चाहती थी। और यह कि क्या वह भी मुझे प्यार करते हैं या कोरा मज़ाक ही कर रहे हैं। इसीलिये मैं इस अपने अधूरे किस्सेको उनसे पूरा कराना चाहती थी।

जूलियटका बाप जूलियटकी शादी दूसरेके साथ जबरदस्ती करना चाहता था। मगर जूलियटने शादीके

एक दिन पहिले ऐसी दवा खाली कि जिससे वह कुछ घड़ीके लिये मुर्दा-सी हो गई और लोगोंने उसे दफन कर दिया। और रोमियो भी उसकी मौतकी खबर पाकर जूलियटकी कब्रपर आया और वहीं जान दे दी। जब जूलियट जगी और बगलमें उसीको मरा हुआ पाया, जिसके लिये उसने यह सब किया था तो जीना बेकार समझा। उसने भी अपना काम तमाम कर डाला। यह परिणाम मुझे बुरी तरह रुला रहा है। क्या मैं भी अपनी कहानीका ऐसा ही अन्त समझ लूं कि तकदीरके आगे तदबीरका जोर नहीं चल सकता? और हम दोनोंका सम्बन्ध नहीं हो सकता। मगर यह जानकर कि रोमियो जूलियटको बहुत प्यार करता था मेरे दिलमें एक अनोखी खुशी होती है। तौभी जबतक वह साफ लफ्जोंमें अपने दिलकी गिरह नहीं खोलते तबतक मुझे चैन कहां! इसलिये इस दफे मैं वह चाल चल रही हूं कि उनको कुछ-न कुछ जवाबमें लिखना ही पड़ेगा। मैं अपनी कहानीके सिलसिलेमें एक खत 'जूलियट' की तरफसे 'रोमियो' को लिखती हूं। तुम इसे उनको अपनी कापीके भीतर रखकर दे देना और कहना कि मेरी सखीने उसी कहानीको आगे बढ़ाया है, उसमें यह खत जूलियटने रोमियोको लिखा है। अब रोमियो इसका

क्या जवाब दे वह नहीं लिख पाती, क्योंकि मर्दोंके दिलका हाल वह नहीं जानती। इसलिये उसने कहा है कि रोमियो-की तरफसे उस कहानीके लिये जवाब लिख दीजिये। अब मैं देखती हूं कि वह बिना कुछ लिखे कैसे बचते हैं।

जूलियटका पत्र रोमियोके नाम

रोमियो

क्योंजी, क्या किसीको प्यार करना जुर्म है? अगर ऐसा है तो फिर ईश्वरसे लोग क्यों लव लगाते हैं? क्यों दुनियाके सब मज़हब सबसे प्रेम करनेके लिये चिल्लाते हैं? अगर कोई सबसे थोड़ा-थोड़ा प्रेम करनेके बजाय अपना कुल प्रेम तुम्हींपर न्योछावर कर दे तो इसमें कौनसा पाप है? अच्छा जो दिल दे वह अपराधी और दोषी सही मगर यह तो बतलाओ कि जो जबरदस्ती दिल छीन ले—चुरा ले, वह क्या अपराधी नहीं है? अगर कोई तुम्हें देखनेके लिये बेचैन रहा करे, तुम्हारी एक नजरके लिये घण्टों मुंह निहारा करे तो उसके साथ तुम्हारा यह जुल्म कि आंख उठाकर देखना भी कसम है! ईश्वरके लिये यह लापरवाही छोड़ो। कुछ तो मिहरबानी करना सीखो।

जूलियट

[६]

जिस वक्त तुमने कहा था कि मेरे खतको फाड़ दिया और विना कुछ जवाव दिये हुए उसको वैसे ही लौटा दिया, मेरे सारे वदनका खून उबल उठा। मैं मारे गुस्सेके दीवानी हो रही थी। इसलिये उस वक्त मुझे उस खतमें कोई नई वात दिखाई न पड़ी। मेरे दिलमें एक आग जल रही थी। दिमागमें आन्धी चल रही थी। मेरे हवास ठिकाने न थे। इसीलिये दर्जेमें मिस ब्राउनसे लड़ बैठी और 'हिस्ट्री' की कापी नोचकर उन्हींके सामने फेंककर वोर्डिंग चली आई। और अपने कमरेमें आकर अकेलेमे जी भरके खूब रोई। आंसुओंके साथ दिलका बुखार निकल जानेसे मेरा धधकता हुआ कलेजा बहुत कुछ शांत हुआ। तब मैंने क़सम खाई कि ऐसे जानवरके साथ दिल लगाना तो दूर रहा अब उसकी तरफ़ आंख उठाकर देखूंगी भी नहीं, क्योंकि जिसके दिल ही न हो वह आदमी नहीं निरा जानवर है। उनके इस अनादरने मेरे दिलमें हद दर्जेकी नफरत पैदा कर दी।

मगर जब शांत भावसे उस फाड़े हुए खतको दुवारा निकालकर गौरसे देखा तब क्या बताऊं नोरा, बस कुछ न पूछो अपनी ही चालमें मैं खुद ही मात खा गई। अपने

जालमें खुद ही फँस गई। अपने ही हथियारोंसे खुद ही घायल हो गई। उस जालिमके ख़त फाड़नेमें भी एक बड़ी गहरी बात थी। उसने खत नहीं फाडा है बल्कि इस तरहसे उसका जवाब दे दिया है और इस सफाईके साथ कि मैं तारीफ करनेके लिये शब्द भी नहीं पाती। उसने ख़तका ऊपरी हिस्सा जिसमें खाली रोमियो लिखा था और नीचेका हिस्सा जिसमें ख़ाली जूलियट लिखा हुआ था फाड़ डाले। फिर नीचेका हिस्सा ऊपर और ऊपरका हिस्सा नीचे जोड़कर खत लौटा दिया और तुमसे कहा कि "माफ कीजियेगा आपकी सखीका ख़त लापरवाहीसे फट गया था। खैर, उसे मैंने जोड़ दिया। मैं इसका जवाब क्या लिखूं? वह खुद ही इसका जवाब अगर दिमागपर जोर देंगी तो समझ सकती हैं।"

बेशक, उनकी होशियारी अब समझी। कहां उस खतको मैंने उनको लिखा था। कहां उसी ख़तको अपनी अक्लमन्दीसे बिना एक शब्द लिखे हुए भी अपना करके मुझे भेज दिया। मेरी ही बातें छीनकर अपनी बातें कर लीं। मुझे बुरी तरह लूट लिया। अब क्या करूं? नीचेका नाम ऊपर और ऊपरका नाम नीचे हो जानेसे ख़तका लिखनेवाला रोमियो और ख़तको पानेवाली जूलियट

हो गई। और इस तरहसे जो-जो बातें मैंने उनसे पूछी थीं, उन्हींको उलटकर वह मुझसे पूछने लगे। जैसे –
'जूलियट –

क्यों जी, क्या किसीको प्यार करना जुर्म है? अगर ऐसा है तो······इत्यादि

रोमियो।"

देखो तो जाहिरा उन्होंने खत फाड़कर लौटालनेमें कैसा अनादर दिखलाया है ताकि तुम भी कुछ न समझ सको और मैं भी कुछ घड़ीके लिये धोखा खा गई। गुस्सेमें उन्हें जानवर समझने लगी और उनसे नफरत करनेकी कोशिश की। मगर भीतर ही-भीतर मेरे हृदयमें वह प्रेम-वाण चला दिया कि लाख कोशिश करनेपर भी उनसे नफरत नहीं कर सकती। जब शेक्सपियरकी जूलियट अपने रोमियोको सौ जानसे प्यार करती थी तो मेरा रोमियो शेक्सपियरके रोमियोसे किस बातमें कम है जो उसे मैं न प्यार करूं? फिर उनसे घृणा करनेके लिये मैं कहांसे पत्थरका दिल लाऊं? सच पूछो तो ऐसा प्रेमी तो मैंने उपन्यासोंमें भी नहीं देखा। तो क्या ऐसे प्रेमीको पाकर मैं सहजमें छोड़ सकती हूं भला? मगर नोरा! अब मेरी अक्ल काम नहीं करती। मैं समझती थी कि जिसको चाहूं उसे मैं अपने

फन्देमें फंसा सकती हूं। मैं नही जानती थी कि दुनिया-मे ऐसा भी मुझे कोई मिलेगा जो उल्टे मुझीको मेरे ही बिछाये हुए जालमें फांस देगा, मेरा घमण्ड चूर-चूर कर देगा और मुझे नीचा दिखा देगा।

अब तक मैंने स्त्री-लज्जाकी आड़में जहांतक मेरी बुद्धि-ने काम दिया मैंने गोलगोल बातोमें उनसे छेड़खानी की जिससे वह खुलें, अगुवानी करें और मुझे खुलनेका मौका दें, मगर उन्होंने मुझे हर तरहसे हरा दिया, हर चालमें मात दे दी। अब क्या करूं समझमें नहीं आता। मेरा रोमियो मुझीको अगुवानी करनेके लिये मजबूर कर रहा है। क्या मैं लज्जाका पर्दा हटाकर एकदम निर्लज्ज होकर साफ-साफ शब्दोंका आश्रय लूं? तुम्हीं बताओ नोरा, मैं क्या करूं? मदद करो। मैं नीच सही, पापिन सही, कुलटा सही, मगर फिर भी मेरी मदद करो। सब सलाहें तुम्हारी मैं मानूंगी। मगर मेरे रोमियोको—आजसे मैं उन्हे रोमियो ही कहूंगी—छोड़नेके लिये न कहना। अपने ही जालमें उलझी हुई।

तुम्हारी वही 'मेरी'

---

[७]

मेरे प्राणोंसे भी प्यारी नोरा !

तुम्हें सैकड़ों हजारों लाखों धन्यवाद ! आज मेरा 'बर्थ-डे' (जन्म-दिन) है, यह योंही मेरे लिये खुशीका दिन कहना चाहिये। मगर तुम्हारी भेजी हुई मुबारकबादीने मुझे इस वक्त आपेसे बाहर कर दिया है। मैं मारे खुशीके बावली हो रही हूं। मैं सच कहती हूं जिन्दगी भर मुझे आजकी-सी खुशी नसीब नहीं हुई थी। तुम तो सुबह मुझे मुबारकबादी दे चुकी थीं, फिर इस वक्त यह मुबारकबादी भेजनेकी क्या जरूरत थी ? इसे तुम्हारी मुबारकबादी समझूं या और किसीकी ? कविता तुम्हारी नहीं है, लिखावट तुम्हारी नहीं है, भाव तुम्हारे नहीं हैं। अलबत्ता, नाम तुम्हारा है। किसी औरहीने तुम्हारी आड़में मुझे मुबारकबादी दी है, क्योंकि तुम लिखतीं तो अच्छे कागज़पर रोशनाईसे बना-बनाकर लिखती। तुम्हें डर, घबराहट और जल्दीकी क्या पड़ी थी जो तुम एक छोटे-से रद्दी कागजपर पेन्सिलसे बसीट लिखती। उसके लिखनेवाले कोई दूसरे ही हैं। मालूम होता है, बच्चा बजनेके करीब तुमने उन्हें मेरा जन्म-दिन बताया है और अपनी तरफसे यह मेरे लिये मुबारकबादी लिखवाई है। इसीलिये जल्दीमें इस रद्दी कागज़पर उन्होंने

यह कविता निगाहें बचा-बचाकर लिखी है। मगर यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि घबराहटमें वह अपने भाव उस कवितामें कुछ उगल बैठे हैं। अक्लमन्दी और होशियारीकी आड़में उसे उन्हें छिपानेका मौका न मिला और मैं समझती हूं कि तुमसे यह ठीक तरहसे पढ़ा भी न गया। साइन्स पढ़नेवाली उर्दूकी घसीट लिखावट पढ़ना क्या जाने ? इसीलिये तुमने इस कागजको ज्यों-का-त्यो मेरे पास भेज दिया। वरना जरूर तुम किसी अच्छे कागजपर खूबसूरत हर्फों में इसकी नकल भेजतीं। खैर, यह भी मेरी खुशकिस्मती थी कि उनके हाथकी एक निशानी हाथ आ गई। यह रद्दी कागज मेरे लिये सोनेके पत्रसे भी कीमती है और यह घसीट हरफ मोतियोंकी लड़ी है। इसको मैं बड़े यत्नसे फोटो-फ्रेममें लगाकर रखूंगी। मैं इसे बार-बार पढ़ रही हूं। हर दफे मुझे इसमें एक अनोखा मजा मिल रहा है। तुम्हारे पढ़नेके लिये साफ हर्फों में इसकी नकल किये देती हूं ताकि तुम भी इसका मजा लूट सको।

"मेरीके जन्म-दिनपर नोराकी मुबारकबादी"

---

[१]

खुशी तुमको मुबारक 'बर्थ-डे' की,

जाने मन मेरा ।

इसी दिनको हुआ करते हुए हैं साल

भर हमको ॥

मयस्सर हों तुम्हें इस तरह सौ

दिन देखने प्यारी ।

मुबारक बाद देना हो मुबारक उम्र भर हमको ॥

अगरचे छुट जायें वो जुदा हो जायें गो हम तुम ।

खुदाके वास्ते तुम भूल मत जाना मगर हमको ॥

[२]

"बर्थ-डे तुमको मुबारक हो मेरा प्यारी 'मेरी' ।

और योंही जश्न सालाना रहे सदहा बरस ॥

तुमको देखूं फूलते फलते योंही हर माह व साल ।

है यही मेरी तमन्ना है यही मेरी हवस ॥

मुझ पे ऐसी हो निगाहें लुत्फ रखना मेरी जां ।

इस दिले हम दर्दके तसकीनको काफी हैं बस ॥

मेरी उलफत और मुहब्बतका ज़रा रखना ख्याल।

दिलसे करती है दुआ 'नोरा' तुम्हारी हमनफ़स॥

कहो नोरा! कुछ मजा आया? तुम्हें चाहे न आये मगर मेरे दिलमें तो इसका एक-एक लफ्ज बेतरह गुदगुदी पैदा कर रहा है। कल जब सब लड़कियां स्कूल चली जायेंगी तो दोपहरको इसको मैं पियानोपर गाऊंगी। एक बातके लिये मैं तुमसे माफी चाहती हूं। वह यह है कि मैंने इसका आखिरी शेर जिसमें तुम्हारा नाम था फाड़कर फेंक दिया, क्योंकि यह झूठमूठकी आड़ अन्तमे सारे मजेको किरकिरा कर देती है। अगर इसमें कहीं तुम्हारा नाम न होता तो शायद आज मैं मारे खुशीके एकदम पगली ह जाती। तौभी मेरी क्या हालत है, जरा आकर देख जाओ। जल्दी दौड़ती हुई आओ और आकर मुझे अपनी गोदमें उठा लो, अपने कलेजेसे लगा लो, मेरे गालोंको चूम लो वरना मुझे आज रातभर नींद न पड़ेगी।

हां, एक बात और है। मैं इसके साथ तुम्हारे नामका एक दूसरा खत भेजती हूं। यह उनको दिखानेके लिये है जिन्होने तुम्हारी तरफसे यह कविता लिखी है, क्योंकि इस मुबारकबादीने मुझे अगुवानी करनेका मौका दे रखा

है। अब मैं इसको क्यों छोड़ूं? मगर घबड़ाओ नहीं, अभी इतनी निर्लज्ज नहीं हुई हूं कि स्त्री-मान और लज्जाको एक-दम हाथसे जाने दूं। तुम इस खतको अपनी साइन्स कापीके ऊपर चढ़ाये हुए कागजके भीतर रखकर उन्हें कापी सही करनेके बहाने दे देना और कहना कि जिसको मैंने मुबारकबादी दी है उसने मुझे जवाब दिया है, वह इसी कापीमें है। अब आप मेरी तरफसे इसका जवाब लिख दीजिये।

तुम्हारी वही 'मेरी'

उनको दिखानेके लिये

"क्यों री सखी! तुझे धन्यवाद दूं या गालियां? अगर यह मुबारकबादी तूने लिखी होती तो बेशक मैं तुझे धन्य-वाद देती। मगर अनजानेको मैं धन्यवाद क्यों देने लगी? और दूं भी तो क्योंकर? दूसरे, जिससे मुझसे न जान-पहचान है, न साहब-सलामत है, न बोलचाल है, उसे मुझे मुबारकबादी देनेका अधिकार ही क्या है? खैर, अब तो लिखनेवालेने लिख ही भेजा। अधिकार था या नहीं उस-की बहस भी अब बेकार है! अच्छा, उसे लिखना ही था तो साफ-साफ खुलकर लिखता ताकि मुझे भी खुलकर धन्यवाद देनेका मौका मिलता। मगर उसने तो आड़में

छिपकर वार किया है, इसलिये मैं अगर धन्यवाद भी देना चाहूं तो किसे दूं ? तालाबमें सैकड़ों कमल खिले हुए हैं मगर भौंरा एकहीपर क्यों गूंज रहा है. मैं कुछ समझ नहीं पाती। आंखें देखनेके लिये हैं जरूर, मगर बार-बार एक ही चीजको देखनेसे फायदा ? अगर इससे किसीको नजर लग जाय, कोई बीमार पड़ जाय तो क्या हो ? अगर आंख लड़ते ही किसीका दिल धड़क उठता हो, बदन थर्रा जाता हो, तो देखनेवालेको इसमें क्या मजा मिलता है ? फूलपर नजर डाले वही जो उसे तोड़कर अपनी छातीपर लगानेका शौक और हिम्मत भी रखता हो वरना सब बेकार है, क्योंकि फूल अपने आप टहनी परसे टूटकर किसीके गलेका हार क्योंकर हो सकता है ? वही

जिसको तुमने मुबारकबादी दी है।

---

[८]

मुझे चिढ़ानेवाली नोरा !

बेशक, जवाबमें सादा कागज पाकर और उसीके साथ तुम्हारी तानाभरी बातोंसे किसका दिल न दुखता ? फिर मैं गुस्सेमें तुम्हें स्कूलमें सख्त सुस्त कह बैठी तो कौन-सी ताज्जुबकी बात थी ? जख्मोंहीपर निमकका असर होता

है। वैसे ही मेरा भी दिल दुखा हुआ न होता तो तुम्हारे तानोंपर मैं जल न उठती, बल्कि हँसती। तुमने यह कहकर मुझे यह सादा कागज दिया था कि 'तुम तो ऐसी प्रेममें अन्धी हो रही हो कि अबतक तुमने असली बातको देखकर भी न देखनेकी कोशिश की, बल्कि उल्टे हर जरा-जरा-सी बातमें झूट-मूठ अपने ही ख्यालसे प्रेमका संसार देख रही हो।' यह सब तुम्हारा स्वप्न है। असलियत कुछ भी नहीं। तुम्हारा 'रोमियो' तुम्हें कैसा प्यार करता है वह इसीसे जाहिर हो जायगा कि तुम्हारे खतके जवाबमें वह सादा कागज देता है। उसने खत तो कापीमेंसे निकाल लिया और उसकी जगहपर इसे रख दिया था। यों चाहे जो तुम इसका मतलब निकालो, मगर वह सब तुम्हारे ही ख्यालात होंगे। इसीलिये कहती हूं कि आंखें खोलो। एकदम अन्धी न बनो। इसके जवाबमें मैं यही कहती हूं कि—

"अल्लाह करे इश्कका बीमार तुझे भी।
हो जोए जो है मुझको वह आजार तुझे भी

तभी तुम मेरी हालत समझ सकती हो, प्रेमकी मोहनी दुनियाको देख सकती हो। जरा-जरा-सी बातोंमें, एक-एक नजरमें सैकड़ों मानी और हजारों मतलब समझ सकती

हो। वरना मैं अन्धी तो हुई हूं। मगर सच पूछो तो असली अन्धी तुम हो, क्योंकि तुम नहीं देख सकी कि वह सादा कागज़ था या प्रेम-पत्र। तुम्हें सादा इसलिये दिखाई पड़ा कि मेरा 'रोमियो' अपनी कमज़ोरी तुमसे भी छिपाना चाहता है। वह शायद नहीं जानता कि मेरा सारा भेद तुम जानती हो। मैं उस कागज़को बड़ी हिफाज़तसे अपने कमरेमें ले आई और उसे ग़ौरसे देखने लगी। उसके एक कोनेमें पेनसिलसे लिखा हुआ था 'प्यासा हैं'। उस वक्त मैं भी प्यासी थी। मैंने सुराहीसे अपने पीनेके लिये एक गिलास पानी लिया। जैसे ही उसे पीने चली वैसे ही उस काग़ज़पर फिर नज़र पड़ी और वही शब्द 'प्यासा हैं' मुझे तरसती हुई निगाहोंसे देखने लगा। मेरे दिलमें उस वक्त ख्याल आया कि हो-न-हो इसमें कुछ भेद है। यह सोचते ही मैंने कहा कि अगर तू प्यासा है तो पहिले तुझे पानी पिलाऊंगी तब मैं पीऊंगी। और वैसे ही उस काग़ज़को भरे हुए गिलासमें डाल दिया।

काग़ज़ पानीमें पड़ते ही एक जादू-सा तमाशा नजर आया। वह सादा काग़ज़ अच्छा ख़ासा लिखा हुआ ख़त हो गया। मगर ज्यों-ज्यों वह सूखने लगा त्यों-त्यों उस-परसे हर्फ़ भी गायब होने लगे। इसीलिये जो कुछ उसपर

लिखा हुआ था मैं ने झट उसे नकल कर लिया। लो उसे तुम भी पढ़ लो।

सादे कागजपरकी गुप्त चिट्ठी

"तुम नाज करो शौकसे हम कुछ नहीं कहते।
इस नाज़ पे लेकिन कोई मर जाये तो क्या हो?"

"उस कमलपर भौंरा क्यों गूञ्ज रहा है। उसका कारण वह खुद अपने मोहनी रूप और गुणसे पूछे, क्योंकि भौंरा ख़ाली गूञ्जना ही जानता है, बोलना नहीं। फूलको हृदय-पर लगानेका शौक़ किसे नहीं होता, मगर कांटोंसे बेतरह घिरा हुआ है और उसपर मालियोंका सख्त पहरा। इस-लिये कोई लाचार होकर उसे देख ही कर अपना कुछ अरमान पूरा करे तो किसीका क्या बिगड़ता है? अगर दिल धड़क उठता है तो किसीने किसीको लूटा क्यों? जिसका माल चोरी गया है वह तो अपने बेरहम और ज़बर-दस्त डाकूका मुंह निहारे होगा।"

मैं तुम्हें असली खत भेजती, मगर वह सूखकर फिर सादा हो गया और अब दुबारा पानीमें डालनेसे उसपर हर्फ नहीं उभरते। मैंने उस काग़ज़को न जाने क्यों कई बार चूमा। उस वक्त मुझे उसमें साबुनकी खुशबू मालूम

हुई। तब जाना यह ख़त साबुनके सख्त और नुकीले टुकड़ेसे लिखा गया है। इसलिये इसको जांचनेके लिये मैंने अपने साबुनसे एक टुकड़ा काटकर चाकूसे नुकीला किया और देखा कि मेरी बात ठीक निकली। तब मैंने उसी तरहका एक दूसरा सादा कागज निकाला और उस-पर उसी साबुनसे कुछ लिख दिया है। तुम यह कहकर उन्हें दे देना कि लीजिये अपना सादा काग़ज़, मैं इसको लेकर क्या करूंगी।

मैंने इसमें क्या लिखा है तुमसे क्यों छिपाऊं ? छिपाने-से शायद तुम खुद ही इसे पढ़नेकी कोशिश करोगी और वहांतक पहुंचनेके पहिले इसपरके छिपे हुए हर्फ हमेशाके लिये गायब हो जायेंगे। इसलिये वही बात तुम्हारे लिये दूसरे काग़ज़पर लिखे देती हूं।

तुम्हारी वही

'मेरी'

मेरी गुप्त चिट्ठी

"वाह जनाब, आप आदमी हैं या भानमतीका तमाशा। गिरह खोलनेके बजाय आप गिरहपर गिरह डालते जाते हैं। बातें करते हैं या पहेलियां बुझाते हैं। मैं कोई अन्तर्यामी तो हूं नहीं जो पराये दिलका हाल बिना बताये

जान जाऊं। अगर आप अपने भेदको कहना चाहते हैं तो साफ़-साफ शब्दोंमें क्यों नहीं कहते ? वरना —

"मतलबी हो ग़रज आशना हो ।
जाओ जाओ बड़े बेवफा हो ॥"

— — —

[९]

देखो नोरा ! आख़िर वह खुले और साफ़-साफ़ शब्दोंमें उनको कहना ही पड़ा कि "मुझे भी तुमसे मुहब्बत है।" मगर तौभी इतनी सफाईसे कहा है कि मैं दङ्ग रह गई और उनकी इस सफ़ाईकी क़द्र मुझे आज मालूम हुई, क्योंकि उनके ख़तको पढ़नेमें इतनी महो थी कि मुझे मालूम न हुआ कि 'जेसी' मेरी कुरसीके पीछे खड़ी हुई ख़त पढ़ रही है। मगर वह ख़ाक दला कुछ न समझी। अगर इतनी होशियारीसे उन्होंने यह ख़त न लिखा होता तब तो आज भण्डा फूट ही गया था। फ़िर न जाने क्या होता ! शाबाश ! रोनियो शाबाश ! तूने अपनी और मेरी दोनोंकी आबरू बचाई। मैं नहीं जानती थी कि तू इतनी बड़ी काबिलियत रखता है। अब तुझे मैं किसी तरहसे छोड़ नहीं सकती, चाहे इसके लिये मुझे दीन

दुनिया दोनों छोड़ना पड़े। नोरा! तुम मुझे क्यों घूरती हो? ऐसा प्रेमी तुमने ख्याली दुनिया यानी उपन्यास और नाटकोंमें भी नहीं पाया होगा। इसका सबूत उनकी अब तककी बातोंसे काफी मिल चुका है और सबसे बढ़कर सबूत यह आजका खत है, जिसे तुमने कहा था कि मालूम होता है कि इसको किसीने अपनी रिश्तेदार मामी, फूफी मौसी या बहनको लिखा है। प्रेमिकाको कदापि नहीं: क्योंकि खत इतना सादा और नीरस है कि कहींसे भी प्रेमकी बू नहीं मालूम होती। मगर उसी ख़तकी एक-एक लाइन छोड़-छोड़ यानी पहली तीसरी पांचवीं लाइन इसी तरहसे पढ़ती जाओ तब उसे छिपा हुआ प्रेमपत्र देखोगी। पहिले मैं भी इसको पढ़कर तुम्हारी तरह चकराई थी। मगर खतके ऊपर (१, ३ इसी तरह) लिखा हुआ था जिससे इसके पढ़नेकी तरकीब मालूम हुई। मैं उस खतमें उन लाइनोंमें नम्बर १, ३, ५ इत्यादि डालकर तुम्हारे पास भेजती हूं जिनसे प्रेमपत्र निकलता है। जिन लाइनोंपर नम्बर दिये हुए हैं खाली उन्हींको पढ़ो, फिर देखो कि उन्होंने मुझे क्या लिखा है। तुम भी उनकी होशियारी मान जाओगी और इस प्रेमपत्रपर फड़क उठोगी।

"उनका ख़त"

(१, ३ इसी तरह)

२—"इससे और साफ़ क्योंकर कहूं कि मेरी आंखों
से आंसुओंकी धारा बह चली जब सुना कि मेरे मामू

३— ने जो कहना था तुमसे कही दिया है। फिर भी अफसोस है कि
तुम सारा हाल नहीं जानतीं जो मुझपर बीत रहा है।

५— मेरी कलम साफ़-साफ़ लिखनेसे पिछड़ती है
कि मेरी चची मुझपर किस तरह जुल्म कर रही है।

७—इसलिये कि कहीं मेरा ख़त दूसरेके हाथमें पड़ जाय
और इस तरहसे मेरे चचाको ख़बर हो जाय

९—फिर नतीजा बरबादी हो। इसीलिये तुमसे मिलना चाहता हूं
और अपने भाईसे भी जो इस वक्त कलकत्तेमें हैं।

११—तुम इतना जानती ही हो कि मुझे भी मुहब्बत
न जानकी है न दुनियाकी, और एक बात यह भी कहना

१३—तुमसे है और मिहरबानी करके तुम इसको न भूलना
कि मुझे आजकल दमा हो गया है। इस बीमारीसे

१५—जो बरबाद और परेशान हो रहा है जीनेसे तङ्ग आ गया है
वही इसकी मुसीबतें जान सकता है। दूसरे पीरपराई क्या जानें

१७—सभोंके सामने बड़ी मुश्किलोंसे अपनेको सम्भाले रहता हूं ताकि
कहीं खांसी न उठे और दम न फूलने लगे, फिर यों बीमारीकी
१९ -- असलियत न खुल जाय। मगर जब-जब तुमको
और मामाको तुम्हारे पीछे चचासे अनादर किये जाते हुए
२१ – देखता हूं तब मैं बेकाबू हो जाता हूं। अपनेको संभाल नहीं पाता
फिर बुरी तरह खांसने लगता हूं। और तब सब मुझसे घृणा करते हैं।
२३—पहिले पहल मैं इसको कोरा मजाक ही समझता था
इसीलिये इस रोगकी न दवाकी और न डाक्टरको दिखाया।
२५—मगर अब तो हालत खराब होती जाती है। न जाने मेरा क्या होगा
जब लोग नफरतके साथ मेरे पाससे उठने लगते हैं तब उनसे
२७—मैं विनती करता हूं कि मेरे लिये भी दिलमें थोड़ीसी जगह रखो।
इसपर भी वह कैसा बर्ताव करते हैं तुम्हीं आकर देख जाओ।
२९ – मैं भी आदमी हूं और मुझमें भी इनसानी कमजोरियां हुआ चाहें
अगर मैं बीमार पड़ गया तो क्या हुआ। आदमी है ही हूं।
३१—क्या करूं किस्मतसे मजबूर हूं। इसीलिये चुपचाप सहता हूं
चचा चचीके जुल्मोंको। और अकसर उनकी बातोंपर
१—रोता हूं यही सोचकर कि तकदीरके आगे तदबीर क्या करे।
तुम चुपचाप मेरे बाप या भाईको बुला दो या
१—किसी तरहसे तुम मुझसे मिलो तभी जबानी हाल कहूंगा
कि किस तरह मेरे चचा जायदादके लालचमें मेरी मौत चाहते हैं

कहो नोरा! अब भी कुछ शक बाकी है? अब मेरे उनके बीचमें कौनसा पर्दा रह गया? फिर क्यों न उनको मैं साफ-साफ लिखूं। मगर क्या करूं अभी दिल धड़कता है। खैर, उनको लिखती तो हूं मगर बहुत थोड़ा।

उनके लिये खत—

"नामः बर देके यह खत उनसे जबानी कहना,
दिलका जो हाल है वह काबिले तहरीर नहीं।"

"प्यारे रोमियो! मिलूंगी तभी जब तुम हमेशाके लिये मिलो।"

"तुम मेरे हो जाओ या अपना बनाकर देख लो।
दो ही हैं शर्तें मुहब्बत आजमाके देख लो।"

---

[१०]

रोमियो! रोमियो! जालिम रोमियो! तूने यह क्या किया? मेरे दिलको पत्थरसे चूर कर दिया। मेरी जिन्दगीकी लहलहाती हुई फुलवारीको जड़से उखाड़ कर फेंक दिया। क्या तुम इसीलिये मुझसे मिलना चाहते थे? क्या करूं किस तरहसे इसको बरदास्त करूं? कहां

गई मेरी लापरवाही? कहां गये मेरे चैन ओ आराम? उफ! मैं क्या थी और क्या हो गई! तुमने मेरी यह दुर्दशा की। तुम्हींने मेरी हंसी-खुशी छीनी। तुम्हींने मेरी नींदको स्वप्न कर दिया। तुम्हींने मुझको जीतेजी बेमौत मार डाला। नहीं, तुम्हारा कसूर नहीं। यह सब मैंने खुद ही किया। हाय! मैं नहीं जानती थी कि तुम ब्याहे हुए हो। बस, यह ख्याल मुझे मारे डालता है, सब सह सकती हूं मगर यह नहीं सह सकती। और उसपर तुम्हारा यह लिखना कि "प्रेमके बदलेमें मेरा धर्म क्यों लेना चाहती हो? मुझे शौकसे कुर्बान कर सकती हो मगर मेरे ईमानको नहीं।" मेरे दिल-मे सैकड़ों बिच्छुओंके डङ्ककी तरह चुभ रहा है। बहुतोंने मेरी खुशामद की, नाक रगड़ी, मगर किसीकी तरफ मेरा ध्यान नहीं गया। और जिसका दामन मैंने पकड़ना चाहा वह मेरा हाथ झटककर भाग रहा है। क्या यही मेरी किस्मतमे लिखा हुआ था? यही मेरे घमण्ड और शेखीकी सजा थी? उफ! अपनी नादानीपर अब पछताते भी नहीं बनता। तुम्हें दिलमें रखकर तुम्हें वहांसे क्योंकर निकालूं? तुम तो सदा वहीं राज्य करोगे। हमारे तुम्हारे बीचमे मज-हबकी दीवाल है और वह भी इस कदर पक्की कि टूट नहीं सकती। जब तुममे इसको तोड़नेकी हिम्मत न थी, ताकत

न थी, फिर तुमने मुझसे मुहब्बत क्यों की ? उस चिड़िया-का शिकार करनेसे फायदा क्या जिसको वह शिकारी खा नही सकता ! खैर, जो हुआ सो हुआ। अब भी मुझे सम्ह-लने दो। मुझपर दया करो। बस, तुम यहांसे चले जाओ या मुझे जाने दो। ताकि मैं तुम्हें भूल सकूं। अगर तुम यहां रहोगे तो मैं इस स्कूलमे नहीं पढ़ सकती। और जब-तक तुम यहां हो तबतक मिहरबानी करके मेरी तरफ न देखना। बस, यही मेरी तुमसे प्रार्थना है। आशा है तुम मेरी विनतीपर ध्यान दोगे। तुम हमेशा खुश रहो। मैं बर-बाद हुई तो क्या, मगर तुम आबाद रहो। बस, एक चुम्बन और, वह भी आखिरी।

तुम्हारी बरबादकी हुई
वही जूलियट

---

[११]

मेरे अनोखे रोमियो,

बस, माफ करो। आज्ञा पालन हो चुका। मुझे कुढ़-कुढ़कर मरने मत दो। इन पन्द्रह दिनोंमे मेरी सब दुर्दशा हो गई। तुमने 'नोरा' से मेरे खतके जवाबमे जबानी कहला भेजा कि 'बहुत अच्छा'। अगर इसीको लिख भेजते तो क्या

हाथकी मेंहदी छूट जाती? उसके बाद सुना कि तुमने उसी दिन एम० ए० के दर्जेसे अपना नाम कटवा लिया। क्योंकि तुमने अपनी नौकरी एक कारखानेमें ठहराई। और इसलिये तुम्हें अब इतना वक्त नहीं मिल सकता कि तुम दोनों दर्जों-में अपनी हाजिरी दे सको। फिर तुमने यहांसे जानेका यह बहाना निकाला कि तुमने एकदम दो महीनेकी छुट्टी मांगी. जो न मिल सकती थी और न मिली। इसलिये 'मिस फ्राउनिंग' से लड़ बैठे और इस्तीफा दे ही दिया। अफ-सोस! इसकी खबर मुझे आज मालूम हुई। मैं नहीं जानती थी कि तुम मेरे हुक्मोंको इस तरह हर्फ-ब-हर्फ तामील करोगे। वरना मैं हर्गिज हर्गिज ऐसा न लिखती। अगर लिखा भी था तो उस वक्त मैं अपने हवासमें न थी। मैं समझती थी, तुम्हारे चले जानेसे मैं अपने दिलपर काबू कर लूंगी. मगर सब तदबीरें बेकार हुईं। जब दिल अपना न रहा तो उसपर क्या वश। हर तरहसे मैं अपने ख्याल-को हटानेकी कोशिश करती हूं। पढ़नेमें दिल लगाना चाहती हूं मगर तुम पढ़ने नहीं देते। सोने जाती हूं तो सोने नहीं देते। दो घड़ीके लिये कभी आंख भी लगती है तो स्वप्नमें आकर परेशान करते हो। क्या करूं? तुम-से भागकर कहां जाऊं। तुमने इस्तीफा क्यों दिया?

अभी मंजूर नहीं हुआ है। एक महीनेतक तुमको कायदेके मुताबिक जबरदस्ती काम करना पड़ेगा। उसके पन्द्रह दिन तो बीत गये, सिर्फ पन्द्रह दिन और बाकी हैं। उसके बाद तुम चले जाओगे। उफ़! तब मेरा क्या हाल होगा। नहीं नहीं, तुम्हें कसम है, तुम मत जाओ। तुम्हें हाथ जोड़ती हूं, तुम इस्तीफा वापस ले लो। मैं पगली थी, दीवानी थी जो तुम्हें जानेके लिये कहा था। हाय! तबसे तुमने एक नजर भी मुझपर न डाली। अगर आंख उठाकर देखते तो मुझे कुछ कहनेकी जरूरत न थी। मेरी सूरत ही तुमको बता देती कि मुझपर आजकल क्या बीत रहा है। जो चाहो सजा दो मगर यह सज़ा नहीं। उफ़! इसको अब सह नहीं सकती।

"लिल्लाह! नजर उठाके देख लो नीची नज़रने क्या किया।" बस इतनेहीमें तुम्हें सब मालूम हो जायगा। मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती। बस, वही तुम्हारी मीठी निगाह, वही मिहरबानीकी नज़र जिसको मैं अपनी ही बेवकूफीसे खो बैठी हूं। मेरी खोई हुई चीज मुझे दे दो। फिर मुझे देख कर मुस्करा दो। मेरे रोनियो! मुझे यह नाम बड़ा प्यारा मालूम होता है। कहो तुम्हें भी यह नाम पसन्द है या नहीं। हां, एक बातके लिये तुमसे मैं सख्त नाराज हूं।

वह यह कि तुमने एम० ए० का पढ़ना छोड़कर मुझे ज़िन्दगीभरके लिये रुलाया। यह ख्याल कि मेरी ही बात माननेके लिये तुमको ऐसा करना पड़ा, मुझे और भी मारे डालता है। अफसोस! तुम प्रेम करना जानते हो, मगर प्रेमिकाके नखरे उठाना नहीं जानते। तुम नहीं समझते कौनसी बात माननी चाहिये और कौनसी नहीं। तुम निरे अन्धे प्रेमी हो। प्रेममें पड़कर तुम अपनी भलाई-बुराई कुछ नहीं ख्याल करते। अच्छा तो मैं भी ऐसे अन्धे प्रेमीकी अन्धी प्रेमिका बनूंगी। मैं दीन-दुनिया घर-बार सबको इस प्रेमपर वार कर भाड़में झोंके देती हूं। प्रेमके बदले प्रेम लूंगी। दिलको दिलसे बदलूंगी। मजहबसे नहीं। ईमानसे नहीं। दौलतसे नहीं।

हम इश्कके हैं बन्दे, मजहबसे नहीं वाकिफ़।

गर काबा हुआ तो क्या, बुतखाना हुआ तो क्या

इसलिये अगर मैं तुम्हें अपना नहीं सकती तो तुम ही जिस तरह चाहो मुझे अपनी बना लो। मैं हर तरह तैयार हूं। इतना साफ-साफ लिखनेके लिये मुझे माफ करना। मगर मैं क्या करूं। मजबूरन ऐसा लिख रही हूं। मुझे न जाने आज क्या हो गया है। मेरा दिल बुरी तरह

धड़क रहा है। ऐसा मालूम होता है कि तुम मुझसे हमेशाके लिये छूट रहे हो। और यह मेरा आखिरी खत जान पड़ता है। फिर तुम समझ सकते हो मैं लज्जाकी आड़में अपने दिलके भेदको कहांतक और क्योंकर छिपा सकती हूं। बलासे तुम ब्याहे हुए हो। गो यह ख्याल नाउमीदी और डाहकी आगमें मुझे जला रहा है। जब प्रकृतिकी तरफ देखती हूं तो कुछ ढाढ़स मिलता है। देखो, जहां एक घड़ियाल होता है वहां उसके साथ उसके साथ सैकड़ों नाकें होती हैं। दस-बीस हरिणियोंके बीचमें एक ही मृग होता है। दुनियाकी सभ्य जातियों-में लड़कियोंकी संख्यासे ही कम लड़केकी संख्या होती है और दिन-ब-दिन कम होती जाती है। फिर यह कहांका इन्साफ है कि मर्दके गलेमें एक ही स्त्री बांधी जाय। और तुम्हारे धर्ममें तो इसकी कोई मनाही भी नहीं है जितने पूर्वीय धर्म हैं इस बातको मालूम होता है खूब विचार लिया है। तभी मर्दोंको एकसे ज्यादा शादियां करनेकी आज्ञा दे रखा है। देखो, अपने यहांके राजा-महाराजाओंको, नवाब-बादशाहोंको, एक-एक महलमें कितनी रानियां और कितनी बेगमे हैं। तो फिर मैं क्या अपने राजाकी दूसरी रानी नहीं हो सकती हूं? औरतों और

मर्दोंकी जवानीको मियादोंसे भी यह बात साबित होती है। वरना दोनोंमें इतना भेद न होता। कहांतक कोई इस विषयपर तर्क करेगा ? मैं हर तरहसे अपने विचारको सही साबित कर सकती हूं ! प्रेमने या तो मुझे पगली बना दिया है या तत्वज्ञानी। तभी मैं ऐसा बक रही हूं। मैं अपने जीसे ऐसा नहीं कह रही हूं, बल्कि ऐसा मालूम होता है कि कोई मेरे भीतर बैठा हुआ मुझसे यह बातें कहला रहा है। मैं कह नहीं सकती, इसको निरा पागल प्रलाप समझूं या खरा प्राकृतिक तत्व। मैं तुम्हें आज जी खोलके लिख रही हूं, क्योंकि अब मैं जल्दी खत न लिखूंगी। तुम इससे यह न समझना कि मैं तुमसे बेरुखी कर रही हूं। मेरी सूरतसे, निगाहोंसे लापरवाही जाहिर होती हो, मगर खातिर जमा रखो—दिलमें वह ख्याल जो अबतक रहा है उसी तेजीके साथ बराबर रहेगा। क्या करूं, बात ही ऐसी पड़ गई है। न जाने कैसे आजकल 'बोर्डिंग-हाउस' में बदनामीकी आग भड़की हुई है। उसमें हम तुम दोनों जलाये जा रहे हैं। क़िस्मतकी बलिहारी ! देखो कि आजतक हमसे तुमसे मुलाकातकी कौन कहे दो-दो बातेंतक नहीं हुईं। मगर ऐसी उल्टी आन्धी चली है कि हमारे तुम्हारे बारेमें सैकड़ों किस्से मशहूर हैं। कोई कहता है कि मैं आधी रातको

तुमसे मिलने जाया करती हूं। कोई कहती है कि जिस दिन लड़कियां बड़े गिरजेघर गई थीं, उस दिन तुम मेरे पास थे। इसलिये अब तुम बहुत होशियार रहना। किसी तरहसे ज़ाहिर न होने पावे कि हमसे तुमसे किसी तरहकी लगावट है, क्योंकि सब निगाहें हम दोनोंके रङ्ग-ढङ्ग ताड़ रही हैं। और इस वक्त तुम्हारा जाना और भी ठीक नहीं है, वरना बदनामी सच्ची हो जायगी। सब यही कहेंगी कि ऐसी बात जरूर थी तभी तो बात खुलनेपर तुम डरके भाग गये। इसीलिये मेरी खातिर न सही तो कम-से-कम अपनी बदनामीको बचानेके लिये तुम अपना इस्तीफ़ा वापस ले लो। और आजकल तमाम लड़कियां हमारी तुम्हारी दुश्मन हो रही हैं, यहांतक कि किसीने तुम्हारे जितने खत आये थे मेरे बक्ससे चुरा लिये। 'मुबारकबादी' भी फोटोफ्रेमसे गायब है। खत तो सब कूड़ेखानेमें मिल गये। मगर 'मुबारकबादी' का पता नहीं चला! मुमकिन है छोटासा कागज़ होनेकी वजहसे कहीं उड़ गया। खैरियत हो गई कि जितने तुम्हारे खत आये थे वह सब ऐसे गोल थे कि मामूली समझ एकाएक उनको समझ नहीं सकती थी। इसीलिये चुराने-वालीको नाउम्मेदी हुई और उसने उन्हें फेंक दिया। अगर मैं उन्हें जला देती तो आज रोना क्यों पड़ता। खैर, मैंने उन्हें

कल जलाया। मैं कह नहीं सकती कि उस वक्त मेरे दिलकी क्या हालत थी। कल सारी रात मुझे रोते हुए बीता। अब मुझे तसल्ली देनेके लिये मेरे पास तुम्हारी कोई चीज नहीं है। सिर्फ उन खतोंकी राख है। उसको मैंने आज अपने नीले 'फ्राक' में अपने सीनेके पास तेलके साथ गिरा दिया है। अगर आज स्कूलमें मेरे फ्राकको गौरसे देखोगे तो मेरे सीनेपर एक धब्बा पाओगे। अगर कहीं मेरे दिलके भीतर तुम देख सकते तो वहां भी एक बड़ासा दाग देखते। जिस-का धब्बा कभी मिट नही सकता। बहुत लिख चुकी। फिर भी कुछ भी नहीं लिखा। जी चाहता है लिखती ही रहूं। तुम इसका जवाब मेरी तरह जी खोलकर दो। गोल-गोल बातों-में मुझे सन्तोष नहीं होता। मैं उसको हजार पर्देमें छिपाकर रखूंगी, उसीको बार-बार पढ़ा करूंगी और यों अपने धधकते हुए दिलको ठंढक पहुंचाऊंगी। अब और क्या लिखूं। बस ये चार लाइने और हैं

"सुनो दिलजानी मेरे प्रेमकी कहानी तुम दस्त
ही बिकानी बदनामी भी सहूंगी मैं।
देवपूजा ठानी मैं निवाजहू भुलानी तजे कलमा
कुरान सारे गुनन गहूंगी मैं।

स्यामला सलोना सिरताज सिरे कुल्ले दिये तेरे
नेह दाग में निदाग तो दहूंगी मैं।
नन्दके कुमार तांकी सूरत पै तांड़ नाल प्यारे
हिन्दुवानी ह्वै रहूंगी मैं।

तुम्हारी वही रोती हुई
'जूलियट'

---

[१२]

(डाक द्वारा, रेलपरसे)

अरे, रोमियो!

हाय! अब मैं क्या करूं ? किस तरह जीको सम्हालूं ? सच है तकदीरके आगे तदबीरकी नहीं चलती। लाख कोशिश करो, मगर वही होता है जो नसीबमें बदा होता है। सैकड़ों प्रेमके किस्से पढ़ डाले और पढ़-पढ़कर मैं उनपर बराबर हँसती थी। एक दूसरेको देखनेके लिये इतनी व्याकुलता, एक दूसरेसे बिछुड़नेपर इतना रञ्ज होना, सब बनावट और ढकोसला समझती थी। मगर मैं खुद इस रोगमें पड़कर अब रो रही हूं। जब दोनों एक दूसरेको चाहते हैं तो मिलन न हो क्या मानी ? मगर अब अपने बारेमें क्या

रूं। जो बातें मुझे पहिले हंसाती थीं वही अब खूनके आंसू रुला रही हैं। अब जाना कि प्रेमका रास्ता कितना ही सीधा हो फिर भी टेढ़ोंमें टेढ़ा है। कांटोंसे भरा हुआ है। मैं समझती थी कि हमारे तुम्हारे मिलनमें अब कौन बाधा-है। हमसे तुमको छुड़ानेवाला दुनियामें कौन जन्मा है मगर अब मालूम हुआ कि तकदीर भी कोई चीज है।

आखिर तुम हमसे छूट ही गये। मुझको अकेली छोड़-कर चले गये। नहीं, तुम खुद नहीं गये। बल्कि तुमको जबरदस्ती जाना पड़ा, और उसी दिन जिस दिन तुमको इसके पहिलेवाला खत भेजा था। तुमको उसको पढ़नेतककी नौबत नहीं आई होगी कि उसके पहिले ही मिस 'फ्राउनिङ्ग' ने तुमको बुलाकर कहा कि तुम्हारा इस्तीफा मञ्जूर कर लिया गया और तुम जाओ। तुम चकराये होगे कि अभी मियादको १५ दिन बाकी हैं अभी कैसे छुट्टी मिल गई। मगर अफसोस! तुम्हें नहीं खबर कि तुम जान-बूझकर हटा दिये गये। और वह भी मेरे ही लिये; क्योंकि सारा भण्डा फूट गया था। हमारी तुम्हारी खत-किताबतका हाल खाली स्कूलभरहीमें नहीं, बल्कि मेरे पापा-मामातक जान गये।

मैं भी यह स्कूल हमेशाके लिये छोड़कर अपने पापाके

पास जा रही हूं। देखो, यह खत मैं रेलपर लिख रही हूं। मेरे भाई मुझे लिये जा रहे हैं। इस वक्त सो गये हैं। जी चाहता है कि चलती गाड़ीपरसे कूद पड़ूं और अपनी दिली तकलीफसे छुट्टी पा जाऊं। मगर फिर ख्याल आता है कि इस थोड़े मौकेको क्यों खराब करूं। तुम्हें कुल बातोंसे आगाह कर दूं। यही सोचकर जल्दी-जल्दी पेन्सिलसे चार लाइनें घसीट रही हूं। अपने दिली सदमोंको पूरी तरहसे लिखनेका मौका नहीं है। तुम्हारे छूटनेका कारण वही मुबारकबादी है जिसको मैं समझती थी कि खो गई है। मगर असलमें उसको 'जेसी' ने मेरे फोटोफ्रेमसे चुराकर मेरे पापाके पास बहुतसी झूठी बातें लिखकर एक गुम-नाम खतके साथ भेज दिया था। मेरे पापाने उसको और उस खतको मिस फ्राउनिङ्गके पास लौटाल दिया और बहुत गुस्सेमे उनको लिखा कि मैं ऐसी जगह लड़कीको किसी तरह नहीं पढ़ा सकता। उसे फौरन भेज दो। इसी-पर मिस साहबाने चुपके-चुपके तहकीकात की। 'जेसी' ने पहिलेसे ही मेरी बदनामी की, बोर्डिंग-हाउसमें आग लगा रखी थी। फिर क्या था, सब हमारी-तुम्हारी दुश्मन तो थीं ही। सबने मेरे खिलाफ गवाही दी। दूसरे तुम्हारा इस्तीफा पहिलेसे ही था। इसलिये मिस फ्राउनिङ्गको तुम्हें हटानेमें

और भी आसानी पड़ी। उसके बाद उन्होंने मेरे पापाको तार दिया कि अब कोई अन्देशा नहीं है। 'मेरी' को यहीं पढ़ने दो। मगर वह किसी तरह राजी न हुए। आज मेरे भाई आये और वह जबरदस्ती मुझे लिये जा रहे हैं। देखूं, अब नसीबमें क्या बदा है। 'जेसी' स्टेशनपर मुझे पहुंचाने आई थी और वहांपर उसने मुझसे कुल हाल कहा, वरना मैं इन बातोंसे बिलकुल बेखबर थी और मैं तुम्हींपर नाराज हो रही थी कि तुमने मेरी बातोंका कुछ भी ख्याल न किया और मियादके १५ दिनतक रुकना भी तुमको नागवार हुआ। उफ! 'जेसी' ने बड़ा सख्त बदला लिया। उसकी आखिरी बात मेरे कलेजेमें जलती हुई सलाखकी तरह घुस गई कि 'मेरी, तुमने मेरा दिल तोड़ा है तो क्या तुम समझती थी कि तुम्हारा दिल मैं चूर-चूर न कर दूंगी? जिस तरह तुमने मुझे रुलाया है अब उसी तरह इतमीनानसे जिन्दगीभरतक तुम रोना।' बेशक उस हत्यारिनीने सच कहा। मेरी जिन्दगी अब बरबाद गई, तुम मर्द हो, तुम कभी-न-कभी अपने दिलको काबूमें कर लोगे। मगर मैं अबला हूं। मेरा टूटा हुआ दिल अब कभी जुड़ नहीं सकता। जीते जी अब मैं मुर्दा हो गई। मेरे रोमियो! अगर तुम मुझे भूल सकते हो तो भूल जाओ। समझ लो कि मर गई।

मगर मैं तुम्हें क्योंकर भूलूं, वह तरकीब मुझे बता दो। खैर, मेरे भाग्यमें यही बदा था। तुम खुश रहो। चैन करो। हमेशा तुम्हारे आनन्दके लिये दोआएं करूंगी। और मैं अपने जीको यही कहकर सन्तोष दे रही हूं।

"It is better fo have loved and lost
Than neverto have loved at all"

अगर मैंने मुबारकबादोका आखिरी शेर न फाड़ा होता तो आज ऐसी मुसीबत उठानी न पड़ती। तुम्हारा कोई कसूर नहीं। यह मेरी लापरवाहीका नतीजा है। मैं नहीं जानती थी कि ऐसा करनेसे यह मुबारकबादी एक दिन 'मरसिया' हो जायगी। प्यारे रोमियो! मेरे सोचमें अपना वक्त न खराब करना। देखो, तुम्हारा बी० एल०का इम्तहान अब करीब है। कुछ थोड़ासा पढ़नेमें जो लगा दो, क्योंकि मैं गजटमें तुम्हारे नामको चूमना चाहती हूं। यही मेरी आखिरी विनती है। अगर तुम्हें मेरा कुछ भी ख्याल है तो मुझे नाउम्मीद न करना। तुम इस खतके नीचे मेरे नामको चूम लेना। इसको मैं भी चूमकर भेजूंगी। यही हमारा तुम्हारा प्रथम और अन्तिम चुम्बन है। अब मेरी क्या दशा होगी, कह नहीं सकती। पापा मेरे साथ कैसा बरताव करेंगे, कुछ समझमें नहीं आता। मेरे भाईने इस तरफ

करवट ले ली। बस प्यारे, आखिरी सलाम कबूल करो। आखिरी खत और आखिरी चुम्बन! मैं तो जाती हूं, मगर दिल तुम्हें सौंप जाती हूं।

"किस्मतमें जो न लिखा था मिलना
तदबीरोंसे कुछ हांसिल न हुआ।
हुई नामोंकी तहरीर बहुत
यक मुद्दततक पैगाम रहे॥"

तुम्हारी
वही अभागी "जूलियट"
'मेरी'

धोखा

[१]

"चन्द ह्वैके कितहुं दूरसे
हमको रवि ह्वै करके दरसे हो।"

सुहागिनी स्त्रियोंमें अगर कोई स्त्री मन्दभागिनी होती है तो कवि, चित्रकार, या फिर साहित्यिक लेखककी। इसलिये नहीं कि ये लोग औरतोंके अयोग्य होते हैं, बल्कि इसलिये कि इनके दिलोंमें सरस प्रेमकी सामग्री इतनी ज्यादा भरी होती है कि जिससे तौलनेपर उनको स्त्रियां पासंगसे भी हलकी नजर आती हैं। इसीलिये अकसर जीवनियोंसे पता चलता है कि ये लोग अनेक स्त्रियोंके प्रेम-जालमें फँसते रहे हैं, क्योंकि इनको एक स्त्रीसे सन्तोष नहीं होता। अव्वल तो दुनियामें ऐसी भाग्यवती स्त्री विरली ही होती है जो ऐसे लोगोंके अद्भुत

प्रेमादर्शकी बराबरी कर सके और अगर बराबरी करे भी तो अपने स्थानपर सदैव एक ही तौरपर विराजमान रह सके, क्योंकि इनको तो अपनी लेखनीके लिये नित्य ही नई अदायें, नई छटायें, नई बातें, नई घातें और नये-नये भाव चाहिये। भला यह सब एक ही स्त्रीसे कहांतक और कब-तक मिल सकते हैं? कभी-न-कभी वह दिवाला बोल ही देगी।

अगर मधुमक्खी एक ही फूलपर सन्तोष किया करे तब तो दुनिया शहद खा चुकी! अगर ये लोग भी एक ही सौन्दर्यके उपासक रहते तो साहित्यमें उत्तमा, मध्यमा, अधमा, स्वकीया, परकीया, मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता आदि भिन्न-भिन्न प्रकारकी नायिकाओंके विचित्र चरित्र, भाव, संकेत उक्ति, युक्ति, संयोग, वियोग और हावभावका बांकापन कौन वर्णन करता और उनमे भेद कौन बतलाता? इससे मेरा यह मतलब नहीं है कि ये लोग सर्वदा भ्रष्टा-चारी ही होते हैं। पर इतना जरूर है कि इनका रसिक और प्रेमी हृदय इनको नेकचलन रखते हुए भी इनके खया-लातको डगमगाये रखता हैं। दुनियाकी मानीमे ये चरित्र-भ्रष्ट न हों, पर तोभी इन्हें अपने अतृप्त हृदयकी खातिर

मानसिक चरित्रभ्रष्ट होना ही पड़ता है। बेशक, यह उनमें बड़ा भारी ऐब है। मगर इसी ऐबसे उनके और-और अच्छे गुण पनपते हैं। खाद भी तो बड़ी गन्दी चीज़ है। मगर उसीकी बदौलत मीठे अन्न और खुशबूदार फूल पैदा होते हैं। अंग्रेजी भाषाका नामी कवि Byron कितना जबरदस्त प्रेमी था? वह अपने दिलकी कमजोरियोंके लिये इतना बदनाम था कि उसे अपना देश छोड़कर दूसरे मुल्कमें भागना और मुँह छिपाना पड़ा। मगर वही Byron जो दुनियाकी हर औरतको प्यार कर सकता था, अपनी स्त्रीके प्रेमसे सन्तुष्ट न रह सका, क्योंकि कवियों और चित्रकारोंकी नजर चरित्र परखते-परखते खुर्दबीनसे भी ज्यादा तेज हो जाती है। फिर तो आदमीके ऐब और गुण जो इनको दिखाई पड़ते हैं वे दूसरोंको नहीं। मगर प्रेमकी ऐनक ऐसी मनमोहिनी होती है कि वह ऐबको भी गुणके रूपमें दिखलाती है। जबतक उनकी आंखोंपर यह ऐनक चढ़ी रहती है तभीतक उनकी स्त्रियोंके भाग्य चमकते हैं। मगर जहां कहीं उनकी स्त्रियोंने भूलकर भी उस ऐनकको अपनी जगहसे जरा सरकनेका अवसर दिया कि-फिर तो इनके ऐब खुले।

प्यासेको अगर गन्दा पानी दिया जाय तो उसको

प्यास नहीं बुझ सकती। चाहे किसी मुलाहिज़ासे या प्राणरक्षाके लिये वह उस पानीको ओठोंसे लगा ले, मगर वह उसे जी भरकर पी नही सकता। जिस पानीको निर्मल समझकर वह नित्य पीता हो उसी पानीको एक दिन खुर्द-बीनसे उसे दिखलाया जाय कि देख तेरे गिलासका साफ़ पानी करोड़ों कीड़ोंसे भरा है तो फिर वह प्याससे मरता क्यों न हो, मगर उस वक्त तो उस पानीको वह घृणासे फेंक ही देगा। इसी तरहसे इनकी नङ्गी खुर्दबीनवाली आंखोंमें इन्हें स्त्रियां भी ऐवोंसे भरी हुई दिखाई देती हैं। चीज़ वही, मगर पहिले प्रेमकी ऐनकसे कुछ और ही दिखाई पड़ती थी। जिसे ये पहले शोख़ समझते थे वह अब इन्हें निर्लज्ज मालूम होती है। जिसे कभी भोली कहते थे वह अब फूहड़ दिखाई देती हैं। तब हंसमुखी थी, अब खोस-निपोड़ है! पहले गजगामिनी तो आज मस्तानी! पहले चञ्चल चुलबुली तो आज हुरदङ्गा मचानेवाली!

फिर जहां इनका दिल जरासा भी ऐबकी चट्टानसे टकराया और इन्होंने अपनी स्त्रीको अपने आदर्शकी तुलना-से गिरी हुई पाया कि बस इनका दिल या तो चकनाचूर हो जाता है या बहककर दूसरी ओर भाग निकलता है। इन लोगोंका कोमल हृदय अनुभव करते-करते इतना

नाज़ुक हो जाता है कि जरा-जरासी बातें, जो दूसरोंपर कुछ भी असर नहीं कर सकतीं, इनके दिलपर बरछीकी तरह लग जाती हैं। तभी तो Byron की पहली प्रेमिकासे उसकी किसी सखीने जब पूछा कि क्या तुम Byron से शादी करोगी, तो उसने चाहे नखरेसे या मजाकसे या शर्मसे या किसी ख्यालसे तानेमें जवाब दिया कि भला उस लंगड़ेके साथ मैं कभी शादी कर सकती हूं? संयोगवश Byron भी अरमानोंसे भरा हुआ उसी समय उससे मिलने आ रहा था। पहुंचते ही यह जुमला उसके कानमें पड़ा। वह वहांसे तलमलाकर भागा, फिर कभी जिन्दगी-भर उस तरफ नहीं मुड़ा। उर्दूके महाकवि 'ग़ालिब' को भी जब नौकरीकी जरूरत पड़ी और इनकी दर्ख्वास्तपर कालिजके प्रिन्सपलने मोलवीगिरी देनेके लिये इनको बुलवाया तब कविजी पालकीपर चढ़कर उनसे मिलने गये। मगर प्रिन्सिपल इनकी अगुवानी करनेके लिये बाहर दरवाज़ेपर नहीं आये, बल्कि नियमानुसार इनको अपने कमरेमें बुलवाया। यह जरासी बात इनके दिलपर चोट कर गई। ये फौरन लौट आये। भूखों मरना बेहतर समझा, मगर नौकरी नहीं की। जिसका दिमाग और खयाल जितना ही नाज़ुक होंगे उसकी तबियत भी उतनी ही नाज़ुक हो जाती है।

उसी तरह मेरे नाज़ुक खयालने, मेरे नाज़ुक दिलने, मेरे नाज़ुक मिजाजने मेरी और मेरी स्त्रीकी जिन्दगी खराब कर डाली। बकरा जब अपने गलेपर छुरी चलवाता है तब दूसरेके मज़ेके वास्ते दावतका सामान तैयार कराता है। ऐसे ही लेखक और कवि भी पहले अपने दिलको चूर-चूर कर देते हैं, अपनी जिन्दगीकी जड़ काट देते हैं, अपना मज़ा खो देते हैं, अपनी हँसी-खुशीमें आग लगा देते हैं, तब दुनियाके विविध भावोंका तमाशा दिखाते हैं, औरोंकी दिलचस्पीका सामान बनाते हैं, दूसरोंका जीवन सुधारते हैं और साहित्यिक आनन्द बढ़ाकर संसारको खुश करते हैं।

मेरी शादी हुई, मगर मैंने अपनी स्त्रीको शादीमें देखनेकी कोशिश न की, क्योंकि मुझे जबरदस्ती ब्याह करना पड़ा था; अपनी खुशीके लिये नहीं, वरन् दूसरोंको खुश करनेके लिये, एक दुनियावी फर्ज या रस्म अदा करनेके लिये, अपनी आज़ादीका खून करनेके लिये। यद्यपि उस समय मेरी चढ़ती जवानी थी, मगर मेरे विचार बिल्कुल बूढ़े तत्वज्ञानीकी तरह थे, दिल टूटा हुआ था, अरमानोंकी हत्या हो चुकी थी, क्योंकि जिस "चञ्चल" को मैं प्यार करता था वह मेघोंके अन्दर छिप जानेवाली चञ्चलाकी तरह लुप्त हो गयी थी। ईश्वर जाने, उसे ज़मीन खा गयी

या आस्मान उठा ले गया ! खैर, न देखनेकी कोशिश करनेपर भी एकाएक मेरी स्त्री नजरोंके सामने पड़ गयी ! ठीक "चञ्चल"के बराबर कद, वैसी ही गोरी, वही उमर, वही डीलडौल, वही नजाकत, सब कुछ वही। सुन्दरी भी हजार पांच सौमे नहीं तो सौ दो सौमें एक जरूर थी। जिस तरहसे भैंसका पड़वा (बछड़ा) मर जानेपर लोग उसकी खालमें भूसा भरकर भैंसके पास खड़ा कर देते हैं और उसीको वह अपना जीता हुआ पड़वा समझकर दूध दे देती है, उसी तरह मैंने भी सोचा कि अपनी स्त्रीको "चञ्चल" का ढांचा समझकर अपने दिलको समझा लूंगा।

उसकी सुन्दरताने मेरे दिलपर कुछ भी असर नहीं किया। तो भी मैंने इतना जरूर सोचा कि "मुमकिन है कि उसके दिलमें शायद मेरा कुछ ख्याल पैदा हुआ हो" मेरी खातिर न सही तो कम-से-कम उस सिन्दूरकी खातिर, जिसमें सुनता हूं वह जादू है कि नालायक और बद-सूरत पतिके लिये भी हिन्दू-स्त्री जान दे देती है ! ऐसे ही विचार गौने तक मेरे दिमागमें रहे। मैं अपने दिलमें बराबर यही सोचता और कहता रहता था कि मेरी स्त्री भी अपने मायकेमें मेरे लिये ऐसा ही कुछ सोचती होगी कि—

सखि तैं हू हुतो निशि देखत हो
जिन पै वे भई हैं निछावरियां।
जिन पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब
गाय उठीं ब्रज डावरियां।
अँसुवां भरि आवत मेरे अजौं
सुमिरे उनको पद्पांवरियां।
कहु को हैं हमारे वे कौन लगें जिनके
संग खेलो हैं भांवरियां॥

कुछ महीने बाद गौना (द्विरागमन) हुआ। प्रथम समागमकी तैयारी होने लगी। मगर मेरे दिलमें खुशी नहीं पैदा हुई। तबियत तो दुनियासे बिलकुल उचटी हुई मालूम पड़ती थी। रह-रहकर "चञ्चल" को सूरत आंखोंमे नाच जाती थी। दिलकी यह हालत देखकर मैंने सोचा कि अपने अरमानोंका तो खून कर ही चुका हूं, अब उस बेचारी स्त्रीको आशाओंको कुचल रहा हूं। आखिर वह भी तो आदमी है। उसके भी दिल है। आज उसका यौवन लूटा जानेवाला है। वह भी नाज-नखरे, शोखी शरारत, शर्म और झेपकी फौजके साथ तैयार खड़ी होगी।

शौक और अरमानोंसे भरी होगी। फिर मैं अपनी उचटी तबियतसे उसका दिल क्यों तोड़ूं? यह ख्याल आते ही मैं अपने जीको जबरदस्ती खुश करने लगा। दिलको फुसलाने लगा कि आज तू वह चुहल और चुलबुलाहट देखेगा जो तूने अबतक ज़िन्दगीमें न देखी होगी। ज़रा चलकर देख तो सही, कि आज कैसे-कैसे इसरार, इनकार, बहाने, विनती, झिड़की और झुंझलाहटका नाटक होता है। मेरी गुस्ताखी हाथापाई और ज़िदपर कुछ ऐसी ही प्रार्थनाएं सुननेको मिलेंगी—

"झांझरिया झनकेगी खरी खनकेगी
चुरी तनकी तन तोरे।
'दास' जू जागती पास अली परिहास
करैंगी सबै उठि भोरे।
साह तिहारी हौं भाजि न जाहुंगी आई
हौं लाल तिहारे ही घोरे।
कालिकी रैन परी है घरीक गयी करि
जाहु दईके निहोरे।

ऐसे ही विचारोंमें मस्त मैंने सुहागकी रातको अपने

कमरेमें कदम रखा। देखा कि मेरी स्त्री, न जाने क्यों कई रात जगी रहनेसे या थकावटसे, बेखबर सो रही है। मेरे दिलके अन्दर "चञ्चल" की मूर्त्ति तानेसे भरी हुई हँसी हँसकर कहने लगी—"मैं होती तो क्या तुमसे मिलनेके लिये इस तरह तुम्हारा आसरा देखती ? जिसका खजाना लूटनेके लिये डाकू सरपर पहुंच गया वह भला ऐसी बेखबर सोये ?"

माना कि "चञ्चल" ऐसे अवसरपर मुझसे इस तरह नहीं मिलती और अगर मिलती भी तो मैं उसे और ही निगाहोंसे देखता और उसके ऐसे भावको सिर्फ अल्हड़पन या लड़कपन समझकर तारीफसे कह उठता कि—

"सर कहीं बाल कहीं हाथ कहीं पांव कहीं।
उनका सोना भी है कि शानका सोना देखो॥"

किन्तु अपनी स्त्रीके दोषोंको गुणके रूपमें देखनेके लिये अफसोस ! मेरी आंखोंपर प्रेमकी ऐनक ही न थी और न मेरा दिल कामी या विजयी था जो अपने शिकार-को ऐसी बेखबरीकी हालतमें पाकर खुश होता। मेरा प्रेमरससे शराबोर हृदय प्रेमियोंकी तरह खाली उभड़ी हुई नौजवानी और रमणीय सुन्दरतापर मुग्ध होना नहीं

जानता था। वह इनके अलावा कुछ और ही चीज ढूंढ़ता था। जिसके बिना लाख-लाख सुन्दरता भी उसके लिये फीकी थी, उमड़ी हुई जवानी भी बदरंग थी, वह तो प्रेम-के संग्राममें दूसरेको जीत लेना अथवा स्वयं आत्मसमर्पण कर देना जानता था। इसीलिये मैं अपनी स्त्रीको एक अजीब निगाहसे देखता रह गया जिसमें न चाहत थी, न दिलचस्पी और न मिठास।

---

[२]

"एक जो कंज-कली न खिली,
सो कहो कहूं भौंरको ठौर है नाहीं।"

कहनेसे धोबी गदहेपर नहीं चढ़ता वही कमबख्त प्रेम-का हाल है। यह हजरत ऐसे मनमौजी हैं कि अपने आप चाहे किसी कउवा परीके तलवोंपर भले ही नाक रगड़ें, मगर यह जानकर कि अमुक व्यक्तिपर मुझे हृदय निछावर करना चाहिये यह सैकड़ों ही नखरे दिखाते हैं। वह सुन्दरता और गुणोंमें देवी ही क्यों न हो फिर भी इनका दिल नहीं पसीजता। ठहरे बेचारे जन्मके चोर और मुंह-चोर, उचित मार्गोंपर मुंह दिखाते इन्हें सङ्कोच क्यों न हो?

तभी तो अपनी स्त्रीसे प्रेम करनेके मेरे सभी उपाय निष्फल हुए। थोड़ी-बहुत बनावटी लालसा हृदयमें कोशिश करके पैदा की थी उसे भी मेरी स्त्रीकी जरासी असावधानीने एकदम धूलमें मिला दिया। इस ठेसने मेरी उचटी हुई तबियतको सदाके लिये उस तरफसे और भी दूर हटा दिया। फिर तो मेरी स्त्रीकी सभी बातें मुझे बुरी मालूम होने लगीं।

स्त्रियां पुरुष-हृदयके गुप्त-से-गुप्त भावोंको ताड़नेके लिये गजबकी आंखें रखती हैं। इसलिये मेरे लाख छिपाने-पर भी मेरे दिलका भेद मेरी स्त्रीसे छिपा न रहा होगा। और यही वजह थी कि उसका भी मन मुझसे खिंचा रहने लगा। और उसकी लापरवाही मेरे प्रति दिनोंदिन बढ़ती ही गई। जब दोनों तरफ यह हाल था तो हम दोनों-के मन मिलते तो किस तरह? और आपसमें प्रेम पैदा होता तो कैसे?

मगर मनुष्य अपनी दुर्बलताओंको नहीं जानता। वह दूसरोंहीके ऐब देखा करता है। वह दूसरोंहीको सुधारना चाहता है, अपनेको नहीं। इसी तरह मैं अपने भावोंपर अपने व्यवहारोंपर भूलसे भी दृष्टि नहीं डालता था। मगर चाहता था कि मेरी स्त्री मेरे पास सैकड़ों बार आया

करे। मुझसे सदैव मीठी-मीठी बातें करे। मुझे तन मन धनसे प्यार करे। भला इन बातोंकी उससे कैसे आशा की जा सकती थी जब वह जानती थी कि मैं प्रेमपात्री नहीं बल्कि आंखकी किरकिरी हूं? दिलकी इस ऐंचातानीके लिये मैं मनमें उसीको दोषी ठहराता था। उसीको हृदय-हीना और लापरवाह जानकर मैं दिल-ही-दिल उससे कुढ़ा और जला करता था। मेरी तबियत उससे और भी उखड़ गई जब देखा कि स्त्रीके घरमें पैर रखते ही सारा घर-का-घर मेरे लिये बेगाना हो गया। मैं यह नहीं जानता था कि हिन्दू-परिवारमें सभी नव-विवाहित युवाओंको यह मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। यह युवकोंके लिये अत्यन्त ही धैर्यसे काम लेनेका समय होता है। कोई तो अपनी जवानीके नशेमें ऐसे चूर होते हैं कि इसकी चोटको अनु-भव ही नहीं करते। और यों बेहाया बनकर घरवालोंकी निगाहोंसे सदाके लिये गिर जाते हैं और कोई इसकी मार-को न सहकर बीबीके साथ घरसे निकल खड़े होते हैं और यों जोरूके टट्टू कहलाते हैं। मगर मेरे लिये न इस कर-वट चैन और न उस करवट। जिसके लिये मैं अपनोंसे पराया बना वह भी तो मेरी न हुई। फिर मेरे हृदयको शान्ति मिलती तो किस तरह और कहां?

लोग अपनी नई नवेली दुलहिनके संग रहनेके लिये सैकड़ों बहाने ढूंढ़ा करते हैं। अपने काम-काज या पढ़ना-लिखना छोड़कर उसके पास भाग-भागकर आते हैं। मगर मैं अपनी स्त्रीके साथ रहनेसे ऐसा उकता गया था कि मुझे उसके पाससे भागनेहीमें चैन था। इसीलिये अभी मेरी छुट्टी पूरी भी नहीं हुई थी कि मैं अपने कालिजके होस्टलमें आकर रहने लगा।

जबतक कालिज नहीं खुला, तबतक मुझे यही चिन्ता सदा घेरे रहती थी कि स्त्रीके संग मेरे दिन कैसे कटेंगे! मेरी तो प्रकृति ऐसी थी कि जिसे मैं प्यार करना न भी चाहूं तो उसे प्यार करने लगूं। मगर अफसोस! अपनी स्त्रीसे प्रेम करनेके लिये इतनी तदबीरें कीं तौभी उससे प्रेम न कर सका। निस्सन्देह यह उसीका दोष है। उसीमें कोई न-कोई ऐसा अवगुण है जिसके कारण मेरा दिल उससे इतना पिछड़ता है। जब इन विचारोंसे बहुत परेशान हो जाता था तब मैं स्त्रीका ख्याल अपने दिलसे एकदम हटा देनेकी कोशिश करता था। और इस तरह अपने मनको समझाता था कि मैं तो प्रेमका भिखारी हूं। उससे प्रेम-भिक्षा मांगी। उसने नहीं दी, तो डन्डा लेकर उससे लड़नेका भिखारीको अधिकार नहीं है।

अस्तु, कालिज खुलते ही पढ़ाई-लिखाईकी भीड़में, खेल-कूदकी उमङ्गमें, साथियोंकी चहल-पहलमें मेरी उदासी जाती रही, और मेरा मन आप-से-आप बहलने लगा। संयोगवश इसी बीचमें मोती नामक एक अन्य कालिजका विद्यार्थी मेरे कालिजमें भर्ती हुआ। न जाने क्यों उसे देखते ही मुझे 'चञ्चल' की याद आ गई, और उसकी पहिली ही बातचीतमें मेरी तबियत उसकी तरफ झुकने लगी। हो-न-हो उसमें कोई बात ऐसी जरूर थी जो चञ्चलसे मिलती होगी। जब कोई नया लड़का किसी अन्य कालिजमें पढ़नेके लिये जाता है तो उसे अकेला पाकर वहांके लड़के बहुत परेशान किया करते हैं। यही हालत हमारे होस्टलमें मोतीकी हुई। केवल मैं ही अकेला उसका सहायक था। इसलिये मेरी उसकी तुरन्त ही अति गाढ़ी मैत्री हो गई। और इस मैत्रीमें मेरी तबियत कुछ ऐसी बहली रहती थी कि फिर मुझे अपनी स्त्रीकी याद नहीं आई।

मेरी स्त्री मेरे माता-पिताके साथ उस नगरमें रहती थी जहां मेरे पिता नौकर थे। इसलिये मैं अब छुट्टियोंमें वहां जानेके बदले अपने घर चला जाता था, जहां मेरे अन्य सम्बन्धी रहते थे। घरपर कालिजकी तरह चहल-पहल न थी, और न वहां मोतीके ऐसा मेरा कोई मित्र ही था। फिर

भी मेरी तबियत वहां घबराती न थी। दिनभर साहित्य-सेवामे जी लगता था, तो शामको प्रकृतिकी छटाकी बहार देखनेके लिये दूर खेतोंमें निकल जाता था, या कभी अपने मकानके पास ही डाकबंगलेके हातेमें कुछ स्कूलके लड़कों-के साथ जाकर टेनिस खेला करता था। वहांके चपरासी, चौकीदार और मालीके लड़के हम लोगोंके गेंद उठाया करते थे। उनमें जमना नामकी एक छोटी और नासमझ लड़की भी अकसर गेंद उठाने आ जाती थी। मगर वह गेंदोंको उठाकर जल्दीसे खिलाड़ियोंकी तरफ फेंकती नहीं थी, बल्कि वह उन्हें लाकर हाथमें देती थी। इससे खेलमें देर हो जाती थी, और खिलाड़ी लोग झुंझला उठते थे, क्योंकि देर हो जानेसे खेलका मज़ा किरकिरा हो जाता था। मगर मुझे खेलसे अधिक आनन्द उसके इस भोलेपनमे मिला करता था। और इसलिये मैं उसे साथियोंके मना करने-पर भी चलते समय दो-एक पैसे दे दिया करता था। कभी-कभी मैं अपनी रचनाओंके लिये उपयुक्त विषय और प्लाट सोचनेको चान्दनी रातमें जाकर वहीं 'टेनिसकोर्ट' में अकेले लेटता था और जब कभी वहांपर जमना आ जाती थी—क्योंकि वह वहीं रहती थी—तो मैं उसीसे बातें किया करता था, क्योंकि उसकी बातें बड़ी भोली होती थीं।

एक दिन उसे देखकर मेरे एक साथीने कहा कि "यह छोकड़ी तो अभीसे ग़ज़बकी चाल चलती है जैसे 'थियेटर-की एक्ट्रेस' तो आगे और भी आफत ढायेगी तब मुझे मालूम हुआ कि 'चञ्चल' की भी चाल ठीक ऐसी ही थी और इसलिये मुझे इसकी बातें इतनी प्यारी मालूम होती हैं।

इस तरहसे कालिजमें मोतीके संग और छुट्टियोंमें घरपर जमनाके साथ मेरा मन आनन्दमें मग्न रहा करता था, और सौभाग्यसे मेरा यह आनन्द ऐसा निर्मल और निष्कलंक था कि इसे भग्न करनेके लिये कोई कम्बख्त ऐबकी उंगली उठानेकी मजाल नही रखता था; क्योंकि मोती मेरा सहपाठी था और मेरी ही उमरका था। और इधर जमना लड़की थी ज़रूर, मगर कमसिन, नासमझ और भोली थी।

[३]

"मन्जिले उलफतपे अपनी महुयतके हैं निसार
मुझको हर रहरौ पे तेरी शक्लका धोखा हुआ।"

गौनेके बाद जब मैं अपनी स्त्रीसे बिगड़कर कालिज आया था उससे फिर मैं उसके पास नही गया। जब वह

मुझसे बेगानोंकी तरह मिलती थी और उसपर मेरे घर-वाले सभी मेरे लिये पराये हो रहे थे तब वहां जाकर अपने जीको खाली कुढ़ाना ही था। इसलिये बड़े दिनकी लम्बी छुट्टीमें मैं अपने कालिजकी 'टीम' के साथ जबलपुर चलने-को तैयार हो गया। खेलना-कूदना तो ठीक जानता न था, मगर बातें बनाना खूब जानता था। खिलाड़ियोंने देखा कि अच्छा बेवकूफ फंसता है फंसने दो। इसकी वजहसे सफरमें दिलचस्पी रहेगी। और मैंने देखा कि इस छुट्टीको बितानेके लिये इससे बढ़कर दूसरा कोई सुन्दर उपाय नहीं है। इसलिये उन लोगोंने मुझे बड़े शौकसे 'टीम' के फालतू लड़कोंमें भर्ती किया और मैं भी बड़ी खुशीसे उनके साथ हो लिया।

सोचे हुए था कि जबतक मेरी स्त्री मुझसे मिलनेके लिये अपनी व्याकुलता न दिखायगी तबतक मैं इसी तरह अपनी छुट्टियां बिताया करूंगा और उसके पास न जाऊंगा। मगर अपनी कमबख्तीको क्या कहूं कि तक-दीरके आगे मेरी एक न चली। क्योंकि एक दिन जबल-पुरमें जब हमारे सभी साथी शहर घूमने चले गये थे और मेरी तबियत एकाएक खराब हो जानेके कारण मैं अपनी चारपाईपर मुंह लपेटे पड़ा था, तब एक चपरासीने

आकर मेरे हाथमें एक खत और एक तार दिया। खत पिताका लिखा हुआ था, जो कालिजसे घूमता हुआ मेरे पास वहां पहुंचा और तार पिताके एक मित्रका भेजा हुआ था। तारमें सिर्फ इतना ही लिखा था, "निहायत ही बुरी खबर है। तुम फौरन चले आओ।"

यह पढ़ते ही मेरे सरपर जैसे पहाड़ टूट पड़ा। मैंने किसी तरह दिल कड़ा करके कांपते हुए हाथोंसे पिताका ख़त खोला। मगर उसमें सब कुशल समाचार! मैं बहुत चकराया कि मामला क्या है! ग़ौर करनेपर मैंने यह तय किया कि तारसे ख़त पहिलेका चला है। अधिक-से-अधिक तीन या चार दिन। इतने थोड़े अरसेमें ऐसी कौन-सी मुसीबत मेरे घरवालोंपर आ सकती है। अगर मौत भी किसीकी होय तो कुछ दिन बीमारीमें लगते हैं। हो-न-हो मेरी स्त्रीने शायद आत्म-हत्या कर ली है। स्त्रीकी तरफसे मेरे दिलमें चोर था ही। इस ख्यालके आते ही मुझे विश्वास हो गया कि जरूर यही बात है। फिर तो मैं बिना पानीकी मछलीकी तरह तड़पने और छटपटाने लगा, क्योंकि मैं जानता था कि इस अनर्थका मुख्य कारण मैं ही हूं। यद्यपि मैं अपनी स्त्रीको प्यार नहीं करता था, तथापि मैं ऐसा वज्रहृदय न था कि उसकी मौत चाहता।

कुछ तो इस कारणसे और कुछ इस बातसे कि 'आदमीके बाद उसकी कदर मालूम होती है' पश्चात्ताप और करुणाने मार-मारकर अपने हृदयको अपनी स्त्रीके लिये अत्यन्त ही कोमल बना दिया।

ढाई दिन लगातार सफरके बाद मैं अपने पिताके निवास-स्थानपर पहुंचा। पिता सदैव मुझे स्टेशनपर ही दर्शन देते थे और उनकी खुशामदमें वहां आठ-दस आदमी और भी उनके साथ रहा करते थे। मगर उस दिन वहां कोई भी न था। कुछ जान-पहचानवाले स्टेशनपर घूमते हुए दिखाई भी दिये, मगर उन्होंने मुझे देखकर झट अपने मुंह फेर लिये। यही लोग सलाम करनेके लिये पहिले कभी मेरा मुंह निहारा करते थे और उस दिन मैं इनको सलाम करता था और ये लोग मेरी तरफ आंख उठाकर देखते भी न थे। या ईश्वर! आज दुनिया मुझसे इस तरह क्यों रूठ गई? यही सोचता मैं अपने हातेमें पहुंचा। फौरन रोना-पीटना शुरू हो गया। मालूम हुआ कि मेरे पिताका अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। उफ! मेरा सर्वनाश हो गया।

सब लोग रोते, चिल्लाते और छाती पीटते थे, मगर मेरे दिलपर वह धक्का लगा कि आंखसे एक बून्द आंसू भी

न निकला; क्योंकि अगर बिगड़ा तो मेरा बिगड़ा, मुसीबत पड़ी तो अकेले मेरे सर पड़ी। न जगह न जिमीदारी। न रोजीका कोई सहारा और न घरमें कोई दूसरा कमानेवाला परिवार इतना बड़ा और मेरी किश्ती मझधारमें, क्योंकि मेरी शिक्षा अभी समाप्त नहीं हुई थी। घरमें एक पैसा नहीं, जिससे इस मुसीबतकी चोटको कुछ दिन सह लिये जानेकी उम्मीद होती; क्योंकि महीनेका आखीर था, पिताकी तनख्वाह मिली न थी। खर्चेके लिये जो रुपये थे भी, वह दाह-क्रियामें लग चुके थे। बङ्कमें जो रुपये थे वह भला बिना अदालती सार्टिफिकेटके कैसे मिल सकते थे? उस सार्टिफिकेटके हासिल करनेके लिये भी तो रुपयोंकी जरूरत थी, और इसपर क्रिया-कर्मकी फिक्र कलेजेको बरछीकी तरह और बेधने लगी।

मेरा दम इन्हीं चिन्ताओंमें घुट रहा था। मारे परेशानियोंके मैं पागलोंसे भी बदतर हो रहा था। मेरी आंखोंके चारों तरफ अन्धियारी छा रही थी। इस विपत्तिके महासागरमें अपनी डूबती हुई हिम्मतको किसी तरह उबारनेके लिये मैं आंखें फाड़ फाड़कर चारों तरफ सहारा ढूंढ रहा था। मगर अफसोस! सहारेका नाम कहीं तिनका भी न दिखाई देता था। दुनियाका अति भयङ्कर रूप अलबत्ता

मुझे अपनी बेमुरूत आंखोंसे मारे डालता था। यही इसकी असली सूरत है, जो केवल ऐसे ही संकटकी घड़ीमें दिखाई देती है। यों कहनेको मेरे सैकड़ों रिश्तेदार, संबन्धी और हितैषी थे, मगर सभी मेरे गलेपर छुरी चलानेके लिये आस्तीन चढ़ाये बैठे थे। कितने ही पिताके कर्जदार थे। एकाधपर अदालतकी डिग्रियां भी थीं। मैं सहायताके लिये सभोंके पास दौड़ा-धूपा, मगर अपना ही मुंह पीटकर रह गया। जिन-जिनको पिताने सहायता देकर आदमी बनाया था, उनके पास भी गया। उन्होंने भी मुझे टकासा जवाब देकर दुतकार दिया। चारों तरफसे ठोकरें खाकर जब मैं बिल्कुल निर्जीव और हताश हो गया तब मुझे स्त्रीकी याद आई, क्योंकि लोग कहते हैं कि ऐसे कुअवसरोंमें स्त्रियां पुरुषोंको उत्साह बढ़ाकर आदमी बनाती हैं। मगर उसका ख्याल आते ही हृदयकी सारी कोमलता फिर ऐंठ गई और मैं और जल-भुनकर खाक हो गया। इसलिये कि मेरे आये हुए कई दिन हो गये फिर भी वह मुझसे एकान्तमे मिलने क्यों नहीं आयी। मुमकिन है ऐसी आफतमें लोक-लज्जाकी दबसटमें उसने मुझसे इस तरह मिलना ठीक न समझा हो, क्योंकि तब शायद घरवाले यह कहते कि घरमें हाहाकार मचा हुआ है और इसे अपने मर्दसे मिलनेका

शौक चर्राये हुए हैं। मगर मैंने इस बातको नहीं सोचा और उलटे उसकी इस बेरुखीपर और भी जल मरा।

मिलनेको मैं उससे मिला। मगर अफसोस! मेरा न मिलना ही अच्छा था, क्योंकि जब मैं उसके पास गया वह मुझसे कुछ भी नहीं बोली। शायद यह बात हो कि मेरे ही भावोंमें उसने रूखापन देखा हो, इसलिये उसने बोलना मुनासिब न समझा या इतने दिनोंतक उसके पास न जानेकी वजहसे मुझसे रूठी हुई हो। अस्तु, कुछ भी हो मगर उसका चुप रहना उस समय मेरे जलते और तड़पते हुए दिलपर और भी जहरका काम कर गया। मेरा मन उससे केवल फट ही नहीं गया, बल्कि उससे मुझे बेहद घृणा हो गई। इतने दिनोंके बाद मैं आया और ऐसी आफतमें मैं पड़ा हुआ हूं और हाय! इसके पास मेरे लिये एक शब्द भी सहानुभूतिका नहीं है। इस ख्यालने मुझे एकदम पागल बना दिया। मैं अपने क्रोधके वेगको सम्हाल न सका और उसे मैं मार बैठा। उस समय चञ्चलकी हँस-मुख सूरत मेरी आंखोंके सामने नाचने लगी, मानों कह रही थी कि "अगर मैं होती तो तुम्हारी सारी मानसिक पीड़ा एक ही मुस्कुराहटमें हर लेती।"

चार-पांच रुपये जो मैं अपने साथ लाया था उसीसे

अबतक किसी तरह निमक-रोटीपर गुजर किया। मगर अब तो क्रिया कर्मका दिन भी निकट आ गया। इससे मैं और भी परेशान हो चला, क्योंकि महापात्र जातिवाले भला मुझपर क्यों तर्स खाते? मेरी हड्डियांतक बिना बिकवाये हुए यह लोग किसी तरह मान नहीं सकते थे। न जाने किस तरह ऐसे अवसरोंपर आंसुओंसे तर भोजन इन लोगोंके गलेसे उतरता है बलासे कोई टुकड़ों-टुकड़ोंका मुहताज हो गया हो, बलासे कोई मारे भूखके मरता हो, मगर इनको दान देनेमें एक कौड़ीकी भी कमी न हो। बिरादरीवालोंके पेट भरनेमें अपनी हड्डियांतक बेच डालो, अपने बाल-बच्चोंके गलेपर छुरी चलानेमें कोई कसर उठा न रखो। अय रस्म-रिवजोंकी वेदीपर इस देशका बलिदान करनेवालो! जरा दम लो, क्योंकि मातृ-भूमिकी गिरहमें अब झंझी कौड़ी भी नहीं है। एक एक दानेके लिये बेचारी बिलख रही है। ईश्वरके लिये इस-पर अब तो तरस खाओ; क्योंकि दुर्भाग्यका मारा हुआ बच जाय तो बच जाय, मगर रस्मरिवाजोंका मारा हुआ फिर नहीं पनपता। हाय! न जाने कब तुम्हारी आंखें खुलेंगी? इसी तरह मैंने अपनी और देशकी तकदीरपर आंसू बहाते हुए घरकी चीजें बेच-बांचकर किसी तरहसे

क्रिया-कर्मकी रस्म पूरी की और घरवालोंको लेकर वहांसे घर आया।

जिन-जिन मुश्किलोंसे मैंने ये दिन काटे हैं और कालिज जाकर बी० ए० का इम्तहान दिया है, इसको वही बदनसीब अनुभव कर सकता है जिसपर ऐसी आफत कभी पड़ी होगी। इम्तहान देकर जब घर आया, तब कचहरीमें दौड़-धूप करके थोड़ी तनख्वाहपर एक नौकरी कर ली। इतनी औकात न थी कि कचहरी एक्केपर आया-जाया करता। फिर भी बड़े बाबूके डरके मारे कि कहीं देर हो जानेपर वह सरपर आसमान न उठा लें, मैं जाते समय बाजारमें जाकर एक्का कर लिया करता था। एक दिन मैं जैसे ही एक्केपर बैठ रहा था कि सामनेसे एक लड़की निकली। उसे देखते ही मैं यकायक चिल्लानेवाला था कि "अरी चञ्चल! तू यहां कहां?" मगर मुंहकी बात मुंहमें रह गई। मैं हक्का-बक्का उसका मुंह निहारता ही रहा। वह भी बराबर घूम-घूमकर देखती रही। और मेरा एक्का बाजारसे निकल गया।

---

[४]

"दिलमें यक दर्द उठा आंखोंमें आंसू भर आये।
बैठे बैठे हमें क्या जानिये क्या याद आया॥"

चञ्चल गोरी थी मगर जिस लड़कीकी अभी झलक देखी थी, उसमें सांवलापन था। तौभी कुन्दन-सी दमक थी। वह छहरहरे बदनकी थी और इसका बदन गठा हुआ था। वह हिन्दू थी, यह मुसलमानिन जान पड़ती थी। उसके चेहरेसे शोखी टपकती थी, इसकी सूरतमें भोलापन था। इन दोनोंमें भेद इतना, फिर भी दिल कहता था कि यह चञ्चल ही है। इसका सबूत उसकी निगाहें दे रही थीं। मैंने सैकड़ों लड़कियोंको देखा था, मगर ऐसी बीमार आंखें नहीं देखी थीं। अगर यह वह नहीं थी तो इसने मुझे बार-बार क्यों देखा? जबतक मैं निगाहोंकी ओट नहीं हुआ, तबतक वह मेरी तरफ क्यों ताकती रही? इसकी चितवनसे जान-पहचान नहीं, हेल-मेल नहीं, बल्कि घने प्रेमकी बौछार बरस रही थी। आखिर क्यों? हो-न-हो यह चञ्चल ही है। मुमकिन है इस दगाबाज जमानेने उसे मुसलमानिन बना दिया हो। सूरजने रंग बदल दिया हो। वक्तने बदन भर दिया हो। सब कुछ बदला, मगर निगाह

नहीं बदली। जिसने मुझे बरबाद कर रखा था; और इतनी मुसीबतोंपर भी मेरे दिलमें जो ज्यों की-त्यों गड़ी रही, वही वह थी वही।

उसी निगाहने चञ्चलका प्रेम फिर यकायक उभार दिया। दबी हुई आग भड़का दी। सुधिबुधि भुला दी। बेचैनी बढ़ा दी। मैंने दिलको लाख-लाख समझाया था कि फिर कभी भूलसे प्रेमके फन्देमें न फंसना। अगर प्रेम ही करना है तो अपनी स्त्रीसे करना। मगर हाय! स्त्रीको मेरे दिलकी परवाह न थी। वह जानती ही न थी कि शरीरके भीतर दिल भी कोई चीज है। राजामें अगर सन्तोष और तृप्ति हो तो उसका राज्य दिनोंदिन घटनेके सिवाय बढ़ नहीं सकता। और दुर्भाग्यवश उसका राज्य अगर ऊसर और रेगिस्तान हो तब तो वह और भी राज्य बढ़ाने हीके खयालसे नहीं बल्कि अपने राज्यकी स्थितिके विचारसे भी दूसरे जरखेज मुल्कोंपर चढ़ाई करने और जीतनेसे बाज नहीं आयेगा। वही हाल इन कम्बख्त अनुभवी दिलोंका है। इन्हें कभी भावहीन दिलसे सन्तोष नहीं हो सकता है। चाहे उनपर कितनी ही आफत क्यों न पड़े, वह सदैव भावपूर्ण हृदयोंहीको ढूंढ़ा करते हैं; क्योंकि इन्हींसे वह जीते हैं, पनपते हैं और इन्हींके पीछे

वह मरते हैं। जब मर-खपकर मैं कचहरीसे मुर्दा होकर आता था और चाहता था कि मेरी स्त्री मेरे पास आकर बैठती और अपनी मीठी-मीठी बातोंसे या छेड़खानियोंसे मेरा दिल बहलाती, तो वह आती ही न थी। और कभी आती भी थी तो बिल्कुल अनमनी-सी। ऐसा मालूम होता था कि वह अपने पतिके पास नहीं बल्कि कालके सामने जबर्दस्ती लाई गई है। मैं उसका यह रंग देखकर अपना सर पीट लेता था और झुंझलाकर उसे अपनी आंखोंके सामनेसे हटा देता था। ऐसी हालतमें मेरे प्रेमी और अनुभवी दिलको इससे सन्तोष और तृप्ति कैसे होती? इधर चञ्चलने जो मेरे दिलपर ज़ख्म बनाया था, वह अभी भरने भी न पाया कि उस बाजारकी लड़कीने वही जख्म फिर उभार दिया। अगर दूसरा नया ज़ख्म बनाती तो मुमकिन था, शुरूहीमें इसकी फिक्र करनेसे कुछ आरामकी सूरत नज़र आ जाती। मगर पुराने ज़ख्मपर जो कहीं चोट लग जाती है तो उसपर मलहम-पट्टीका वश नहीं चलता। फिर मेरा दिल भला समझानेसे कैसे काबूमें आता?

'वही दिलकी तड़प वही दर्दे जिगर,
हुआ तौबेय इश्कका कुछ न असर।

तेरी शक्ल जो आंखोंमें फिरती रही,
तेरी यादको दिलसे भुला न सके॥"

वह रोज मुझे ठीक उसी जगह मिलती थी और हमेशा मुझे उसी तरह बार-बार घूमकर देखा करती थी। उसकी नजरोंमे न अचरजकी झलक थी, न छेड़नेका रंग था, न लगावटका ढंग था; बल्कि उनमें उसका सम्पूर्ण हृदय खीचकर चला आता था। ऐसा मालूम होता था कि इससे मुझसे बरसोंसे प्रेम रहा है। इसीसे मैं बार-बार शक करता था कि हो-न-हो यह 'चञ्चल' ही है। फिर कहता था कि यह वह नही है। तब सोचता था कि बात क्या है कि यह मुझे इस तरह देखती है।

अब कामकाजमें जी नहीं लगता था। दूसरे क्लर्कोंके कामसे मैं सख्त परेशान था, क्योंकि कहीं सूईसे खेत थोड़े ही गोड़ा जाता है? मैं साहित्यिक व्यक्ति, सूक्ष्म विचारो और कलाओंसे मेरा दिमाग भरा हुआ। मैं कल्पनाओंके आकाशमें उड़ना जानूं या जमीनपर कीड़ोंकी तरह रेंगना? दूसरी बात यह थी कि जिनकी मातहतीमें मैं था, कचहरीमे मैं उनका उतना ही अदब करता था, जितनेके वह योग्य थे। मैं रास्तेमें उन्हें झुककर कभी

सलाम नहीं करता था या उनके घरपर जाकर खुशामदी मुसाहबकी तरह हां हजूर नहीं करता था। इसलिये मुझसे वह चिढ़े हुए रहते थे। एक दिन मेरी नन्हींसी बहिन सख्त बीमार पड़ गई। मरने-जीनेपर हो रही थी। घरमें अकेला मैं ही कमानेवाला, मैं ही दौड़ने-धूपनेवाला, मैं ही सब कुछ। मैंने जान लड़ाकर चार घण्टेमे दिनभरका काम खतम किया और अपने हाकिमसे सिर्फ तीन घण्टेकी छुट्टी मांगी। मगर कहीं रोब और अख्तियार दिखानेवाले महापुरुष दिल रखते हैं? उन्होंने मुझे छुट्टी न दी और उलटे मुझपर बेजा रोब जमानेके लिये आंखें नीली पीली करने लगे। मैं नाजोंका पाला, प्यारकी आंखोंमें हमेशासे रहनेवाला भला मैं उनकी आंख कब देखनेवाला था? माना कि किस्मतने मुझे बिगाड़ा था, मगर मेरे शाहाने मिजाज और दिलपर अभी उसका बस नहीं चला था। इसलिये ज्योंसे ही उन्होने आंखें दिखाईं वैसे ही मैंने आस्तीन चढ़ाई। उन्होने घुड़की बताई और मैंने लपककर उन्हींके मेजपरसे रूल उठाया। फौरन ही उनकी गर्मी ठंढी पड़ गई और मुझे चुपकेसे छुट्टी मिल गई। मगर मैं फिर कचहरी न गया। दूसरे दिन इस्तीफा भेज दिया।

———

[५]

"देखत सुन्दरी सांवरि मूरति,
लोक अलोकको लोक लखै ना।
कैसो करौं हटके न रहैं,
चली जात तऊ लखि लालची नैना।"

कचहरी जाना बन्द होनेके साथ बाजारवाली लड़कीके देखनेका सिलसिला भी बन्द हो गया, क्योंकि जबतक वह नजरके सामने रहती थी 'चञ्चल' की याद उभड़ा करती थी और इस यादमें मैं उसीको 'चञ्चल' समझकर प्रेममें दीवाना हो जाता था, और उसको मुहब्बत भरी निगाहोंसे देखने लगता था। मगर जहां वह निगाहोंकी ओट हुई कुछ घड़ीतक पुरान मुहब्बतकी बेचैनी सताती थी और इस धोखेमें इस लड़कीसे मिलनेके लिये मैं व्याकुल हो जाता था। मगर थोड़ी देर बाद गृहस्थीकी फिक्र मुझे आ घेरती थी। फिर इस दुनियावी जञ्जालके नीचे यह भड़की हुई आग दब जाती थी। उस वक्त मुझे मालूम होता था कि यह 'चञ्चल' नहीं है। अगर यह दूसरी लड़की है तो होगी। मुझसे इससे क्या सरोकार ? मैं क्यों इसे देखने या इससे मिलनेकी कोशिश करूं ? इसी तरहसे मन

मारकर रह जाता था और इसीलिये उस दिनसे बाजार नहीं गया।

कुछ दिनोंके बाद इम्तहानका नतीजा आया। मोती और हम दोनों पास हो गये, घरवाले कहते थे कि बहुत पढ़ चुके, अब पेटकी फिक्र करो। कम्बख्ती भी कहती थी कि बस नौकरी करो। मगर दिल कहता था कि "खबरदार, नौकरी न करना। इसका मजा तुम अभी देख चुके हो। मेरा गुलामीमें किसी तरह गुजर नहीं हो सकता।" क्या करता, इधर पेटकी भी फिक्र थी और उधर दिलका भी ख्याल था। इसलिये बहुत सोच-विचारकर मैंने यह तै किया कि पढ़ूंगा भी और नौकरी भी करूंगा। मगर पढ़ता तो क्या पढ़ता। केवल कानून ही ऐसी चीज थी जो मुझे बादको नौकरीसे छुटकारा दे सकती थी और जिसके पढ़नेके साथ-साथ मैं नौकरी भी कर सकता था, क्योंकि कहीं-कहीं कालिजोंमें कानून सुबह और शामको भी पढ़ाया जाता है। इधर इन बातोंसे और उधर मोतीको कानून पढ़ते सुनकर मेरा भी शौक चर्राया कि मैं भी कानून पढ़ूंगा।

बैंकके रुपये अब जाकर मिले। मगर उसे अपने ऊपर खर्च करनेके लिये हृदय किसी तरह स्वीकार नहीं करता

था। इसलिये उसमेंसे थोड़ासा खर्चके लिये बतौर कर्जके लिया और बाकी घर-वालोंको देकर मैं नौकरी ढूंढ़नेके लिये बड़े-बड़े शहरोंको निकल गया। नौकरियां मिलती थीं, मगर ऐसे स्थानोंपर जहां कानून पढ़ाया नहीं जाता था। तब हारकर मैं साहित्य-सेवापर झुका, क्योंकि सम्पादकोंने लेख मांगते समय अपनी चिकनी-चुपड़ी बातोंसे मेरा दिमाग आस्मानपर चढ़ा रखा था और मैं भी अपनेको अब कुछ समझने लगा था। मगर पुरस्कारका नाम सुनते ही सम्पादकोंने दम साध लिया, और प्रकाशकगण खर्राटें भरने लगे। क्या करता? झक मारकर फिर नौकरी ढूंढ़ने लगा। अन्तमें बड़ी कोशिश और सिफारिशपर मुझे एक स्कूलमें मास्टरी मिली। मगर भाग्यकी बलिहारी कि मुझे पढ़ाना भी पड़ा तो किनको? कुंवारी और शोख मिसोंको। यहांपर भी मेरी स्त्रीकी किस्मत खोटी निकली।

मेरे पढ़नेका बन्दोबस्त हो गया, और नौकरी भी मिल गई। मगर तनखाह इतनी कम थी कि मैं अपना ही खर्च नहीं चला पाता था; क्योंकि मिसोंमें रहनेके कारण गालों-पर अस्तुरा रोज ही फेरना पड़ता था। जूतोंपर पालिश हर दिन होती थी। कमीज और कालर नित बदलने पड़ते थे। इसका भी ख्याल सदैव रखना पड़ता था कि मीजें 'टाई'

और पतलूनमें शिकन न हो। 'मूद' फैशनके विरुद्ध न हो। सफरमें चलनेके लिये तीसरा दर्जा न हो। इसलिये कि कहीं कोई लड़का मुझे ऐसी हालतमें न देख ले और मुझपर Damn Nigger! Dirty Beggar! Unmannerly Brute! की फब्ती न कसे। और यों नाराज होकर मुझे स्कूलसे निकलवा न दे, क्योंकि मिसोंकी मास्टरी गुलामी-से भी बत्तर होती है।

घरकी औरतें पढ़नेकी क़द्र क्या जानतीं? मेरी मजबूरी और तङ्गीकी असली हालतको भला वे क्या समझतीं? इसलिये वे सब इस नौकरीका कुछ भी फायदा न उठानेके कारण मुझसे बहुत नाराज थीं। वे सोचती थीं कि यह अपने बापके रुपयेपर भूला हुआ है। इसलिये बैंकके रुपये घरपर अन्धाधुन्ध खर्च किये जाने लगे, ताकि यह जल्दी खत्म हो जाय तो इनका दिमाग ठिकाने हो। तभी यह अच्छी नौकरी करेगा और घर सम्हालनेकी फिक्र करेगा। उनकी यह नाराजगी मेरे वहांपर न होनेकी वजहसे मेरी स्त्रीपर उतारी जाती थी। इसलिये दिनोंदिन वह मुझसे और भी कुढ़ती ही गई। इधर मेरा भी दिमाग मिसोंकी संगतमें पड़कर विना विलायत गये हुए कम्बख्त एकदम विलायती हो गया। उसपर वहां 'जूलियट' की बेबाक

निगाहोंके हमलोंके साथ प्रेमपत्रोंकी जो बौछार हुई तो इसका मिजाज बिगड़कर और भी आसमानपर चढ़ गया। यहांतक कि इसमें ऐसी नफासत और अंग्रेजियत भर गई कि मैं जब कभी घर आता था तो मुझे दस कदमकी दूरीसे अपनी स्त्रीमें हिन्दुस्तानी बू मालूम होती थी। फिर ऐसी हालतमें मैं किस तरह उससे तपाकसे मिलता और प्रेमसे गले लगाता ?

उधर वह हाल और इधर यह हाल! शुरूमें जो हम दोनोंके हृदय बिचके तो उन्हे बदनसीबी भी बराबर बिचकाती ही गयी। कम्बख्तने कभी खुलकर आपसमें मिल जानेका कोई मौका ही न दिया। इसलिये जब मैं शिक्षा समाप्त कर गृहस्थीका बोझ सम्हालते हुए घर आकर रहने लगा तब भी हम दोनों अपरिचितके अपरिचित ही रहे। आपसमें हम लोग मिलते थे, बातें करते थे, मगर मिलापमें कोई भाव न था, न कोई दिलचस्पी थी, और न बातोंहीमें कुछ मिठास होती थी। इसीलिये घरपर मेरी तबियत बहुत घबराया करती थी और दिल बहलानेके लिये कभी सैरगाहोंमें निकल जाया करता था। इसी नीयतसे मैं एक दिन एक शहरके मेलेमें भी चला गया। मगर मेरी तबियत वहां और भी ऊब-

गई ; क्योंकि जबसे अंग्रेजी तमाशों और जलशोंमें मिसोंकी चुहलें, अठखेलियाँ और छेड़-छाड़का मजा उठाया था तबसे मुझे हिन्दुस्तानी मेलोंसे नफरत हो गयी थी।

इतनेहीमें मेरे कानोंमें आवाज पड़ी कि "इतने दिन तुम कहाँ थे ?" मैं चौंककर घूम पड़ा और मूर्तिकी तरह ज्यों-का-त्यों खड़ा रह गया। दिमागसे विलायती बू उड़ गई। मिसोंकी चुहलें खाकमे मिल गयीं। चञ्चलकी याद उभड़ उठी और मैं उस बाजारवाली लड़कीको ललचाई हुई आंखोंसे देखने लगा जिसपर मुझे कभी चञ्चलका धोखा हुआ था। और इतने दिनों बाद भी वह मुझे वैसी ही दिखाई पड़ी। उसके आगे न मेरे दिमागकी अंग्रेजियत-का कुछ बस चला और न जूलियटके प्रेमपत्रोंका जिनके मारे मैं अपनी स्त्रीसे प्रेमपूर्वक मिलने नहीं पाता था। फिर क्या था ? दोनोंकी टकटकी बन्ध गई और आस-पासवाले हम दोनोंकी तरफ ताकने लगे।

[६]

"उनको नजरोंको कोई कहता नहीं।
दिल हमारा मुफ्तमें बदनाम है ॥"

छेड़खानी हमेशा मर्दोंकी ओरसे ही शुरू होती है। मगर यह प्रकृतिकी विचित्र गति देखिये कि उस लड़कीने

ही पहले मुझे टोका। मैं कभी उसे देखनेके लिये कोशिश नहीं करता था, मगर भाग्यकी बलिहारीको अदबदाकर वह मेरी आंखोंके सामने पड़ जाती थी और 'चंचल' की याद भड़काकर धोखेमें मेरे प्रेमको खींचकर मुझे 'पागल' बना देती थी। उस दिनसे मैं कभी किसी मेले-तमाशेमें नहीं गया। गया भी तो अपने मनसे नहीं, साथियोंके जबर-दस्ती खींच ले जानेसे। मगर जब कभी घरसे किसी तरफ कदम बढ़ाया तो उसको जरूर देखा। इसी तरहसे वह कभी रामलीलामें, कभी मुहर्रमके जलूसोंमें बराबर मुझे मिला करती थी। दो दफे मुझसे उससे एक गलीमें मुठभेड़ हुई। दोनों दफे जब वह मेरे पाससे गुजरने लगी तब उसने कुछ कहा। क्या कहा मैं कुछ भी समझ न सका, क्योंकि उसकी निगाहें पहलेहीसे मेरे दिलको धड़का देती थीं। मैं दीवाना हो जाता था। मुझे कुछ सुनने या समझनेकी खबर नहीं रहती थी। मैं बराबर यही सोचा करता था कि इस लड़कीको बुदबुदाने (मुंहहीमें बोलने) की आदत है या जान-बूझकर मुझसे कुछ कहती है। अगर सचमुच मुझसे ही कुछ कहती है तो क्या और क्यों? कहांकी मुझसे इससे जान पहचान है? मैं तो यह भी नहीं जानता कि यह कौन है और कहां रहती है।

धोखा

मकानपर अबतक ज्यादा न रहनेके कारण मुझे वहां कोई जानता न था और न मैं किसीके यहां जाता था और न कोई मेरे घर आता था। सिर्फ मनोहर जिससे मुझसे किसी मेलेमें मुलाकात हुई थी, कभी-कभी मेरे यहां आकर बैठता था। एक दफे वह ताजियाके दसमीके दिन मेरे पास दौड़ता हुआ आया और कहने लगा कि "ईश्वरके लिये अभी चलो। मैं तुम्हें एक ऐसी चीज दिखाऊंगा कि तुमने जिन्दगीभर न देखी होगी। क्या कहूं दोस्त, ऐसी नायाब सूरत है कि देखते ही फड़क उठोगे। देखनेवालोंका तमाशा लगा है। बस कुछ न पूछो, जो है वहां बस उसीको देख रहा है।" साहित्यसे सम्बन्ध रखनेके कारण सुन्दरता देखनेका शौक मुझमें हुआ ही चाहे। जब महाकवि शेख़-शादी इसी सुन्दरता देखनेके लिये महलोंके नाबदानमे घुसे थे और मोरीसे सर निकालकर झांका था तो मैं उसके कहनेसे मेलेमें चला गया तो कोई बड़ी बात न थी। उसने मुझे एक औरतोंके झुण्डके पास ले जाकर खड़ा किया और एक नौजवान लड़कीकी तरफ मुझे इशारा किया। मैं उसे देखते ही दंग रह गया और आंख मिलते ही न जाने क्यों वह मुस्करा पड़ी और मैं भी मुस्करा पड़ा। वह भी खिल उठी और मैं भी फड़क उठा, क्योंकि यह वही लड़की

थी जिसपर मैं 'बक्कल' का बराबर धोखा खाता आया था। मगर न जाने मेरी किस्मतमें क्या बदा था कि उससे हजार भागनेपर भी वह मेरे रास्तेमें हमेशा पड़ जाती थी। हम दोनोंकी निगाहें एक दूसरेपर कुछ इस तरहसे पड़ रहीं थीं कि मनोहरको और हर देखनेवालेको विश्वास हो गया कि कुछ दालमें काला है। और यह बदनामी और विश्वास और भी अटल हो गये जब वह औरतोंका झुण्ड मेरे पाससे और एक सफ़ेदपोश बगुला-भगतने आंख बचाकर उस लड़कीपर गुस्ताखीका हाथ चला दिया और वैसे ही मेरा हाथ बाबूसाहबके गालपर चटाखसे पड़ा।

---

[७]

"मिलना तेरा अगर नहीं आसां तो सहल है।
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं॥"

बगुलाभगत तमाचा खाते ही भीड़में गायब हो गये। मैं भी फौरन हां घर चला आया। मगर मैं रह-रहकर यही पछताता था कि मैंने उसे क्यों मारा। वह मुझसे मज़बूत था। अगर उलटकर वह भी हाथ चला बैठता, तो सारी इज्जत किरकिरी हो जाती। दूसरे, उसी वक्त कई

आवारोंके हाथ सफाईसे चले थे। कोई झेंप जाती थी। कोई मुस्करा पड़ती थी। कोई बनावटी ढंगसे झुंझला पड़ती थी। कोई शर्मसे सिमट जाती थी। जिससे मालूम हुआ कि ये कमबख्त मेलोमें बन-संवरकर इसी नीयतसे आती हैं और भीड़में ठसी पड़ती हैं और आवारे भी सफाई दिखानेमें ऐसा कमाल करते हैं कि सिर्फ उनके हाथ जानते थे या जिसके ऊपर हमला होता था वह, और कोई तीसरा जानता ही न था। अगर कोई था तो मैं था, क्योंकि साहित्यरसिक लेखककी आंखपर पट्टी भी बांध दो तो उसकी आंखें दुनियाका तमाशा देख ही लेती हैं। मुझे किसीपर गुस्सा न आया। मगर इस लड़कीपर हाथापाई होते ही मुझे क्यों इतना गुस्सा आया कि मैं बेकाबू हो गया और अपनी बदनामी करा बैठा। मेरी समझमें कुछ न आया। मेरे लाख इन्कार और कसमोंपर भी मेरी सच्चाईका मनोहरको विश्वास न हुआ। वह और दो चार आदमी और, रोज़ शामको आकर मेरे पास कई घण्टे, मेरी मुसाहिबीमें इसी नीयतसे बैठते थे कि वह लड़की यहां जरूर आती होगी और उससे यहीं मुलाकात हो सकती है।

इसी तरह दो महीने बीत गये। मनोहरके सिवा

सब तुम झाड़कर भाग खड़े हुए। मनोहर हमेशा उसी-की बातें करता था। एक दिन धोखेमें मैं कह बैठा कि अगर वह मिलती तो उससे दो बातें पूछता। फिर क्या था, वह मेरे सिर हो गया। लगा कहने "तुमने अबतक क्यों छिपाया? वह तो आदमी है, अगर कोशिश की जाय तो आस्मानसे तारे चले आवें, मगर तुम घरसे निकलो तो सही, बिना हाथ उठाये मुंहमें कौर भी नहीं जाता।" इसी तरहसे अपनी दिलचस्पी, अपनी नीयत और अपनी बलाको मेरे सर मढ़कर वह मुझे सात बजे रातको एक दिन बाजारकी ओर ले चला और उसीके कहनेसे मैंने जेबमें पांच रुपये रख लिये।

एक बूढ़ी धर्मात्मा पानवालीकी दूकानपर हम लोग पहुंचे। मैंने यहां उसे धर्मात्मा इसलिये कहा कि हर एक तीर्थ और स्नानके मेलेमें वह जरूर जाती थी। हर व्रतका पालन करती थी। सोमवारको बिना शिवजीको जल चढ़ाये जल भी नहीं ग्रहण करती थी। मगर बादको बूढ़ीने जो पाप और बदकारीकी दुनिया मुझे दिखाई, उसके आगे अन्य देशोंकी बदचलनीकी कहानियां भी झूठी हो गयीं। यों बदचलनी कहां नहीं हैं? मगर जितनी इस अभागे देशमें हैं उतनी शायद ही कहीं हों। हम दूसरे

देशोंको पापका कलङ्क लगाते हैं। यह हमारा कोरा पक्ष-पात है, पाखण्ड है और ढोंग है। हम अपने ऐबोंको नहीं देखते।

यहां बूढ़े हो जाते हैं, मुंहमे दांत नहीं रहते, दूसरों-को सुनाकर लेकचर झाड़ते हैं, मगर खुद "मकरध्वज" और "शिलाजीत" खाते हैं। क्यो अगर स्त्रीकी हवस नहीं है तो इन दवाओंकी जरूरत क्या? दुनिया भरमें सबसे कमज़ोर सन्तान यहीं पैदा होती हैं, क्यों? सब देशोंसे ज्यादे कमजोरी इसी देशमे फैली हुई है, ऐसा क्यों? यहां गली गली गन्दी बीमारियोंकी दवाइयां बिकती हैं, क्यों? यहां एक नौजवान लड़की दो कदम भी सड़कोंपर अकेली जानेकी हिम्मत नहीं रखती, क्यों? यहां एक कमसिन और खूबसूरत लड़केको बिना नौकरके साथ स्कूल भेजते डर मालूम होता है, क्यों? बस इसीलिये कि हमारे देश-में आजकल सबसे ज्यादे पाप, अधर्म, भ्रष्टाचार और कुकर्म फैल रहे हैं!

हम दूसरे देशोंमें प्रेमी-प्रेमिकाओंको अकेले सैरगाहोंमें विहरते हुए देखकर कानोंपर हाथ धरते हैं और उस देश-के लोगोंको महा कुकर्मी कहने लगते हैं, कारण यही है कि हम खुद कुकर्मी मुल्कसे भ्रष्ट ख्यालोंको लेकर वहां जाते

हैं और अपने ही ऐसा दूसरों को भी झट समझने लग जाते हैं और उनके रस्मों-रिवाजों को दूसते हैं। इसलिये कि हम प्रेमकी क़द्र करना नहीं जानते। प्रेमके तत्वको हम नहीं समझते। जो हृदय प्रेमके मधुर रससे खूब तर होगा, उसमें शैतान आसानीसे पापकी चिनगारी लगा नहीं सकता। वे लोग अगर सौ बार भी आपसमें मिलें तो भी वे अधिकतर पाक-के-पाक ही रहेंगे, क्योंकि वहां तो प्रेमी-प्रेमिका अपने गुणोंसे एक दूसरेको मोहना चाहते हैं। कुमारियां अपने मनके अनुसार पति चुननेके लिये प्रेमी युवक ढूंढ़ती हैं और पुरुष औरतों में नेकचलन और वफ़ादार पत्नी चुनते और परखते हैं। फिर ऐसी दशामें लड़की कब अपने ऐबोंको ज़ाहिर होने देगी? वहाँ कबूतर और कबूतरीके मिलनकी तरह प्रेमी-प्रेमिकाओंका संयोग होता है। घण्टों लुभा-लुभाकर, नाच-नाकर, टोंट मिलाकर, यों प्रेम जताकर, अपने-अपने जिन्दगीभरके सगी छांटते हैं। और यहां मुर्गी-मुर्गेकी तरह मौका पाते ही नोच-खसोट! फिर मुर्गी कहीं और मुर्गा कहां! आखिर प्रकृति तो लगभग सब जगह एक-सी है? वह यहां अपना रास्ता निष्कण्टक पाकर उचित-अनुचित मार्गोंपर चला ही चाहे। नतीजा यह होता है कि हमारे ही हत्यारेपनसे

हमारा सामाजिक बन्धन गेहूंके साथ घून भी पीस देता है, ऊंचे-से-ऊंचे भावोंको भी गन्दी नालीमें ढकेल देता है, क्योंकि हमारे यहां प्रेम कोई चीज नहीं, प्रकृति कुछ नहीं, जो कुछ हैं वह समाजके नियम हैं, बन्धन हैं और वही कम्बख्त हमारा धर्म है! अगर इस बन्धन और नियमके दायरेके अन्दर स्त्री पुरुषमें प्रेम हो जाय तब तो उनकी किस्मत। वरना हमारे देशमे लाखों हृदय इस समाजके अत्याचारोंसे अशान्तिकी धधकती आगमें जल रहे हैं! और वे मौका पाते ही अपनी जलनको कम करनेके लिये गन्दे नाबदानोंमे कूद पड़ते हैं। प्रेमको जलील करके हवस-के दर्जेपर बटा देते हैं और यों कुकर्म फैलाते हैं! इस-लिये यहां स्त्री-पुरुषोंके क्षणभरके भी मिलनमें पापका ख्याल होता है, मगर वहां दस घण्टेकी मुलाकातमें भी नहीं।

यह तो अशान्त हृदयके दुराचारोंकी कथा है जिसका जिम्मेदार समाज है। दूसरे उन कमीनी बे-वफा दगाबाज छोकड़ियोंकी बात क्या, जो पैसोंपर जान देती हैं और सब जगह एक सी हैं। पारसाईका जामा पहने हैं मगर पापकी पुतली हैं, कामकी दीवानी हैं, ज़बानकी चटोरनी हैं, कहनेको गृहस्थ हैं, नामको प्रेमिका हैं, मगर अस-

असलियतमें वेश्याओंकी भी नानी हैं। जरा रास्तेमें टोकिये तो ये जबान खींच लें। मगर इनका तमाशा ज़रा बुढ़िया ऐसी दुकानदारिनोंके यहां देखिये। ये अदबदाकर शामको चिराग जलते ही, पान लेने या कोई और सौदा लेनेके लिये निकल पड़ती हैं। बुढ़ियाकी दूकानपर पहुंची नहीं कि बस इशारे हुए। इशारा पाते ही गलीमें घुस पड़ीं। पिछवाड़ेसे उस दूकानके भीतर आ गयीं! भीतर क्या है? शोहदोंकी टोली, शराब और कबाब! रबड़ी और मिठाइयोंके दोने हैं, बड़े आदमियोंके नौकर भी हैं जो उनको वहांसे छेड़ते-छाड़ते अपने मालिकोंके पास ले जाते हैं! और फिर वह पारसाकी पारसा! क्यों? इसीलिये कि "मुआ सौदा बेचनेवाला बड़ी देरमें सौदा देता है" मगर कोई यह नहीं जानता कि देर तो दोना चाटनेमें हुई!

मैं इस गन्दे विषयको विस्तारसे कहना नहीं चाहता। बस, इतना इशारा काफी है कि जहां बाजारमें आने-जानेवाली छोकड़ियोंको पान खानेका चस्का लगा तहां उनकी सारी पारसाई बिलकुल धोखेकी टट्टी हो जाती है। मेरी आत्मा ऊब रही थी। किसीको दो आने, किसीको चार आने दे-देकर मैंने विदा किया और घबड़ाकर उठ खड़ा हुआ। मनोहर हैरतमें आ गया। वह मुझे गौरसे देखकर

कहने लगा कि क्या तुम उसके इश्कमें इस कदर दीवाने हो गये हो, कि तुम्हें उसके सिवा कोई भी पसन्द नहीं आती ? मैंने मनोहरसे कहा, "तुमने मुझे पहचाना नहीं। चाहे इश्क हो या जो कुछ हो, मैं सिर्फ उससे दो बातें पूछना चाहता हूं। तुमने मुझे उससे मुलाकात करानेको कहा था। मगर तुम मुझे यहां क्यों ले आये ?" मनोहर बोला, "वह यहीं मिलेगी।" मैं झुंझलाकर बोल उठा, "तब तो मैं उससे हर्गिज न मिलूंगा। मैं नहीं जानता था कि वह ऐसी छिछोरी है !"

लेकिन मनोहर अपनी ज़िदपर अड़ा रहा। उसने उस बुढ़ियासे उसका हुलिया बताकर उसका पता पूछा। मगर मतलब न खुला। आखिरकार एक छोकरीने एक घरका ठिकाना बताया। मनोहर मुझे घसीटता हुआ उस तरफ ले चला। रास्तेमें एक आदमी और मिला ! वह पक्का उस्ताद था। अन्तको हम लोग उसी गलीमें पहुंचे जिसका पता उस छोकरीने बताया था। गली तंग थी। गलीके एक सिरेपर मैं और दूसरे सिरेपर मनोहर, राहियों-को देखनेके लिये खड़े हुए और तीसरा आदमी चारों ओर ताककर, दुलाई ओढ़कर, झट चारों हाथ-पांवके सहारे कुत्तेकी तरह चलकर घरमें घुस गया ! एक औरत घुत-

थुत (दुरदुर) करती हुई बाहर आई और अपने मर्दको गालियां देने लगी कि "निगोड़े! तेरी आंखें फूट जायं, तू चारपाईपर लेटा है, तुझसे इतना भी न हुआ कि कुत्ते-को भगा देता? अब मैं खाऊंगी क्या तेरा कलेजा? रोटी तो कुत्ता ले गया!" यह कहकर उसने दरवाज़ा बन्द करके बाहरसे जञ्जीर चढ़ा दी और यह बड़बड़ाती हुई बाहर निकल पड़ी कि "जब ऐसे अन्धे हो तो दरवाज़ा बन्द करके बैठो ताकि हमारी दाल न फिर चाट जाय, हम जाते हैं रहीमकी मांसे आटा मांगने!"

वह आते ही तीसरे आदमीसे बोली, "अभी नहीं, अभी जाओ।" यह त्रियाचरित्र देखकर मैं तो दंग रह गया। मगर मनोहर लपककर आया और मुझसे एक रुपया लेकर उसके हाथमें रख दिया और कहा कि "बड़ी बी, तुमसे तो कोई बहस नहीं (उस लड़कीका हुलिया बताकर) उससे हम लोगोंकी मुलाकात करा दो।" वह उसको जानती थी क्योंकि वह उसी महल्लेमें रहती थी। वह फौरन दौड़-धूप करके आई और बोली कि "फलाना मकान है, मैंने मर्दोंको बहानेसे टाल दिया है, बेखटके घरमें चले जाओ, खाली मां-बेटी हैं, और कोई नहीं।"

मैंने मनोहरसे कई बार कहा कि "ईश्वरके लिये मुझे

माफ करो, मुझे घर जाने दो, मैं उससे न मिलूंगा, बद-कारीकी दुनिया देखकर मेरी तबियत उससे ही नहीं बल्कि स्त्री-जातिसे हट गई। मैं नहीं जानता किसपर एतबार करूं और किसपर नहीं ?" मगर उसने एक न मानी। मेरा हाथ पकड़कर खींचता हुआ एक मकानके अन्दर ले ही गया। बाहर पहरेपर तीसरा आदमी खड़ा रहा।

आंगनमें आग जलाये वही लड़की और एक बुढ़िया बैठी हुई थी। लड़की मुझे देखते ही चह-चहाने लगी, मगर मेरे चेहरेकी हालत देखकर तुरन्त गम्भीर हो गयी। बुढ़ियाने बैठनेको कहा। मैंने कहा कि बैठूंगा नहीं, मेरे एक दोस्तको बावर्चीकी जरूरत है, उसीकी तलाशमें इधर आया था, किसीने तुम्हारा मकान बता दिया, अगर तुम्हारे यहां कोई बावर्चीका काम करना चाहे तो मेरे पास भेज देना, फलानी जगह मेरा मकान है।

इतना कहकर मैं वहांसे भागा और सीधे घर हीपर आकर दम लिया।

---

[८]

"अंधेरेमें वह आ लिपटे थे
पहले किसके धोखेमें।
कि जब आखिर तुझे देखा तो
शर्माकर कहा, तुम हो?"

कुकर्मी दुनिया मैंने आजतक देखी नहीं थी। इसलिये पहले-पहल इसकी लीलायें देखकर जो मेरे दिमागकी हालत हुई वह बयानसे वाहर है। उस लड़कीको मैं यों भी नहीं चाहता था। अगर कुछ चाहता भी था तो किसीके धोखेमें। मैं यह भी जानता-था कि यह प्रेम नहीं है, क्योंकि प्रेम होता तो रात-दिन उसका ख़याल सताता। मगर यह तो सिर्फ प्रेमका धोखा था जो उसे देखते ही पुरानी यादके साथ भड़क उठता था और ज्योंही वह आंखोंकी ओट होती थी, त्योंही वह आग ठण्ढी पड़ जाती थी। मगर अब तो हालत और ही हो गई। जब कभी उसकी याद आती थी तब दिल उससे नफरत करता था। उससे मिलने या वातचीत करनेको जी नहीं चाहता था, मगर उसे अब देखनेपर यही हालत रहेगी या नहीं. कह नहीं सकता था।

कभी मनोहरपर मुझे गुस्सा आता था कि कम्बख्त जान-बूझकर मुझे ऐसी जगह क्यों ले गया। अब उसे यहां आने न दूंगा। फिर कहता था कि खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ, बल्कि अच्छा ही हुआ। मुझे दुनियाका कुछ भीतरी रहस्य तो मालूम हुआ। मेरा ज्ञान और अनुभव बढ़ा। मेरी आंखोंपरसे धोखेका पर्दा उठा।

दूसरे दिन शामको मनोहर आया। आते ही मुझे बोदा, डरपोक, बुजदिल और नामर्द कहने लगा। वह इस बातपर जला हुआ था कि मैं उस मकानसे भागा क्यों। क्या इसीलिये उसने मेरे साथ इतनी मिहनत की थी? मैं चुप रहा। फिर उसने कहा—"तुमने दो बातें उससे पूछनेको कहा था, मगर पूछा क्यों नहीं?"

मैं—"एक बात पूछ चुका हूं, जिसका जवाब अभीतक नहीं मिला और दूसरी बात फिर पूछ लूंगा।"

मनोहर—"अब कब पूछोगे? आकबतमें? अब मिल चुकी तुम्हें वह।"

मैं—'मनोहर! तुमने खाली बदकारोंकी दुनिया देखी है। तुम नहीं जानते कि प्रेमकी मोहिनी दुनिया कैसी होती है। प्रेमकी दुनियामें जबान नहीं, आंख नहीं, कान नहीं। सिर्फ दिल ही बोलता है, देखता है, सुनता है,

समझता भी है। इसीलिये तुम नहीं समझ सके कि उससे मैंने क्या कहा।"

मनोहर—"आखिर मैं बहरा नहीं था जो न सुन सकता।"

मैं—"तुमने भी सुना, सबोंने सुना, उसने भी सुना। परन्तु यदि उसके दिलमें मुहब्बत नहीं है तो उसने भी तुम्हीं लोगोंकी तरह सुना होगा, वरन् वह समझ गयी होगी कि मैंने उसे बुलाया है।"

मनो०—"किस तरह?"

मैं—"अपने मकानका पता बताकर। मगर अब मैं पछता रहा हूं।"

इतने हीमें बैठकके बाहर चूड़ियां खनकीं और बाहर अन्धेरेमें कोई धीरे-धीरे जाता हुआ दिखाई पड़ा। मेरा दिल धड़कने लगा। एकाएक चञ्चलकी यादसे दिमाग खलबला उठा। नफरतका रङ्ग उड़ गया। मैं बाहर निकल आया। वह अन्धेरेमें जाता हुआ व्यक्ति ठिठक पड़ा। मैं आगे बढ़ा। पुरानी मुहब्बत हर कदमपर जोश मारने लगी। उसके तूफानमें मेरी अक्ल और समझ बौखला गयी। आप-ही-आप मेरी जबानसे निकल पड़ा—"अरी चञ्चल!" त्योंही वह भी बोल उठी—"अरे महमूद!"

फिर तो दोनों लिपट गये। महमूदका नाम मेरे कानोंमें अब गूंजा। मैं फिर चौंका। पूछा कि, "तुमने यह किसका नाम लिया?"

वह—'धोखेमें मेरी जबानसे निकल गया।"

मैं—"अरे! इधर भी धोखा, उधर भी धोखा! या ईश्वर! मामला क्या है?"

---

[९]

"किसीका हाय! वह रातोंके छिपके यों आना।
छड़े चढ़ाये हुए पायचे उठाये हुए॥"

इसी तरहसे वह कुछ दिनोंतक बराबर आई। सिर्फ आध घण्टेतक मेरे पास बैठकर चली जाती थी। मनोहर भी हमेशा मेरे साथ रहता था। जाते वक्त मैं उस लड़कीको रोज एक रुपया दिया करता था, क्योंकि मैं जानता था कि अबतक यह ओछी संगतिमें रही है, इसलिये जबानकी चटोरनी जरूर होगी। यह आदत इसकी छुटनी मुश्किल है। जिस दिन इसके पास पैसे न होंगे उस दिन अपनी चटोर जबानकी खातिर कहीं-न-कहीं अपनी नौजवानी मजबूरन बेचेगी। मगर वह बराबर चक्करमें रहती

थी कि मैं उसे रोज मुफ्त रुपये क्यों देता हूं। अकसर मनोहर भी मुझसे यही पूछा करता था, तो मैं कहता था कि 'ताकि दूसरोंमें और मुझमें इसे फर्क मालूम हो।"

मनोहर—"वह यही सोचती होगी कि अच्छा छप्पर फाड़कर आंखका अन्धा और गांठका पूरा मिला है।"

मैं—"यही तो मैं भी चाहता हूं कि वह जिन्दगीभर ऐसा ही समझे। वह भी जाने कि हां, जिन्दगीमें कोई मुझे मिला था।"

मनो०—"आखिर इस तरह कबतक दोगे?"

मैं—"जबतक वह नेकचलन रहेगी और जबतक उसे देखकर मेरी मुहब्बत भड़केगी।"

मनो०—"क्या तुम उसे नेकचलन समझते हो?"

मैं—"पहले न रही हो न सही, मगर अब तो है, क्योंकि प्रेम हर्गिज बदचलनी नहीं सिखाता बल्कि बद-चलनोंको भी नेकचलन बना देता है।"

मनो०—"मगर इससे फायदा? महज रुपये फेंकना है, और कुछ नहीं।"

मैं—"तुम्हारी निगाहोंमें हो तो हो, मगर उनको निगाहोंसे देखो, जो प्रेममें बिना किसी उम्मीदके जान दे देना भी कुछ नही समझते।"

इसी तरह मुझे वह रोज बुराईकी तरफ बहकाता था। ईश्वर जाने, क्यों? मेरी स्त्री इन बातोंसे बिलकुल बेखबर थी, क्योंकि उसे न तो मेरी परवाह थी और न मेरी बातों-की। मैं भी उसे सिर्फ गृहस्थी चलानेकी मशीन समझकर उससे और कुछ ज्यादेकी उम्मीद नहीं रखता था। इसलिये जब उस तरफ उम्मीद ही नहीं तब आशा-भङ्गकी छटपटाहट कैसी? एक साधारणभावहीन प्रीतिकी तरह मैं उससे मिलता था। वह इसीमें खुश थी। मैं भी खुश था, क्योंकि गृहस्थी की जिन्दगी घरमें कटती थी तो काव्यमय जीवन बाहर।

आवारोंकी दुनियामें उस लड़कीकी खूबसूरतीकी तूती बोल रही थी, सब जगह उसका नाम मशहूर हो गया। सब लोग उसके लिये कोशिशें करने लगे। मगर जब किसीकी दाल अब गलती नजर न आयी तब उनकी ना-कामयाबीका कारण मैं समझ गया। था भी ऐसा ही। इसलिये जो मुझे जानते भी न थे, वे इस सिलसिलेमे मुझे जान गये। इस तरह कुछ ही दिनोंमें मैं शहरका एक छटा हुआ आवारा मशहूर हो गया। कुछ मतलबी लोगों-ने हर जगह मुझपर ताना मारना शुरू किया ,कि बदनामी-के डरसे यह उस लड़कीको अपने पास आने :न दे, फिर तो माल यारोंका हई है।

आखिर एक दिन मनोहरने कहा कि "मैं कल न आऊंगा।" मैंने उस लड़कीसे कहा—"अच्छा, तुम भी न आना। मगर कलका रुपया आज ही ले लो।" मैंने इस-लिये उसे कल आनेसे मना किया कि अगर मेरे साथ मनोहर न होगा तो मुमकिन है मेरे घरकी औरतें बैठकमें चली आवें और मुझे उसके साथ अकेले देख लें तो कुछ-का कुछ समझें और आसमान सरपर उठाने लगें।

मगर दूसरे दिन अंधेरा होनेपर मनोहर दौड़ता हुआ आया। कहने लगा कि जल्दी मेरे साथ चलो। यह कह-कर मुझे उस कुटनी पानवालीकी दूकानपर ले जाकर दूरसे उसने दिखाया कि वह लड़की पान खरीद रही है। बस, मेरे तो सरसे पैरतक आग लग गयी। मैं फौरन लौट पड़ा। जैसे ही वह दूसरे दिन अपने वक्तपर मेरे यहां आई वैसे ही मैंने उसे कसकसके दो तमाचे मारे और कहा कि "निकल जा यहांसे कमीनी कुत्ती! आखिर कमीनी-की-कमीनी ही तो! खबरदार! फिर कभी अपना मुंह मत दिखाना!" इस तरह उसे निकाल बाहर किया।

---

[१०]

"क्रूर कुरकुट काटि कोठरी निवारि राखौं चुनि दै चिरैयनको मूंदि राखौं जलियों। सारंगम सारंग सुनाय कै "प्रवान" वीना सारंग दै सारंगको जोगि करौं थलियों। तारा-पति तुमसों कहत करजोर जोरि भोर मति करियो ओ सरोज मुद् कलियों। मोहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय एहा चन्द आजु नेकु मन्द गति चलियों।"

उसने कई दफे मुझसे मिलनेकी कोशिश की, मगर मैं ऐसा जला हुआ था कि उसे हर बार निकालता ही रहा। एक दिन सुबहको मेरे मकानके सामनेसे वह निकली और मुझे देखते ही बेधड़क बैठकमें चली आई। मैंने एक रुपया निकालकर फेंक दिया और कहा—"भाग यहांसे।" उसने रुपया लौटाल दिया। फिर हाथ जोड़कर बोली—"मैं रुपया नहीं चाहती बाबूजी! मुझे तुम खाली पहलेकी तरह आने दिया करो। मैं आजसे एक पैसा भी तुमसे न लूंगी।"

मैं—"हर्गिज नहीं, चली जा यहांसे।"

वह—"न जाऊंगी, चाहे मार डालो।"

यह कहकर रोने लगी। मैंने पूछा—"तू चाहती क्या है?" बोली कि "कुछ नहीं।"

मैं—"फिर खड़ी क्यों है? जाती क्यों नहीं? मुझे घरके भीतर भी बदनाम करेगी क्या?"

वह—"यहीं मर जाऊंगी, मगर जाऊंगी नहीं।"

मैं—"ईश्वरके लिये इस वक्त चली जा; फिर कभी आना।"

वह—"अच्छा मगर बाबूजी, तुम्हें धोखा दिया गया है। और मुझे भी धोखा दिया गया है। यह सब चालबाजी मनोहरकी है।"

फिर कई दिनतक वह दिखाई न पड़ी, मगर एक अजीब बात देखकर मैं रोज चकराता था। वह यह कि बैठकके किवाड़ रातको मैं खुद बन्द करता था। मगर सुबहको तीन दिनतक लगातार मुझे एक किवाड़की सिटकिनी खुली हुई मिलती थी। मैं समझता था कि मेरी नौकरनीकी छोकड़ी रातको इधरसे बाहर जाती है और लौटते वक्त सिकड़ी नहीं चढ़ा पाती। इसलिये चौथी रातको जब मेरी स्त्री मेरे पाससे अपने कमरेमें सोने चली गयी तब मैं बैठक हीमें उपन्यास उठाकर पढ़ने लगा ताकि जगा रहूं और उसको पकड़ूं।

ठीक बारह बजे थे। मेरे घरवाले सब बेखबर सो रहे थे। मेरी आंखोंमें भी नींद मालूम होने लगी। मैंने लालटेन बुझाना चाहा। तबतक सिरहानेकी ओरसे किसी-ने कहा—"बस पढ़ चुके!"

मैं—"कौन? अरे! तू है? इस वक्त कैसे आई? किधरसे आई?"

वह—"मैं चार दिनसे बराबर शामको आती थी। आंख बचाकर तुम्हारे कमरेमें घुस आती थी। मेज़के नीचे छिपी रहती थी। कभी तुम्हारे कमरेमें मनोहर आकर बैठे रहते थे, कभी कोई और आदमी। उसके बाद तुम भीतर चले जाते थे और फिर इधर नहीं आते थे। इसीलिये सुबह होते ही मैं यहांसे चली जाती थी। आज भाग्यसे तुम मुझे अकेले मिले।"

मैं—"अरी कम्बख्त! तेरे घरवाले क्या कहते होंगे?"

वह—"मुझे किसीकी परवाह नहीं। दूसरे मैं घरपर कह आती थी कि मैं अपनी नानीके घर जाती हूं।"

मैं—"तुझे इस तरह आनेकी जरूरत ही क्या थी?"

वह—"मैं तुमसे अकेलेमें मिलना चाहती थी। आज-तक तुमसे अकेले मुलाकात नहीं हुई और दूसरे, तुम्हें तुम्हारे सब रुपये वापस कर देना चाहती थी, ताकि तुम्हें

यह अच्छी तरह मालूम हो जाय कि मैं रुपयेके लालचसे तुम्हारे पास नहीं आती थी। यह लो, अपने रुपये।"

मैं—"देकर मैं कोई चीज वापस नहीं लेता। ये रुपये तुम्हारे हैं। अगर और चाहिये तो बोलो।"

वह—(मेरे कदमोंपर गिरकर रोती हुई) "नहीं बाबूजी, बस, अब दया करो। मैं बड़ी पापिनी थी। मैंने अपनी नौजवानी सैकड़ों जगह बेंची; मगर मुझे जिन्दगीभरमें इतने रुपये कहीं नहीं मिले। किसीने रांगेका रुपया दिया तो किसीने पारा चढ़ाया हुआ पैसा! और उसके बदलेमें जैसे-जैसे हत्यारेपनका सलूक किये गये हैं वह दिल ही जानता है। एक तुम हो कि मुफ्त इतने रुपये दिये और उसपर यह सलूक! मैं जिन्दगीभर भूल ही नहीं सकती। और इसी सलूकने मुझे पापसे अब उबारा है, सच्ची मुहब्बतका रास्ता दिखाया है। अगर तुम मुझे न मिलते तो मेरी किस्मतमें एक दिन चकलेकी रण्डी होना बदा था। मगर तुमने मेरी किस्मत सुधार दी। तुमने मुझे नेकचलनी की तरफ झुकाया। आजसे मैं कसम खाकर कहती हूं कि घरसे बाहर कभी कदम न रखूंगी। अब तुम किसी पापीके मुहसे मेरा नाम न सुनोगे। मेरी मांने मुझे मेरे मर्दसे लड़ाकर अलग किया, ताकि मैं अपनी नौजवानीको

शौकीनोंके हाथ बेचा करूं। खूब रुपये पैदा करूं। और जब मेरी जवानीका खोखाला निकल जाय और जब कोई बात पूछनेवाला भी नजर न आये तब मैं अपने खसमके गले पड़ूं, जैसा कि तमाम बाजारू छोकड़ियोंका हाल है। बाबू तुम मुझे चाहते हो और ऐसा चाहते हो जैसा किसी-ने मुझे आजतक नहीं चाहा है। तुम कहो या न कहो, मगर यह बात आजसे दो साल कबल ही मैंने तुम्हारी पहली ही निगाह देखकर भांप ली थी। इसलिये मैं खार-कर तुमसे अकेले मिलने आयी हूं। मैं तुम्हारी लौंडी हूं। जितने अरमान चाहो सब निकाल लो।"

मैं—"मेरे अरमान आज तुम्हारी बातोंमें पूरे हो गये, अब कोई हौसला बाकी नहीं रह गया, मगर यह बताओ, क्या महमूद तुमको नहीं चाहता था?"

वह –(रोती हुई) "हाय! तुमने किसका नाम लिया! वह पापी था, हत्यारा था, मैं उसे बहुत चाहती थी, उस-पर जान देती थी, मगर वह दगाबाज मुहब्बतका नाम भी नहीं जानता था! उसने अपना मतलब निकाला, अपनी हवस पूरी की, फिर मुझे ठुकराकर दुतकार दिया। मैं इसीको पहले मुहब्बत समझती थी। मगर वह खयाल झूठा था। मुहब्बत किसे कहते हैं वह तुमने सिखाया।

मैं उसके पीछे ऐसी दीवानी थी कि तुम्हारी मुहब्बतकी नजरपर धोखा खा गयी और तुम्हींको महमूदके धोखेमें प्यार करने लगी, और तुमपर बुरी तरह मरने लगी। गैरों-से मिलती थी, पर तुम नहीं भूलते थे और जबसे तुम मिल गये, तबसे मैंने किसीका मुंह नहीं देखा और न अब देखूंगी। अपने मर्दके पास रहूंगी और जन्मभर तुम्हारा नाम जपूंगी। उस दिन पानवालीकी दूकानपर मुझे मनोहर यह कहकर ले गये थे कि बाबूजीने तुमको वहीं बुलाया है; क्योंकि घरपर खुलकर मिल नहीं सकते। मैं नहीं जानती थी कि वह मुझे धोखा दे रहा है, अपने मत-लबके लिये मुझे तुमसे छुड़ा रहा है। मगर अब मैं किसीके फन्देमें आनेवाली नहीं हूं। मैं तीन रातकी जगी हूं। चलो, पलंगपर मुझे कुछ देर तो लेटा लो। एक दफे भी मुझे प्यारसे गले लगा लो। मेरा भी दिल साफ है। गो नीयत बुरी लेकर जरूर आई थी, मगर अब खयाल पाक है। यह तुम्हारी बदौलत, सच्ची मुहब्बतकी बदौलत!"

धन्य है प्रेम! तेरी बलिहारी है। तूने आज एक कमीनी छोकड़ीको भी शरीफ बना दिया जो तमाम उमर पापकी गन्दगीमें पली, उसके दिलमें भी ऐसे उत्तम भाव पैदा कर दिये!

मैं—"पलंगपर साथ सोनेका तो उसीका हक है जिसकी मांगमें मैंने सिन्दूर किया है। यों आओ तुम्हारे साथ 'कोच' पर बैठ जाऊँ। तुम सो जाओ, मैं जगा रहूंगा, पौ फटते ही तुम्हें उठा दूंगा।"

वह—"जहां चाहो वहां बैठाओ, मगर अपने पहलूसे अलग न करो।"

मैं—"आज कैसी-कैसी बातें बक रही है! ऐसी बात तो औरतोंके जबानसे निकल नहीं सकतीं।"

वह—"बेशक, क्योंकि मेरी तरह कोई कम्बख्त दीवानी हो नहीं सकती।"

मैं—"अगर तेरा मर्द इस तरहसे आधी रातमें तुम्हें बैठी हुई देख ले तो?"

वह—'मेरे सरको धड़से जुदा कर देगा; मगर मेरे दिलको तुमसे जुदा नहीं कर सकता।"

मैं—"मगर तू तो पराई औरत है, तेरा दिल पराया है, उसे तू मुझे किस तरह दे सकती है? भला तू देनेवाली होती कौन है?"

वह गृहस्थोंके दिल भी तो अपने बाल-बच्चे और बीबीके लिये हैं। फिर वे लोग ऐसे दिलको अकसर खुदाके हवाले क्यों सौंप देते हैं?"

यह जवाब सुनकर मैं दङ्ग हो गया। क्या सच्ची मुहब्बतमें इतनी ताकत है कि एक बेवकूफ और अपढ़ और आवारा लड़कीको समझ और सूझको इतनी बारीक कर दे? वह फिर बोली—"अच्छा, तुम्हारी बीवी देख ले तो क्या हो?" इस सवालको सुनते ही मैं यकायक चौंक पड़ा। न जाने क्यों मेरी नजर भीतरके दरवाजेकी तरफ फिर गई। देखा कि सचमुच मेरी स्त्री दोनों आंखें फाड़े मुझे देख रही है। आंखें मिलते ही वह धड़ाकसे दरवाजा बन्द करके चली गयी।

काटो तो अब बदनमें लहू नहीं। पैरके नीचेसे यका-यक जमीन निकल गई। मैं पसीने पसीने हो गया। बेजान मूर्तिकी तरह मैं पश्चात्तापमें सर झुकाए खड़ा रहा। जब जरा होश आया तो देखा कि बैठकका बाहरका दरवाजा खुला है और बैठकवाली लड़कीका कहीं पता नहीं है। मैंने किसी तरह अपने कांपते हुए हाथोंसे बाहरका दरवाजा बन्द किया और डरते-डरते स्त्रीके कमरेमें गया।

मेरी स्त्री जमीनपर पड़ी हुई सिसक रही थी। उसके ठंढे, लापरवाह और भावहीन हृदयमें डाहने ऐसी आग लगा दी कि वह उसकी आंचको सह न सकी। वह आपेसे बाहर हो रही थी। बुरी तरह तड़प रही थी। रह-रह

कर अपना सर धुन रही थी। मैं शर्म, डर और पश्चा-तापसे मर ही रहा था। उसपर उसकी छटपटाहटने मुझे और भी तड़पा दिया। उसकी यह बेकली मुझसे देखी न गई। करुणासे मेरा जी भर आया। मैंने लपक-कर उसे गोदमें उठाना चाहा। वह मेरे पैरोंसे लिपट गई और बिलख-बिलखकर रोने लगी। मैंने झटसे उसे हृदयसे लगा लिया। वह भी मेरे गलेसे लिपट गयी। फिर तो दोनों सोते हुए दिल, जिन्हें भाग्यने एक दूसरेके लिये एकदम मुर्दा बना रखा था और जो किसी उपायसे जरा भी कुनमुना न सके थे, इस डाह और करुणासे चौंक-कर आपसमें मिल गये। हम लोग भी उनके इस मिलन-की खुशियालीमें गलबहियां डाले रातभर रंगरेलियां मनाते रहे। एक-दूसरेको प्यार करते रहे। वही मेरी असली सुहाग रात थी और वही हम दोनोंकी पहली रात थी जब—

"दोऊ दुहूं पहिरावत चूनरी
दोऊ दुहूं सिर बांधत पाग॥
दोऊ दुहूंके संवारत अंग,
गरे लगि, दोऊ दुहूं अनुरागै॥

'शम्भु' सनेह समोय रहे
रस ख्यालनमें सिगरो निसि जागैं ॥
दोऊ दुहूनसों मान करैं
पुनी दोऊ दुहून मनावन लागैं ॥"

* प्रथम भाग समाप्त *

गंगा-जमनी

तीसरा खण्ड

युवक-प्रेम

पन्ना

[१]

अमीर इस आशिक़ीका
लुत्फ़ है फ़स्ले जवानीमें ।
अँधेरी रातमें कहनेके
क़ाबिल यह कहानी है ॥

सालभर पहिले मैंने जिस समस्याको हल करनेकी कोशिश की थी वही समस्या आज कल फिर मेरे विचारोंको परेशान कर रही है। उस वक्त मैं अपनी एक पूर्व प्रेमिकाकी धुनमें प्रेम-रसका एक उपन्यास लिख रहा था। उसका नायक मेरी ही तरह एक अनुभवी और भ्रान्तचित्त व्यक्ति था। ब्याहा हुआ होनेपर भी वह एक

छोटी जातिकी लड़कीपर मरता था। वह उसके प्रेममें ऐसा पागल हो रहा था कि अपनी मान-मर्यादाको भाड़में झोंकता हुआ वह एक दिन उस लड़कीके पैरोंपर गिर पड़ा। बस, यहींपर मेरी लेखनी चौखलाकर अड़ गई और ऐसी अड़ी कि न उसपर कल्पनाओंका ज़ोर चला और न विचारोंका। कारण? मैं आजतक किसी स्त्रीके पैरोंपर गिरा न था। अनेक बार प्रेम-बन्धनमें फँस चुका था, दिलको चूर-चूर कर चुका था, अपनी बुद्धि और समझपर झाड़ू फेर चुका था, तौभी कभी इतना ज्ञानहीन न हुआ कि अपने उपन्यासके नायककी तरह अपने घमण्ड और प्रतिष्ठाका यों अनादर करता। इसीलिये मैं जानता ही न था कि ऐसे अवसरपर प्रेमिकाके हृदयमें कैसे-कैसे भाव उत्पन्न होंगे और उनका प्रदर्शन वह किन रूपोंमें करेगी।

इसी समस्यामें मेरी कल्पना चकराई हुई थी। जब किसी तरह इसको हल न कर सका तब काव्य, नाटक, उपन्यास, गल्पोंमें मैं इन भावोंको ढूंढ़ने लगा, परन्तु इसमें भी मुझे सफलता प्राप्त नहीं हुई। क्योंकि भाव मिले भी तो उनमें स्वाभाविकता न थी। अंग्रेजी ग्रन्थोंमें स्वाभाविकता थी भी तो लज्जाकी मात्रा इतनी न थी जितनी हमारी देशकी रमणियोंके रोयें-रोयेंमें हमारे सामाजिक

नियमोंने कूट-कूटकर भर रखी हैं। इसलिये इन सहायताओंसे मुझे संतोष न हुआ। तब उस समय हताश होकर मैंने उपन्यासको अधूरा ही छोड़ दिया था। वह अबतक मासिक पत्रमें क्रमशः प्रकाशित होता चला आया, मगर अब उसीको पूरा करनेके लिये सम्पादकजीके आदेशानुसार लेखनीको उसी तरफ फिर जोर मारना पड़ा। इसलिये विवश होकर फिर उसी समस्याको हल करनेमें लगा हूं, मगर हल नहीं कर पाता। पहले लेखनी इस जगह केवल अड़ती ही थी, मगर अब अड़नेकी कौन कहे बुरी तरह पिछड़ रही है। क्योंकि अब जो मैं अपने ऊपर विचार करता हूं तो पहलेसे अब मुझमें आकाश-पातालका अन्तर जान पड़ता है।

जिस समय मैं उस उपन्यासको लिख रहा था, मेरा हृदय निराशासे विदीर्ण होनेपर भी उसका हर टुकड़ा भावोंसे भरा हुआ था। दुर्भाग्य और हत्यारे समाजने मिलकर मेरी प्रेमिकाको मुझसे छीन तो लिया था, मगर ये हमारे हृदय-पटलसे उसकी मोहिनी मूर्त्ति नहीं मिटा सके थे। लेकिन अब तो न वह मूर्त्ति है, न प्रेम है, न भाव है। लेखनी उठाऊं तो किस विरतेपर? चित्र खींचूं तो किसका? और भाव दिखाऊं तो किसके? तो अब क्या करूं?

किस तरह अपने अधूरे उपन्यासको पूरा करूं ? अगर मैं इस समस्याको साफ उड़ा दूं, तोभी इस कहानीका भाव बदल नहीं सकता; क्योंकि आधी छप चुकी है। उधर उसी रूपमें आगे लिखनेके लिये दिलमें वह जोश ही नहीं है तो फिर क्या किसी सुन्दरीके पैरोंपर गिरूं ? और उसके भाव देखूं ? यह मुझसे हो नहीं सकता, क्योंकि प्रेममें जब मैं स्त्री-जातिको देवी समझता था, तब तो यह घमंडी सर किसीके आगे झुका ही नहीं, अब भला दिल्लगीमें भी कभी उनके आगे झुक सकता है ? भूलकर भी नहीं, धोखेमें भी नहीं, स्वप्नमें भी नहीं।

[२]

"कुछ वही समझेगा दिलके

साथ सोजे गमका साज।

जिसने देखा है किसी

बेकसका घर जलता हुआ॥"

मैं स्त्री-जातिको दिलमें पूजता जरूर था, मगर मैं इस भावको उनके सामने प्रकट करनेके लिये उनके चरणोंपर कभी न गिर सका। गिर सका तो केवल अपने मानकी रक्षा

के ख्यालमें या यह भी कहा जा सकता है कि कुमारयकी बाधाओंने मेरे प्रेमको उस दर्जेतक पहुंचने न दिया हो जिस में प्रेमी अपने आपेको एकदम भूल जाता है। अथवा मुझे प्रेमिकाएं मिलीं तो सही, मगर अबतक कोई ऐसी आदर्श प्रेमिका न मिली कि मिलनेके समय जिसके पैरोंपर गिरनेके सिवा उसे गले लगानेतककी हिम्मत न पड़ती और अगर हिम्मत पड़ती भी, तो तभी, जब वह मुझे अपने चरणोंपरसे उठाकर स्वयं मेरे हृदयसे लग जाती।

अस्तु, चाहे अपने प्रेमकी या अपनी प्रेमिकाओंकी अयोग्यताके कारण स्त्री-जातिको इतना बड़ा सम्मान न दे सका, तौभी मैं उसे आदरकी दृष्टिसे देख चुका था। उसको मैं जानसे भी प्यारी समझ चुका था। उसके इशारे पर प्राणतक न्योछावर कर चुका था। उसके पानेकी लालसाको दुनियांको बादशाहतकी अभिलाषासे बढ़कर मान चुका था, तथापि अब मैं उन भावोंसे ऐसा अपरिचित-सा हो गया हूं कि वे मुझे एक भूला हुआ स्वप्न मालूम पड़ते हैं, कोशिश करनेसे भी ठीक तरह याद नहीं आते और याद भी आते हैं, तो लेखनीकी भड़क दूर करनेके बदले मेरी कल्पना हीको भड़काकर सौ कदम दूर भगा देते हैं। जिस तरह कोई उम्दा-उम्दा पकवानोंसे अपना भंडार

भरे रक्खे हों, फिर मुद्दतोंके बाद उसको खोले और उन पक्‍-वानोंको, जिनपर कभी उसकी राल टपकती थी, एकदम सड़ा हुआ पाकर घृणासे मुंह फेर ले, बस, वही हाल अब मेरा पुराने भावोंको देखकर हो रहा है। यहांतक कि अब मुझे यह कहते हुए भी लज्जा मालूम होती है कि ये ख्यालात मेरे ही थे। फिर इन बासी सामानोंसे भी किस तरह पाठकोंका सत्कार करूं, जब अपना ही हृदय उन्हें स्वीकार नहीं करता? बहुतसे लेखकोंने बिना भावोंको अनुभव किये हुए भी सैकड़ों पुस्तकें रच डाली होंगी। मगर मैं अपनेको क्या कहूं, जो सदा भावोंहीमें डूबा रहता था, तो-भी अपने उपन्यासको किसी तरह निबाहकर समाप्त करने-के लिये एक भी शब्द नहीं लिख पाता।

"कट चुकी गर्दन रगें लेकिन लहू देती नहीं।
ऐ हिनाई दस्ते कातिल खून मेरा क्या हुआ।"

आखिर मुझमें इतना परिवर्तन हो गया? मेरे भावोंका अभाव क्योंकर हुआ? स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा मेरी आंखोंसे कैसे गिर गई? जब मैं इन बातोंको सोचता हूं तो घूम-घुमाकर स्त्री-जातिको ही दोषी पाता हूं। क्योंकि प्रकृति और प्रेमने तो मुझे उनका आदर करना सिखाया ही था, मगर उन्होंने खुद ही अपनी इज्जत खाकमें मिला दी। जिस तरह घी

पानीमें पड़कर भी उससे अलग रहता है वैसे ही प्रेमि-काओंसे मिलते समय भी प्रेम मुझे उनसे अदबकी दूरीपर रखता था। इसीलिये तब मुझे स्त्रियां देवी-सी जान पड़ती थी, क्योंकि 'दूरके ढोल सुहावने होते हैं।' चिरागकी लौ भी अलगसे बड़ी प्यारी मालूम होती है। पतंग तो पतंग ही हैं, अकसर आदमीके बच्चे भी उस लौको पकड़नेके लिये प्यारसे हाथ बढ़ाते हैं। मगर जब उंगली जल जाती है तब उस बच्चेको उसकी असलियत मालूम होती है और वह चिल्लाकर उससे भागता है बेचारे पतंगको भी अपनी प्यारीकी दानवी प्रकृतिकी खबर जभी होती है जब वह भस्म होकर राख हो जाता है। इसी तरह मेरे प्रेमके पौधे-को निराशा, कुभाग्य, और समयकी लूने मुरझा दिया था सही, मगर वे ऐसा जलाकर खाक न कर सके थे, जैसा ओ स्त्री जाति, तूने मुझसे मिलकर अपनी खोटी प्रकृतिसे उसे एकदम खाक कर डाला। और उसीके साथ अपनी मान मर्यादा, प्रतिष्ठा आदिको भी भाड़में झोक दिया।

कहते हैं, अमृत और विष, एक ही समयमें, एक ही जगह, एक ही कारणसे पैदा हुए हैं। त बइन दोनोंका कहीं, कभी एक साथ पाया जाना कुछ असम्भव नहीं है। ये दोनों सगे भाई, एक दूसरेके जानी दुश्मन, अगर किसी जगह

परस्पर मिलकर एक होते हैं तो अय स्त्री-जाति! तुझमें। तभी तो तू देखनेमें ज्योतिस्वरूप है तो छूनेमें अग्नितुल्य! रूपमें देवी तो प्रकृतिमें दानवी! स्वादमें अमृत तो तासीरमें हलाहल विष!

फिर विषको विष जानकर उसे अमृत कहनेके लिये अब अपने हृदयके साथ कैसे दगाबाजी करूं? अपने उपन्यास-की नायिकाका देवी-समान चरित्र खींचकर अब किस तरह अपने भोले-भाले पाठकोंको धोखा दूं, जब कि मैं उसकी जातिकी असलियत जान चुका हूं, खूब पहचान चुका हूं, जिसकी सचाई झुठाईमें है, वफादारी बेवफाईमें है और प्रेम विश्वासघात और स्वार्थमें है?

एक तो पुरानी समस्या थी ही, अब उसपर यह नई अड़चन और पड़ गई। उसे सुलझाऊं या इसे हल करूं? अपनी अधूरी पुस्तकको देखूं, या अपने हृदयकी गतिको देखूं? क्या देखूं क्या न देखूं? सम्पादकजी, तुमने तो अजीब घपलेमें जान कर दी।

[३]

"दिलमें ज़ौक़े वस्ल व यादे

यार तक बाकी नहीं।

आग इस घरमें लगी ऐसी

कि जो था जल गया ॥"

ज्यों-ज्यों मैं इस अड़चनको सुलझानेकी कोशिश कर रहा हूं, त्यों-त्यों मुझे मेरी पिछली बातें एक-एक करके याद आ रही हैं। और जब मैं उनपर विचार करता हूं तो इस बातमें मैं अपनेको बिल्कुल निराला पाता हूं कि हर साधारण हृदयमें प्रेमका पौधा जिन्दगीभरमें एक बार या अधिक-से-अधिक दो बार फल फूल सकता है (और बहुत तो कुछ ऐसी मिट्टीके बने होते हैं कि उनमें कभी प्रेमका अंकुर ही नहीं उगता), मगर मैं अपनेको क्या कहूं ?

"सम्हाला होश तो मरने लगे हसीनोंपर।
हमें तो मौत ही आई शबाबके बदले ॥"

यह भी एक बार नहीं बल्कि अनेक बार। केलेका एक दफासे दो दफे फलना अवश्य ही आश्चर्यकी बात है, मगर मेरे प्रेमपौधेका बार-बार फलना फूलना कोई अचरजकी बात न थी। क्योंकि जो जमीन सालभरमें एक ही फसल दे सकती हो उसकी इस शक्तिको मनुष्य अपने परिश्रम और कला-कौशल द्वारा बढ़ा सकता है। बेचारे साहित्यिक लेखक और कवियोंके हृदयोंमें तो भावोंके हल दिन-

रात चला करते हैं। मिट्टी वही, मगर एक बिना गुड़ी हुई, और दूसरी खूब अच्छी तरहसे जोती हुई, दोनोंमें बीज डालिये और दोनोंमें भेद देखिये। एक परतीकी परती ही रह जाती है, लेकिन दूसरी कुछ और ही रंग लाती है, उमंगकी मस्तीमें लहलहा उठती है, और एक-एक फेंके हुए दानेके बदले छाती फाड़कर हजारों दाने देनेको तैयार हो जाती है। इसी तरह एक तिरछी-सी मीठी चितवन, या मिहरबानीकी एक शर्मीली निगाह, या कांपती हुई हल्की-सी आवाज, या शोखीकी झलक, या भोलेपनका रंग, या नखरेका ढंग जो साधारण हृदयोंके लिये कोरी दिल्लगी या बेअसर दिल-बहलाव हों तो हों, मगर अनुभवी हृदयों-के लिये तो जानके गाहक बन जाते हैं। यही कारण था कि प्रेम मेरे सरपर सदैव डण्डा लिये सवार रहता था। जहां दूसरा कोई इस फन्देमें आसानीसे नहीं पड़ सकता था, वहां मैं लाख होशियार रहनेपर भी इसके बन्धनमें अद-बदाकर बन्ध जाता था। अगर दुर्भाग्य और निराशाकी कुल्हाड़ियां उन पुष्प-बन्धनोंको हर बार बेदर्दीसे काट न दिया करतीं तो मेरी भी जीवनी शायद एक ही बन्धनमें बड़े आनन्दसे समाप्त होती। मगर माली जिस पौधेको जितना ही छांटता है, वह पौधा उसके बाद उतना ही दूने

उत्साहसे और बढ़ता है। क्योंकि प्रकृतिके नियम मानुषी बाधाओंसे टूटनेके बदले और भी अधिक दृढ़ हो जाते हैं। तभी तो समाजकी विघ्न-बाधाओंसे मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता था सही, परन्तु फिर प्रेम करनेसे कम्बख्त बाज नहीं आता था। यही कारण है कि साधारण हृदयोंमें चेचकके टीकेकी तरह मुहब्बतके एक या दो दाग हों तो हों, मगर अनुभवी हृदयोंमें, बछियाके थनमें लगाए हुए टीकोंकी तरह यह अनगिनती होते हैं, जिनसे संसारको टीका लगानेके लिये सत निकाला जाता है।

यद्यपि मैं मुहब्बत करनेके सामानसे खूब और पहिले-से भी अधिक घिरा हुआ हूं तथापि अब मेरे हृदयमें प्रेमका पौधा नहीं पनपता। आखिर क्यों? इसीको मैं ढूंढ़ रहा हूं, ताकि कुछ देरके लिये इस कारणको दूर करके फिर अपने दिलमें पुराने भाव ऐसे कुछ भाव पैदा कर सकूं और यों अपने अधूरे उपन्यासको उसी रंगमें लिख डालूं।

पहिले जब-जब मैं प्रेममें मग्न रहता था, तब-तब मेरे लिये मेरी प्रेमिका ही कुल स्त्री-जाति थी। उसके सिवाय कोई सुन्दरी मुझे सुन्दरी नहीं मालूम होती थी। मगर अब हर स्त्रीको मैं स्त्रीके रूपमें देख रहा हूं। हरेककी सुन्दरता और नव-जवानीका भेद मुझे अच्छी तरह सुझाई दे रहा

है। यह अच्छी है वह बांकी, यह चञ्चल है वह भोली, इस तरहके ख्यालात मेरे दिलमें उठते जरूर हैं तौभी मैं इन सबको उस आदर-सम्मान, भक्ति और प्रेमकी दृष्टिसे नहीं देखता, जिससे अपनी प्रेमिकाओंको देखा करता था। इनको आंखोंके सामने पाकर अब मैं इन्हें उसी तरह देखता हूं, जैसे कस्साई बकरेको देखता है, शिकारी शिकारको ताकता है, या चोर पराई दौलतपर निगाह डालता है। क्योंकि अब मुझे मालूम हो गया कि बकरा पालनेके लिये नहीं होता बल्कि खानेके लिये, रुपया गाड़नेके लिये नहीं होता बल्कि खर्च करनेके लिये, फूल देखनेके लिये नहीं होता बल्कि सूंघनेके लिये, उसी तरहसे सुन्दरियां भी पूजनेके लिये नहीं होतीं, बल्कि कुवासनाकी भाड़में झोंक देनेके लिये बनी हैं। यह बात मैंने कब जानी, जब मेरा चरित्र-सुधारक प्रेम, ऐ स्त्री-जाति, तेरी संगतिमें मुझे अकेला छोड़ गया, और अपने साथ वह अदबका परदा भी लेता गया, जो मेरे और तेरे बीचमें मिलनके समय सदा पड़ा रहता था। उसके उठ जानेसे तुझे अच्छी तरहसे देखा। तेरी असलियत जानी। तेरी नीयत पहचानी। हाय! तेरी दानवी प्रकृतिका पता भी मैंने तभी पाया, जब मैं अपना चरित्र खो बैठा। इसीलिये अब मैं तुझे प्रेमकी

आंखोंसे नहीं, बल्कि 'शिवराज' कविकी आंखोंसे देखता हूं, जिन्होंने तेरे चाण्डाल हृदयकी पोल यों खोली है।

"जेते सब तवरुर वरल विलोकियत,
बाटिका विटप लता जेते सुखकारी हैं।
करते दई जो दया करिकं हमारे हेत;
रचना नवीन करौं विनय पुकारी है॥
मेटवी हिएको ताप लपटि लपटि आप,
कौं 'शिवराज' सखी सपथ तिहारी है।
धरते पुरुष जे निकरते सुमन सब,
होती तो सफल मनकामना हमारी है॥"

[४]

"Give me that man
That is not passion's slave and I will wear him
In my heart s core, ay in my heart of hearts"
Shakespear.

मैंने अपना चरित्र कैसे खोया? वैसे ही जैसे और लोग खो बैठते हैं। क्योंकि जवानी, स्वतन्त्रता, दौलत और बुरी संगत इनमेंसे हरेक आदमीको पापकी खाईमें ढकेलनेके लिये काफी हैं। मगर इन सभोंकी गुरुघन्टाल जवानी है। इसलिये कि और सब तो वशमें की जा सकती हैं, मगर यह नहीं। काम-वेगको रोकनेके लिये न ज्ञान, न धर्म, न उपदेश

और न किसी पहरेका जोर चलता है। अगर दुनियामें कोई भी चीज इसको नीचा दिखानेके लिये है तो सिर्फ प्रेम ही है। जिस तरहसे बिना अन्नके एक दिन भी काटना मुश्किल हो जाता है। मगर जबतक बुखार रहता है तबतक महीनों नहीं, चाहे सारी उमर ही क्यों न बीत जाय, कभी खुलके भूख नहीं लगती। ऐसी ही हालत प्रेम-रोगमें कामक्षुधाकी हो जाती है। तभी तो "Cupid" अबोध बालक ही माना जाता है। बड़े-बड़े साहसी और शूरवीर जिनकी आंखें शेरके सामने भी नहीं झपकतीं, वे भी प्रेममें पड़कर अपनी प्रेमिकाओंके सामने हजार कमहिम्मतोंमें कमहिम्मत, अबोधोंमें अबोध और अनङ्गोंमें अनङ्ग हो जाते हैं क्योंकि दिमाग है तो पागलोंसे भी बदतर, आंखें हैं तो अन्धोंसे भी खराब, जबान है तो बिल्कुल गूंगी, भुजाएं हैं तो लकवा मारे। यहांतक कि बिना अनुमति जाने या बिना साहस पाए प्रेमीसे अपनी प्रेमिकाका आञ्चलतक नहीं छुआ जाता। फिर हमारे पौराणिक कथाके रूपमें 'कामदेव' अनंग कहा गया है तो क्या बेजा है। क्योंकि जब मनुष्य पराधीन और परवश हो जाता है तब उसका होना न होना दोनों बराबर है।

यही कारण है कि जबतक मैं प्रेम-बन्धनमें फंसा था, तब

तक दौलत, जवानी, बुरी संगत और आजादी ये चारों इकट्ठी होनेपर भी मेरे चरित्रको भ्रष्ट न कर सकी थीं। स्वतन्त्रता थी तो सही, परन्तु प्रेम उसे मेरी प्रेमिकाओंके ख्यालोंमें कैद कर रखता था। दौलतकी कुञ्जी फिर कैदीके किस काम आ सकती थी? बुरी संगतका प्रभाव भी तब मेरे हृदयमें प्रवेश करनेके लिये उसे कभी प्रेमसे खाली पाता ही न था। रह गई जवानी, उसका ज़ोर तो प्रेमिकाकी मर्ज़ीका मुहताज था। और वह मर्ज़ी लज्जाके वशमें कुछ ऐसी रहती थी कि बेचारी प्रेमिका लाख शोख़ीकी पुतली होनेपर भी मिलनेके समय सदैव काठकी पुतली बन जाती थी। सर उठाना कौन कहे, उसके लिये पलक उठाना भी दुर्लभ हो जाता था। तभी तो मिलनेके बाद उसको अपने दिलसे हर बार यही कहना पड़ता था कि—

> "बोलि हारे कोकिल, बुलाय हारे केकीगन,
>
> सिखैं हारी सखो सब जुगुति नई नई।
>
> द्विज देवको सौं लाज बैरिन कुसंग इन,
>
> अंगन ही आपने अनीति इतनी ठई।
>
> हाय! इन कुंजन तैं पलटि पधारे स्याम,
>
> देखन न पाई वह मूरति सुधामई।
>
> आवन समै में दुखदाइनी भई री लाज,
>
> चलन समै में चल पलन दगा दई॥'

स्त्रीके सकल गुणोंमें लज्जा इसीलिये सबसे उत्तम मानी गई है कि यह स्त्रियोंको बदीसे बचानेकी कोशिश करती है। यद्यपि पुरुषोंके मनको मोहनेके लिये 'शोखी' से 'लज्जा' कुछ कम असर नहीं रखती। दोनों ही यन्त्र हृदयको घायल करनेके लिये हैं सही, तौ भी दोनोंमें बड़ा भेद है। क्योंकि एक Offensive हमला करनेके लिये है तो दूसरा Defensive अपनेको बचानेके लिये है। एकसे स्त्रियां-पुरुषोंकी कामाग्नि भड़काती हैं उनको छेड़नेके लिये हिम्मत दिलाती हैं। और दूसरीसे उनमें भक्तिभाव उभारती हैं, उनकी बढ़ती हुई हिम्मतपर अदबका पर्दा डालती हैं। और यों पुरुषोंके वशमें खुद हो जानेके बदले उनको अपने ही वशमें कर लेती हैं। तभी तो पुरुष कहीं गालियां खानेपर भी अपनी छेड़से बाज नहीं आते और कहीं कुछ भी जवाब न पाकर शर्मसे कट जाते हैं और बग़लें झांकने लगते हैं।

इसलिये पुरुष चाहे कितना ही दुराचारी क्यों न हो, तौभी वह हर स्त्रीको छेड़नेकी हिम्मत नहीं रखता। यह जब छेड़ता है तो उसीको, जिसकी निगाहोंमें वह लगावट और शोखीकी झलक देखता है। क्योंकि स्त्री लाख सुन्दरी क्यों न हो, लेकिन अगर उसकी निगाहोंसे दिलचस्पी, कौतुक या शरारत न टपके तो पुरुष उसकी सुन्दरतापर

केवल चकित होकर रह जाया करे। मगर यह तो उसको छेड़खानी करनेके लिये अपनी आड़ी-तिर्छी कनखियोंसे, उल्टे-सीधे जवाबोंसे, चुहलभरी हंसीसे, बेमतलबकी बातसे, ताने और फब्तियोंसे खुद ही उत्तेजित कर देती हैं। फिर उसका क्या दोष ? स्त्री एक कदम बढ़े तो पुरुष सौ कदम आगे दौड़े।

इस तरहसे शोखीके सहारे स्त्री पुरुषके हृदयको खींचती है। और उसीके साथ खुद भी खिंचती जाती है, मगर ज्यों-ज्यों यह प्रेममें पड़ने लगती है त्यों-त्यों इसकी शोखियां कम होती जाती हैं और गम्भीरताके साथ इसकी लज्जा बढ़ती जाती है। यहांतक कि जिसके ध्यानमें यह दिन-रात रहती है, जिससे मिलनेके लिये तरसा करती है उसीकी परछाहींसे घबड़ा उठती है। उसकी आहटपर बौखला जाती है। एकान्तमें भी उसका नाम लेते हुए शर्माती है। उसको सामने पाकर कैसी शोखी और कहां-की चुहल ? फिर तो—

"लाज विलोकन देत नहीं,
रतिराज विलोकनहीकी दई मति।
लाज कहे मिलिये न कहूं,
रतिराज कहे हितसों मिलिये पति।

लाजहुंकी रतिराजहुंकी
कहँ 'तोष' कछू कहि जात नहीं गंत।
लाल ! तिहारियै सौंह करौं
यह चाल भई है दुराजकी रय्यंत."

मिलनके समय अगर प्रेमिका बौखलाई हुई है तो उसका प्रेमी उससे सौ गुना अधिक बौखलाया हुआ रहता है। न यह अपने वशमें न वह अपने वशमें। क्योंकि इसे इधर लज्जा जकड़े हुई है तो उधर वह अदबकी जंजीरोंमें बँधा है। न इधर शोखी न उधर हिम्मत। यह मूर्ति समान, तो वह चित्रस्वरूप। इधर हृदयमें भावोंकी तरंगें उठ रही हैं तो उधर नीयतके मैदानमें भक्तिकी धारा बह रही है। फिर कहां कुवासना और कहां जवानीकी मस्ती ! न कामाग्निकी लपट है और न कहीं छल-कपट है न लालचके फन्दे हैं न अत्याचारके धन्धे हैं, तब आखिर पापकी तरफ इनको बहकावे तो कौन बहकावे ? तभी तो जबकभी मुझे अपनी प्रेमिकाओंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त भी हुआ तो—

"सीस कहै परि पाय रहो भुज यों कहै अंक तें जानै न दीजियै।
जीह कहै बतियांइ कियो करौ, स्रौन कहै उन्हींकी सुनीजै।
नैन कहै छवि सिन्धुसुधारसको, निसि बासर पान करीजै।
पाएहुं प्रीतम चित्त न चैन, यौं भाव तो एक कहा कहा कीजै।"

स्त्री और पुरुषमें तो एक दूसरेके लिये प्रकृतिने इसलिये आकर्षण शक्ति दे रखी है ताकि दोनों मिलकर ईश्वरकी सृष्टि रचनामें मदद दें। मगर प्रेमका प्रभाव जैसा कि मैं ऊपर बयान कर चुका हूं मदद देनेके बदले एक बाधासा जान पड़ता है। उसका कारण यह हैं कि मनुष्य अपनी मानसिक शक्तियोंकी विशेषता और प्रबलताके कारण और जीव-जन्तुओंकी तरह अपने कर्मको अकेली प्रकृतिके नियमोंमें सीमाबद्ध नहीं कर सकता। जहां प्रकृतिका कार्य समाप्त हो जाता है और इसका आगे वश नहीं चलता वहां मनुष्यको उत्तेजित करनेके लिये, उसके आचरणको सम्हालनेके लिये मानुषी नियमोंकी मददकी यह मुहताज हो जाती है। तभी तो हजारों धार्मिक सामाजिक क़ायदे-कानूनोंकी इतनी भरमार है। वरना इनकी आवश्यकता क्या थी? सकल जीवोंके नर और मादामें ईश्वरने एक दूसरेके लिये आकर्षणशक्ति दी है अवश्य, परन्तु, यह उनमें अधिकसे अधिक एक प्रकारका हेल-मेल (attachment) पैदा कर सकती है, मनुष्यकी तरह प्रेम नहीं, क्योंकि और जीवधारियोंका काम Instinct पर निर्भर है तो मनुष्यका Reason पर। इसलिये किस अवस्थामें यह क्या करेगा, अनुमान नही किया जा सकता। यह उसके उस समयके विचारोंके अधीन है

जो जिस तरफ इकट्ठे होकर झुक जायं। फिर ऐसे उप-द्रवी दिमाग़ रखनेवाले जीवको किसी सम्बन्धमें अटलरूप-से बांधने और उसके पाबन्द रखनेके लिये जानवरोंके attachment से हजार गुनी बढ़ी हुई किसी शक्तिकी आ-वश्यकता है और वह शक्ति केवल भक्तिपूर्ण निष्काम प्रेममें है. जिसे ईश्वरने अपने अनुग्रहके रूपमें मनुष्य जातिको प्रदान किया है। क्योंकि यह मानसिक व्यथा मानसिक जीवोंहीको ग्रसित करती है। इसके यथार्थ सुख और दुःख-को मनुष्य ही अनुभव कर सकता है, और जीव नहीं। इस-लिये जब प्रकृति दो आकर्षण शक्तियोंको बढ़ाते-बढ़ाते हद दर्जेतक पहुंचाकर दोनोंमें अच्छी तरहसे प्रेम पैदा कर देती है—यहांतक कि जब वह प्रेम, कुवासना और स्वार्थकी दलदलसे निकलकर शोखी और छेड़के मैलसे छनकर सच्चा और खरा गम्भीर भक्ति-भावका रंग धारण करता है और यों ऊपर कही हुई वायाकी तरह नजर आने लगता है. तब समझना चाहिये कि प्रकृति सामाजिक नियमोंको इन्हें सौंपनेके लिये अब पुकार रही है और कह रही है कि मैंने इन दोनोंमें अटल हार्दिक सम्बन्ध पैदा कर दिया है. अब लो, तुम इन्हें अपनाओ; क्योंकि बिना तुम्हारे आदेशके ये आगे कदम बढ़ा नहीं सकते। तुम्हारे ही विवाह-बन्धनमें

प्रेमिकाकी दबी हुई शोखी और प्रेमीकी गयी हुई हिम्मत फिर भड़केगी और लौटेगी, जब ये दोनों एक दूसरेको अपना-अपना माल समझेंगे, वरना नहीं।

मगर दुर्भाग्यसे समाज मेरे प्रेमको अपनाने और सराहनेके बदले उसपर सदा थूकता ही रहा। इस स्वर्गीय अमृतमय अनुग्रहको अपने निरादरसे कलंकित और विषमय बनाता ही रहा। ईश्वरीय नियमोंके अनुसार मेरे किये हुए हार्दिक सम्बन्धोंको यह करुवख्त मानुषी नियम अटल करनेके बदले धमकाकर तोड़ते ही रहे। फिर मेरी दबी हुई हिम्मतको उभारता तो कौन उभारता? इसलिये मेरा चरित्र प्रेममें सदा निर्दोष ही रहा। अन्य युवतियोंकी संगतमें जहां चित्त चंचल होने और साहस उभड़नेकी सम्भावना थी भी, वहां मेरे हृदयकी मूर्ति मेरी मानसिक दृष्टिके सामने खड़ी होकर मुझे कातर और लज्जित कर देती थी। इसलिये विवाहके पूर्व अगर मैं नेकचलन और बादको भी एक स्त्री-व्रत धारण किये रहा तो कर्त्तव्यके ख्यालसे नहीं और न रस्मरिवाजोंकी खातिर; क्योंकि वेदीपरके वचन और प्रतिज्ञाएं अदालतोंमें खाई हुई क़समकी तरह बिलकुल बेअसर थीं। बिना हार्दिक सम्बन्धके उनकी पाबन्दी भला कहीं अटल हो सकती है कि मेरे ही लिये

होती। यह मेरे हृदयकी मूर्ति ही थी—गो अनुचित सही—जो मुझे सदा पापके कुण्डोंसे उबारा करती थी। मगर जब समयने धीरे-धीरे उस मूर्तिको धुंधली कर दिया और निराशाने उसे ऐसा झुलसा डाला कि वह उठने योग्य न रही, और जब कभी उठती भी थी तो उसमें इतनी तेजी नही रह गयी थी कि वह मौजूदा असलियतको अपनी ख्याली तस्वीरके आगे फीका कर देती, तब फिर क्या था धन, जवानी, स्वतंत्रता और बुरी संगतके प्रभाव, जिनको प्रेम पास फटकने नहीं देता था, अपना-अपना बदला चुकानेके लिये अब मुझे निस्सहाय पाकर मुझपर टूट पड़े और ऐसे कि मैं अपनेको सम्हाल न सका। अन्तमें मेरे पैर डगमगा ही गये। आखिर मैं भी हाड़-मांस हीका बना हुआ आदमी था। जवानीमें छेड़ और लगावटकी नजरोंसे कैसे और कहांतक बचता!

---

[५]

'जोशे वहशतमें भी है जज़बए उलफ़त बाक़ी।
क़ैस सहराको चला कूचये लैला होकर ॥'

जब मैंने तमाम चौड़मपन, बदनामी और मुसीबतोंकी जड़, अपना चरित्र खो दिया तब मुझे दिखाई पड़ा कि दुनिया प्रेमियोंके लिये नही, बल्कि कामियोके लिये है; क्योकि जबतक मैं प्रेमी था मुझे सभी अवारा, बेवकूफ और निकम्मा समझते थे। मगर जिस दिनसे मैंने काम की दुनियामे प्रवेश किया मैं हर जगह आदर और सम्मान-की दृष्टिसे देखा जाने लगा। छोटे लोग मेरी तारीफ करते थे कि बाबू बड़े शौकीन हैं। बड़े लोगोमे भी मेरी अब खुले दिलसे आवभगत होती थी; क्योकि 'यारबाश' लोग हमेशा 'सोसाइटी' की जान समझे जाते हैं। सड़कोंपरकी औरते भी मुझे कनखियोसे देखकर आपसमे चुहलें करती थीं कि देखो वह बड़े रंगीले हैं, क्योंकि चोरकी संगतमें चोर हीकी कदर होती है, साहूकारकी नहीं।

जबतक आदमी बुराईमें नहीं पड़ता तबतक वह बुराई-को अच्छी तरहसे नही जान सकता। इसलिये अब मुझे मालूम हुआ कि जिस समाजको लोग किताबो और लेक्च-रोंमें वाह-वाह करते हैं वह सच पूछिये तो हाय! हाय! करने योग्य है; क्योंकि भलमनसाहत और नेकचलनीके मानी इस अन्धे और पाखण्डी समाजकी समझमें ऐबोंसे बचा रहना नही है; बल्कि बुराइयोंको इस सफाईसे करना

कि इसको दिखाई न पड़े। इस तरह पानी पीये कि ईश्वर-को भी खबर न हो। मगर जब टेंगन गलेमें अटकती है तब महात्माओंकी नेकचलनीकी कलई खुलती है। यों तो सभी भले बनते हैं, मगर जब इम्तहानकी कसौटीपर खूब अच्छी तरह कसिये तो विरला ही कोई खरा निकलता है, क्योंकि जहां पर्दा उठाकर ज़रा गहरी निगाह डाली तहां किसीको वेश्यागामी, किसीको परस्त्रीगामी, किसीको भोलीभाली लड़कियों और शरीफ औरतोंको बहकाने-वाला और किसीको ऐसा भी पाइयेगा जो नीच बिना स्त्री-संगतके अपनी जवानी खाकमें मिला रहा है। बूढ़े भी जो कम्बख्त कब्रमें पैर लटकाए बैठे हैं, जिनके बदनमें नामको भी शक्ति नहीं रह गई है, तनिक भी पुरुषार्थ नहीं है, हवस-में पड़े हैं, नीयत दुरुस्त नहीं है, अपने पुनर्विवाहके लिये जवानोंसे भी अधिक छटपटाते हैं; क्योंकि यों तो कोई चिड़िया उनके हत्थे लगती नजर नहीं आती। वे धर्मका जाल बिछाकर भोली, कमसिन और बेजबान लड़कियोंको उसमें फंसाकर उनकी जिन्दगी बरबाद करते हैं, व्यभि-चारिणी बनाते हैं और यों देशमें कुकर्म फैलाते हैं। फिर भी अफसोस, शर्म और लानत है इस समाजपर कि ऐसे गुरुघन्टालोंको धार्मिक और ज्ञानी ही नहीं, बल्कि अपना

नेतातक समझता है। थूड़ी है उस गेरुआ वस्त्रपर, जिसकी आड़में औरतोंसे छेड़छाड़ करने और उनसे अपनी सेवा करानेकी उमंग बुझाई जाती है। जिस दगाबाज़को औरतोंकी संगतकी लालसा लगी रही वह पाखण्डी कभी साधु, वैरागी, गुरु या ब्रह्मचारी कहाने योग्य है? शर्म है उन मर्दोंकी बुद्धि, समझ और उनकी मरदानियतपर जो अपनी औरतोंके कान गैरोंसे फुंकवाते हैं, इन्हें उनकी चेलियां बनाते हैं, अपनी पतिव्रता स्त्रीको, जिस देवीका धर्म अपने मर्दके सिवाय दूसरेको छूनेतकका नहीं है, गैरोंके पैर दबाना सिखलाते हैं, मेले तमाशेमें ले जाकर अवारोंके धक्के खिलवाते हैं, और उनके चित्तको खुद ही डांवाडोल करते रहते हैं। पतिके सिवाय पत्नीका गुरु होनेका कौन कम्बख्त अधिकार रखता है? ईश्वर भी बेचारे अपने ईश्वरपनेको पतिके हकमें छोड़ देते हैं। फिर अगर पुरुष अपनी स्त्रीकी इच्छा, उमंग, शिक्षा, बुद्धि और ज्ञानकी प्यास बुझानेकी योग्यता या सामर्थ्य नहीं रखता तो उसको दूसरेके हवाले करनेके पहिले खुद चुल्लूभर पानीमें डूब मरना बेहतर है। मैं ऐसे आदमियोंको भी हर्गिज नेकचलन कहनेको तय्यार नहीं हूं, जिनकी नीयत डगमगाया तो करती है मगर अपने बोड़मपन, शर्म, झेंप, डर, खाली हाथ होनेके कारण या

स्कूलोंहीमें जवानीके पहिले सारे पुरुषार्थका दिवाला निकल जानेसे, या बुढ़ापेकी झकमारीसे, या कोई कुदरती ऐबकी वजहसे मजबूरन बगुला-भगत बने हुए हैं और दूसरोंपर नसीहतें झाड़ते फिरते हैं।

जब मैंने इस समाजकी भीतरी लीलाएं ऐसी ही देखीं तब मैं इस पाखण्डोकी परवा क्यों करता! अगर कभी इसका कुछ लिहाज करता था तो अपनी मिलनेवालियोंको बदनामीसे बचानेके लिये, और किसीकी परवा करता था तो केवल अपनी स्त्रीकी; क्योंकि वह सदा अस्वस्थ रहनेके कारण मेरी तरफ लाख लापरवाही रखनेपर भी मेरी ही स्त्री थी। मुझे पापाग्निमें जलते हुए देखकर उसका दिल जरूर दुखता। एक अनारीके दिलमें ऐसा ख्याल! बेशक यह एक अनोखी बात थी। इससे मालूम होता था कि मेरे हृदयकी कोमलताको दुश्चरित्रता अभी पूरी तरहसे निर्मूल नहीं कर सकी है।

इसीलिये शायद मेरी आत्मा मेरे चलनसे कुढ़ा करती थी। रह-रहकर मेरे दिलमें धिक्कार और पश्चात्तापकी बरछियां चलाया करती थी। बुराइयोंसे बेहद घृणा हो चली थी तौभी इससे छुटकारा नहीं मिलता था। कामकी ऐनक आंखोंपर चढ़ जानेसे मुझे हर जगह शिकारोंकी

भरमार दिखाई पड़ती थी। फिर लाख वार तोबा करनेपर और नीयतको हज़ार सम्हाले रहनेपर भी जहां ज़रा छेड़ और लगावटकी नजर देखी, शराबियोंकी तरह मेरी क़सम टूट जाती थी।

"बरसातके आते ही तोबा न रही बाकी।
बादल जो नज़र आए बदली मेरी नीयत भी ॥"

जिस तरह मानसिक व्याकुलतासे बचनेके लिये लोग शराबका प्याला मुंहसे लगाते हैं, और नशेमें अपनेको आनन्दमें समझते हैं, मगर नशा उतरते ही उसका खुमार उन्हें पहिलेसे ज्यादे सताने लगता है तब वे उससे परेशान होकर दूसरा प्याला चढ़ाते हैं, उसी तरह मैं भी मजबूरन अपनेको हरवक्त काम-मदमें अन्धा बनाए रखनेके लिये अपने प्रेमी हृदयको कुवासनाकी अग्निमें खाक करने लगा, ताकि यह कम्बख़्त फिर न उभड़े और मुझे सतावे; मगर हरवक़्त रंग-रलियोंमें मस्त रहनेपर भी मुझे चैन नहीं मिलता था। युवतियोंसे घिरे रहनेपर अब यह बेचैनी क्यों? समुद्रमें डूबे हुए होनेपर भी प्यास? ठीक है, ऐसा पानी किस कामका जो जबानपर धरा तक न जाये? प्यास तो निर्मल जलहीसे बुझ सकती है, खारे पानीसे नहीं। इसीलिये सीपकी तरह पानीमें डूबे हुए होनेपर भी

मेरा हृदय प्रेमस्वातिकी एक बूंदके लिये भीतर-ही-भीतर तरस रहा था, छटपटा रहा था। क्योंकि जो आनन्द मुझे प्रेमिकाकी एक झलक या एक दृष्टिमें मिलता था उसका अब एक अंश भी सैकड़ों नौजवान छोकड़ियोंको गले लगानेसे नहीं मिलता है।

यह क्यों? आखिर प्रेमिकाओंमें और इनमें क्या भेद है? जो मैं उनको एक नजरके लिये तड़पता रहता था, मुद्दतों बेचैन रहता था, और वे आंख उठाकर मुझे देखती भी न थीं। और इनके लिये मैं ज़रा भी परवा नहीं करता तोभी यह दौड़-दौड़कर मेरे पास आती हैं। मुझसे मिलनेके लिये जाड़े-पालेमें, गर्मी-बरसातमें घण्टों इन्तज़ार किया करती हैं। न सांप छुछून्दरको डरती हैं और न नाक कटनेको परवा करती हैं। मैं प्रेमिकाओंको खुशामदें करता था और यह मेरी खुशामद करती हैं। मैं उनको हाथ जोड़ता था और यह मुझे हाथ जोड़ती हैं। उनके सामने मैं गिड़गिड़ाता था और मेरे आगे उलटे इस तरह ये गिड़गिड़ाती हैं कि—

"चन्द-दुति मन्द भई फन्दमें फंसी हूं प्रान,
छन्द नन्द ठाने जोरे जोरे जुग पानि हैं।
साल सतरैहैं, जेठ पतनी रिसैहैं, बंक बचन सुनैहैं,
छाड़ि गरको भुजानि दै।

विगती करति रही, गिनती कहां लौ 'देव' हा हा करि हारि रे !
रहन कुल-कानि द।
दान देरे जियको, नदान मिरदई कान्ह, बसि सब रैन,
मोहिं अब घर जाने दे ॥"

और तारीफ यह कि मैं इनकी बातोंपर कभी कान नहीं देता, फिर भी ये लोग मुझसे खुश रहती हैं। और प्रेमिकाओंके लिये मैं रातदिन प्राण न्यौछावर किया करता था, उसपर भी उनके मिजाजका पता नहीं मिलता था। क्यों? क्या इसलिये कि जैसा बर्ताव मैं इन लोगोंसे करता हूं वैसा मैं उनसे स्वप्नमें भी नही कर सका? क्या स्त्रियोंके हृदयमें कुवासना ही भरी होती हैं? क्या दुराचारहीको यह लोग प्रेम समझती हैं? इसीके लिये मरती हैं? तभी तो प्रेमिकाएं मुझसे असन्तुष्ट होकर लापरवाही दिखाती थी। मिलनेसे परहेज़ करके मुझे सदा जलाया ही करती थी। कहीं उनके संग भी मैं वैसी ही कमीनेपनकी घातें कर पाता तो शायद वह लोग भी मेरे पीछे हाथ धोके पड़ जाती। तब मुझे निराशा और वियोगकी अग्निमे जलना न पड़ता, मेरी ज़िन्दगी बरबाद न होती।

हाय! मैं अपने हृदयकी तरह उनका हृदय समझता था। अपने प्रेमकी नाईं उनका प्रेम जानता था। अपनी

भक्तिके समान उनकी भक्ति सोचता था। धोखा! धोखा! उफ! इसीमें बड़ा भारी धोखा खाया!! तब मैं शायद महा मूर्खऔर अज्ञानी था; बौड़म, बोदा और कम हिम्मत था। मगर अब जो कहीं प्रेम हो तो ऐसी बेवकूफी नहीं हो सकती, क्योंकि अब मैं अन्धा और मूर्ख प्रेमी नहीं रहा, बल्कि चालाक और वेढब शिकारी हूं।

मगर असली सवाल है तो यह है कि क्या मैं अब किसीसे प्रेम कर सकता हूं या नहीं। स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा भंग होनेके कारणको जाननेके साथ अपने दिमागकी सारी कैफियत जानकर अब दावेसे कह सकता हूं कि कदापि नहीं। प्रेम कैसे हो? प्रेमकी पहिली सीढ़ी तो आदर है। और अब मेरे विचारमें न तो स्त्रियां ही पूजने योग्य हैं और न मेरा धोखा खाया हुआ दिल उनसे प्रेम करनेके काबिल।

"अरजे नयाजे इश्कके काबिल नहीं रहा।
जिस दिन पे नाज़ था मुझे, वह दिल नहीं रहा॥"

हृदयमें तो यहां कुवासनाएं भर गईं। अब भक्ति-भावका वहां प्रवेश कैसे हो? वह शेर जो सदा दूधहीपर पला था, जब एक दफ़े उसके दांतोंसे खून लग गया, फिर दूधपर कहां पल सकता है? बनके बिगड़ना आसान है, मगर बिगड़कर सुधरना महा कठिन है। अवारा हूं, बद-

चलन हूं, युवतियोंकी संगतमें रहता हूं, मगर इनसे मुझे मुहब्बत नहीं है। दिलमें इन्हें मैं खूब समझता हूं कि ये मतलबी, लालची, झूठी, मक्कारा, दग़ाबाज और कामकी पुतलियां हैं। जिस तरहसे हजामत बनवाते वक़्त नाईको लोग अपने बराबर बैठा लेते हैं, फिर भी नाईकी इज्जत उनकी निगाहोंमें नही बढ़ती, उसी तरह मैं भी इनसे मिलता हूं तो अपनी छिछोरी आदतकी खातिर, कुछ इनकी इज्जत-के ख्यालसे नहीं। इनके पानेकी बेचैनी और इनके मिलने-पर खुशी मुझे वैसे ही होती है जैसे किसी व्याधेको जाल फेंकनेमें और शिकारको फांस लेनेमें। चिड़िया मुट्ठीमें आ गई तो वाह वाह, उड़ गई तो परवा नहीं। दूसरा शिकार निशानेपर मौजूद है। न किसीका रातदिन ख़्याल है; न किसीकी रुखाईपर आंसू बहाना है; न किसीकी जुदाईमें सर फोड़ना है। यहां तो सिर्फ अपने आनन्दसे सरोकार है। अपने मतलबसे मतलब है। आज यह है तो कल वह।—

"सौंह करि कहति हौं, एहो प्यारे 'रघुनाथ',
आवति रुखाए' बादो उनहींके बरसों।
जैसे बने तैसे यौस आजको बितीत कीजै,
अब अकुलाइये ना पागे प्रेम बरसों।

जावक गुलाल मूठि डारि सो मिलैगी कालिंद
मारी पिचकारी बाल प्यारी पीन परसों।
खेलत मैं होरी शरदके कर वर सों जो है
भीजी है अतर सों सो आप है अतर सों॥"

मगर वाहरी दुनिया! ऐसीही कलंकित लगावटको तू अब प्रेम कहती है! जैसी मतलबी तू है वैसे ही मतलबी आदमियोंको तू अपनाती है, उनकी मदद करती है। तभी तो हर जगह मेरी अब कामयाबी और तारीफें होती हैं। मगर जिस समस्याको हल करनेके लिये मैंने अपने दिल और दिमाग़को रत्ती-रत्ती छान डाला वह समस्या ज्योंकी त्यों रह गई; क्योंकि उपाय मिला भी तो उसीके साथ यह भी जाना कि वह मेरे सामर्थ्य और शक्तिके बाहर है। क्योंकि स्त्रियोंको पूजनेके लिये उनके प्रति भक्ति-भावका होना आवश्यक है, और भक्ति-भावके लिये निष्काम प्रेम चाहिये। और इतनी छानबीनके बाद पता चला कि प्रेम करनेके योग्य अब मेरा हृदय ही नहीं रहा। अच्छा, देखूं तो कि जितनी युवतियोंको मैं जानता हूं उनमें किसीकी इज्ज़त मेरी निगाहमें इस वक्त है या नहीं। उस ढंगसे न सही तो इस ढंगसे अपने भड़के हुए दिलको कुछ रास्तेपर ले आऊं। मगर हाय! अफ़सोस! किसीकी भी इज्ज़त

अपनी निगाहमें नहीं पाता—उनको भी नहीं जो नेकचलन हैं, क्योंकि अगर वह दुराचारसे बची हुई हैं तो मेरी समझ-में अपने गुणोंके प्रभावसे नहीं, बल्कि अवसरके अभावसे और शिकारियोंका फन्दा उनतक न पहुचनेके कारण। लो यह भी तरकीब न चली। अच्छा, तो मैं अपने हृदयको अब इस तौरपर जाचूं कि यह कुवासनाओंसे भरा हुआ होने-पर भी अगर किसीको घातमें पाकर उसपर अपना दुरा-चारका हाथ डालनेसे कभी पिछड़ा है या पिछड़ता है तो अलबत्ता कह सकता हूं कि हां सिर्फ एकपर। वह कौन है? सड़कोंपर फूलोंके हार वेचनेवाली एक भोलीभाली लड़की "पन्ना"।

---

[६]

"तेरी परतीति न परत अब सौंतुख हूं
छैल! छबीले मेरी छुवै जनि छहियां।
रात सपनेमें जनु बैठी मैं सदन सुने,
मदन गोपाल! तुम गहि लीन्हीं बहियां।
कहै कवि 'तोष' जब जैसो जैसो कीन्हों,
अब कहत न बतियां वै तैसो हम पहियां।

तुम न बिहारी ! नेकु मानो मनुहारी,
हम पाय परि हारि अस करि हारी नहियां ॥"

पन्नाको मैं चार बरससे जानता हूं। जैसी ही इसपर मेरी पहिले पहल नजर पड़ी वैसे ही मेरी जबान यकायक बोल उठी थी कि—

"कुछ दिनों बाद यही दुश्मने ईमां होगी।"

भावी बातोंका अनुमान बहुत सोच-समझकर, बुद्धि-को लड़ाकर, तारोंकी गति देखकर, रमलके पासोंकी गणना करके लोग बहुधा कहते हैं और फिर भी वह ठीक नहीं उतरता। मगर मैं न ज्योतिषी, न रम्माल, न ज्ञानी न पण्डित, बल्कि उस समय कालिजका केवल एक मामूली विद्यार्थी था। छुट्टियोंमें घर आया हुआ था। बी० ए० के नतीजेका इन्तजार था। शामको सड़कपर टहल रहा था। तभी पन्नाको देखा था। और देखते ही ऊपरकी बात कह बैठा था। क्यों और क्या सोचकर मैं खुद ही नहीं जानता। क्योंकि तब वह शायद १०, ११ या १२ बरसकी थी। गरीबीमें पली हुई होनेके कारण वह दस बरससे ज्यादाकी नहीं मालूम होती थी। फटा लहंगा और मैली ओढ़नीके सिवाय बदनपर एक कुर्ती भी न थी। रंग सांवला और उसपर भी गाल रूखे। छोटे-छोटे बाल और वह भी बिखरे

हुए। चेहरेका सुडौल नकशा, हाथ-पैरका छरहरापन, आंखोंकी चंचलता और चालमें चुलबुलाहटको छोड़कर उसके पास कोई भी सुन्दरताका लक्षण न था। फिर भी न जाने उसमे कौन-सी बात अनोखी थी जिसने मेरे दिलसे झट ऐसी पेशीनगोई करा दी। सम्भव है उस समय मेरी जिह्वापर सरस्वती विराजमान हों। क्योंकि फिर जब दो बरस बाद विद्यार्थी अवस्था समाप्त कर गृहस्थी-जीवन प्रवेश करनेके लिये घर आया और उसे देखा तो सचमुच कलेजा थामकर रह गया।

चितवनमें शोखी, ओठोंपर मुस्कुराहट और गालोंपर नौजवानीकी तमतमाहट और ऐसी कि गोरे रंगकी लाख सुन्दरता भी उसके आगे फीकी थी। सूरत रसीली और उसपर भी वह भोलापन कि देखनेवालोंकी नीयत, ईमान और दिल, किसीकी भी सलामती नहीं। चाल मतवाली और उसमें वह चुलबुलापन कि थियेटरकी एक्ट्रेसें भी खड़ी तमाशा देखा करें। फिर भी वह अभी लड़कपनहीकी अवस्थामें थी। तौभी अपनी कमसिनीहीमें नौजवानीकी तरह बहार दिखा रही थी। क्योंकि सड़कों और गलियोंमें फिरनेवाली शहरकी छोटी जातिकी छोकड़ियां दुनियाकी बातें मांके पेटहीमें सीख लेती हैं। बेमौसिमके फलों और

तरकारियोंमें एक अनोखी लज्जत होती है। इसीलिये उनके दाम ज्यादे होते हैं। आमवाले भी कलमी आमोंको कच्चे ही तोड़कर पाल डालते हैं ताकि शौकीनोंके लिये यह जल्दी तैयार हो जाएं। उसी तरहसे कामियोंकी निगाहोंकी गर्मीसे ऐसी छोकड़ियोंमें बचपनहीसे जवानीकी उमंगें उभर उठती हैं,फिर चाहे रूपवती हों या कुरूपा। तौभी इनकी बेमौसिम-की नौजवानी इनकी कदर कुछ दिनोंके लिये बढ़ा देती हैं। एक तो इनका बदन गठीला, ढांचा सुडौल, मस्तानी चाल और छेड़नेवाली निगाहें योंही गजब ढाती हैं, इनपर बिना सुन्दरताके सुन्दरताका रंग चढ़ाए रखती हैं। और जहां कहीं कुछ भी सुन्दरता हुई तो उफ! देखनेवालोंके हृदयोंपर इनकी एक-एक चितवन बिजलियां गिराती हैं, मुर्दोंमें भी कामाग्नि भड़काती हैं।

ऐसी ही कोई बात उन दिनों पन्नाकी निगाहोंमें थी; क्योंकि उसकी आंख, नाक, गाल इत्यादिमें वैसे कोई खास खूबी न थी। फिर भी जिस तरफ उसकी झलक दिखाई पड़ती थी उस तरफ आंखोंमें चकाचौंध छा जाती थी। कलेजेमें बरछियां चल जाती थीं। मेरे भी दिलको तड़पा देती थी सही, तौभी मेरे हृदयमें बसी हुई मूर्तिको उसके आसनपरसे खसका नहीं पाती थी। मिलनेपर थोड़ी-

पन्ना—"तुम तो जा रहे हो, मैं तुम्हारे लिये माला लाई थी।"

[पृ० ३०७

सी दिलचस्पी मुझे पन्नासे अवश्य पैदा हो जाती थी, मगर और कोई भाव मेरे उसकी तरफ उभड़ते न थे। इसलिये उन दिनों भी मुझे उससे लापरवाही सी रहा करती थी।

पहिले जब छुट्टियोंमें घर आता था और 'क्लब' 'टेनिस' खेलने जाया करता था तो पन्ना गेंद उठानेवाले लड़कोंके संग मेरा गेन्द उठाया करती थी। मैं प्राकृतिक सौन्दर्यका स्वाभाविक प्रेमी होनेके कारण उसके भोलेपनपर मुग्ध हो जाया करता था। इसलिये मेरा बरताव उसके संग और 'मेम्बरों'से ज्यादा मीठा था। तभीसे वह मुझे खास तरहसे जानती थी और इसी जान-पहचानके कारण, उसका अब 'क्लब' से कोई सरोकार न होनेपर भी जब कभी वह मुझे रास्तेमें मिल जाती थी तो मुझसे मिलनेमें न वह झिझकती थी और न बातें करनेमें कोई सङ्कोच करती थी। इसी तरह जब मैं एक दिन 'टेनिस' खेलनेके लिये 'क्लब' जा रहा था और वह उधरसे अपनी फुलवारीसे लौटी हुई आ रही थी, उसके साथ उसकी मां न थी और आसपासमें कोई आदमी भी न था, वह मुझे देखकर रुक गई और बेधड़क बोल उठी।

वह—"तुम तो जा रहे हो, मैं तुम्हारे लिये माला लाई थी।"

मैं—"घरपर दे देना।"

वह—"नहीं, तुम ही न ले लो।"

मैं—"मगर यहां मेरे पास पैसे कहां ?"

वह—"पैसे मिल जायंगे। लो, अपनी माला लेते जाओ।"

मैं—"माला लेकर मैं खेलने कैसे जा सकता हूं ? इसलिये कोटमें लगानेके लिये खाली एक फूल दे दे। और माला घरपर देकर पैसे ले लेना।"

यह कहकर मैंने उससे एक फूल लिया और चलता बना। उस दिनसे हमेशा वह कोटमें लगानेके लिये फूलोंका एक छोटासा गुच्छा बनाकर लाती थी और रास्तेमें मिलनेपर मुझे दे देती थी। जब उसकी मां साथ रहती थी तब वह कुछ पिछड़ जाती थी और आंख बचाकर वह मेरे 'रैकेट' पर फूल रख देती थी। मगर एक दिन ज्योंही उसने अपने झोलेमें हाथ डाला और मैंने अपना 'रैकेट' उसकी तरफ बढ़ाया त्योंही उसकी मांने सर घुमाया और मुझे उससे फूल लेते हुए देख लिया। उसकी मां तुरन्त मुस्कुराकर बोली कि—

"बाबूजीने फूल तो ले लिये ; मगर पन्ना ! तुम इनसे दाम न लेना, इनाम लेना।"

मैं—"इनाम जाकर बहूजीसे लो। मैं पैसे बान्धकर थोड़े ही चलता हूं।"

पन्ना—"मैं उनसे नहीं तुमसे लूंगी। चाहे दो या न दो।"

मैं—"अच्छा कल देखा जायगा।"

दूसरे दिन जैसे ही वह दिखाई पड़ी, वैसे ही याद आया कि मैं पैसे लाना आज भी भूल गया। मगर जेब खनक रही थी। मैंने यह सोचकर कि शायद कुछ पैसे पहिलेके पड़े हों जेबमें हाथ डाल दिया। मेरा दाहिना हाथ जेबमें होनेके कारण मैं 'रैकेट' बढ़ा न सका। इसलिये वह फूल लिये हुए बिल्कुल ही नजदीक आ गई। मैंने झटसे हाथ निकालकर फूल ले लेना चाहा ताकि उसे कोई मेरे पास इतनी नजदीक खड़ी हुई न देख ले। मगर हाथ निकालते ही जेबसे दो रुपये निकल आए। अब मालूम हुआ कि मेरी स्त्रीने 'क्लब' का चन्दा देनेके लिये मेरी जेबमें यह रुपये रख दिये थे। मैं बड़ी उलझनमे पड़ा, चार आनेकी जगहपर दो रुपये कैसे दूं। और अब न दूं तो कैसे? मगर किसीको आशा दिलाकर आस तोड़ना ठीक नहीं—यही सोचकर मैंने उसे दोनों रुपये दे दिये और कहा कि—"ले जा, तेरी तकदीरमें था मैं क्या करूं?"

रुपये तो उसने ले लिये। मगर पहिले कुछ सटपटाई, फिर मुस्कुराई, फिर शरमाई, और इतराती हुई चली गई। मैं कुछ देरतक उसकी चालकी थिरक देखता रहा। उस दिनसे न जाने क्यों वह मुझसे झिझकने, शर्माने, भागने और छिपने लगी। मुझे दूरहीसे देखकर रास्ता छोड़कर दूसरे रास्तेसे मुस्कुराती हुई निकल जाती थी। जब उसकी मां साथ रहती थी तो भागनेका मौका न पाकर उसकी आड़में मेरी नजरोंसे छिपती हुई चल देनेकी कोशिश करती थी। इस तरहसे न उसने फिर मुझे फूल दिया और न मैंने उससे मांगा।

[७]

"बागन-बागनमें फिरके अति सुन्दर,
पुष्पकी तोरनहारी।
माल बनाय नचायके नैन भरे रस बैन
लसे कटि सारी।
जाहि लखे बृजकी बनिता अरु मोह रही
बृषभानु दुलारी।
'रञ्जन' क्यों नहीं दीख परै अब ऐसिहि
सांवरि मालन प्यारी॥"

पन्ना

पन्नाका ख्याल जिस समय मेरे दिमागमें आया मुझे ऐसी खुशी हुई मानों कोई खोई हुई चीज मुझे मिल गई ; क्योंकि पन्नामें मैं अपने उपन्यासकी नायिकाके चित्रका यकायक सजीव 'मौडल' (Model) पा गया। वही रंगरूप, वही चाल-ढाल, वही नोक-झोंक, वही हाव-भाव, सब बातें वही—यहांतक कि वह भी छोटी जातिकी और वह भी। हां, अगर कमी है तो सिर्फ प्रेम की , क्योंकि अगर नायक मेरी तरह है तो नायिका पन्नाकी तरह। मगर जिस बन्धनमें मैंने दोनोंको बांध रखा है, वह मुझमें और मेरे 'मौडल' में नहीं है। और वही असली चीज है। अगर वह भी कहीं पा जाता तो फिर क्या कहना है। तौभी कोई हर्ज नहीं, यही बहुत है कि कल्पनासागरमें थककर डूबते हुए तैराकको एक सहारा तो मिल गया। अब जिस तरफ यह बहाकर ले जावे उसी तरफ बह निकलूंगा, जिस भंवरमें डाले उसीमें चक्कर खाऊंगा, जिस किनारे लगावे, उसी घाट उतरूंगा, वरना अस्वाभाविकताकी हिलोरोंमें फिर कहीं थाह न पाऊंगा। अगर पन्ना किसीको प्रेम करती है या कर सकती है तो किस तरह और कहांतक ; क्योंकि उसी तरह और वहींतक मेरे उपन्यासमें नायिका-का भी प्रेम होना चाहिये। नहीं तो पाठकोंकी निगाहोंमें

क्यों, बल्कि खुद अपनी ही नजरोंमें मैं झूठा और मेरी पुस्तक झूठी हो जायगी।

भाग्यवश मुझ ऐसे दुराचारीके पाले पड़कर भी यह 'मौडल' मेरे पापी हाथोंसे चूर-चूर न हो सका। वरना आजके दिन इससे भी हाथ धो बैठता; क्योंकि पन्ना फिर मेरी नजरोंमें ऐसी न जँचती कि उसे 'मौडल' बनाने योग्य समझता। मुहम्मद 'गोरी' और मुहम्मद 'गजनी' ऐसे मूर्ति भञ्जककी निगाहोंके सामने ही कोई मूर्ति हो और वह उनके अत्याचारोंसे बच जाय तो निस्सन्देह उस मूर्तिमें कोई अनोखी बात होगी। तो पन्नामें भी कोई-न-कोई अनोखापन जरूर होगा, जिसने मेरे दुराचारी हाथका उसके ऊपर उठनेसे रोक दिया; क्योंकि जब वह एक दिन मेरे घर बेधड़क चली आई थी और संयोगसे घर सूना था, औरतें सब कहीं न्योता करने गई थीं, ऐसे अवसरमें उसे अकेली पाकर मेरी नीयतमें बड़े जोरोंकी खलबली उठी, और उसीके आवेशमें उसके पूछनेपर मेरी पापी आत्मा उसको बहकानेके लिये बोल उठी कि मांजी और बहूजी कोठेपर हैं। मगर ज्योंही वह मुझपर विश्वास करती हुई सीढ़ियोंपर चढ़ने लगी, त्योंही उसके भोलेपनके आगे अपनी दगाबाजी खुद मुझीसे न देखी गई। वैसे ही मैंने उसे ऊपर जानेसे मना किया और पूछा।

"मांजीसे तेरा क्या काम है?"

वह—"उन्होंने मुझे एक ओढ़नी देनेको कहा है।"

मैं०—"ओढ़नी कितनेमें मिलेगी?"

वह—"हम क्या जाने?"

मैं०—"अच्छा तो तू ओढ़नीके बदले उसके दाम लेती जा। अपनी मांसे खरीदवा लेना।"

यह कहकर मैं बकस खोलने गया। मगर जब रुपया लेकर आंगनमें आया तो देखा कि वह लापता हो गई।

तबसे फिर पन्नासे भेंट नहीं हुई। मगर अब उसमें अपनी नायिकाका 'मौडल' पा जानेसे उसको अच्छी तरह-से देखने और बातें करनेका जी चाहता है; क्योंकि मैंने कभी उसे इस नीयतसे नहीं देखा है। और यों भी उसको देखे हुए बहुत दिन हो गए। मगर मुश्किल यह है कि वह अब दिखाई नहीं पड़ती, या मुमकिन हो वह मेरी नजरोंके सामने अब भी वैसी ही पड़ती हो, मगर उसमें अबतक मुझे खास दिलचस्पी न होनेके कारण मुझे उसके मिलनेका ख्याल न हो; क्योंकि जो व्यक्ति पचास कदमकी दूरीसे कतराकर छिपनेकी कोशिश करे उसकी ओर जबतक पहिलेसे ध्यान न हो तबतक देखनेवालेकी नजर उसे कैसे देख सकती है? मगर पहिले तो वह मुझे बराबर दिखाई

पढ़ती थी। बेधड़क मुझसे मिलती थी, हँसती थी, बोलती थी, और अब क्या हुआ जो मुझसे वह इतना परहेज करती है? आखिर क्यों? कुछ समझमें नहीं आता।

इन्हीं सब उधेड़बुनमें मैं अपना अधूरा उपन्यास सामने रखे ग्यारह बजे राततक बैठकहीमें बैठा रह गया। कुछ देर तक शायद यह सिलसिला और जारी रहता, मगर इतनेहीमें मेरे मुंहपर गुलाबका एक फूल लगा और बाहर अन्धेरेमें चूड़ियां खनकी। मैं चौंका और घबराकर निकल आया तो देखा कि पन्नाकी मां खड़ी है।

---

[८]

"बेनयाज़ी हदसे गुज़री
बन्दापरवर कब तलक।
हम कहेंगे हाले-दिल और
आप फरमायेंगे क्या॥"

पन्नाकी मां अधेड़ थी। मगर सूरतसे अब भी पता चलता था कि अपने ज़मानेमें इसने सैकड़ोंको हलाल किया होगा। इसलिये रस्सी जलनेपर भी ऐंठन न गई थी।

बदन ढीला पड़ गया था, तोभी चालमें मस्तानापन और निगाहोंमें छेड़के कुछ तलछट बाकी थे। मगर बिल्कुल बेअसर; क्योंकि मौसिमबहारके साथ तो चाहनेवाले बुलबुल हवा हो गये। अब सिर्फ इश्कके विवाद जालमें फँसे हुए एक पुराने उल्लूके सिवाय इस पतझड़का तमाशा देखनेवाला कोई नजर नहीं आता।

हंसने-हँसानेकी मेरी आदत तो थी ही, इसलिये इसकी आड़ी तिरछी निगाहें अपने ऊपर पड़ती हुई देखकर कम्बख्तीके मारे मैं एक दिन इसे छेड़ बैठा था। फिर क्या था, तभीसे यह मुझे मौके-बेमौके अक्सर मिलती थी और लगी-लिपटी बातें करनेसे कभी चूकती न थी। इसलिये इसे आजकी सूनी रातकी अन्धियालीमें अकेली चोरकी तरह दबकी हुई पाकर मैं घबरानेके बदले न जाने क्या सोचकर मुस्कुराने लगा।

मैं—"कहो, इस वक्त कैसे आई?"

वह—"तुम्हींको देखने।"

मैं—"मैं कुछ बीमार तो हूं नहीं, जो खामख्वाह किसीको आकर मुझे देखनेकी जरूरत थी।"

वह—"तुम्हारे दुश्मन बीमार पड़ें। मगर मुहब्बत भी तो कोई चीज है।"

मुहब्बतका नाम सुनते ही मैं खिलखिलाकर हंस पड़ा। वाहरी ! तकदीर ! मुझे दुनियामें चाहनेवाली मिली भी तो यह अधेड़ और जो देखनेमें मेरी चची मालूम हो। अगर मैंने कभी इसे छेड़ा था और इस तरह अपने पास बातोंमें अटका रखनेकी कोशिश की थी तो कुछ इसके लिये नहीं; बल्कि इसकी आड़में पन्नाके छिपने और शर्मानेका तमाशा देखनेके लिये। मछलीकी क्रीड़ा देखनेकी खातिर मैंने पानी-में चारा फेंका था, मगर धत् तेरी किस्मतकी, कि उसकी बू पाकर मुझीको चारा बनानेके लिये उसमेंसे निकल पड़ी जोंक। यह कैसी कम्बख्ती आई? अब क्या करूं? जीमें आया कि इसे बातों-बातोंमें खूब शर्मिन्दा करूं और यों हमेशाके लिये यह बला टालूं। मगर फिर सोचा कि पन्नाके ऊपर आपसे आप मेरा महाजाल पड़ गया। यह बिल्कुल मेरी मुट्ठीमें है; क्योंकि जो पक्के वेश्यागामी हैं वह सबसे पहिले नौचीकी मांको खातिरदारी, खुशामद और रुपयोंसे अपने वशमें करते हैं। और यहां तो यह कम्बख्त खुद ही मेरी गरजमन्द हो रही है। और उसपर यह ठहरी बदचलन और ऐसी कि इस अवस्थामें भी अवारगी इसके मिजाजमें है, तो पन्नाको यह पाठ पढ़नेमें कितनी देर है? अब तक न सही तो अब सही; क्योंकि घरमें जहां एक

भी आवारा औरत हुई तो घर-का-घर सत्यानाश हुआ। ऐबी यह नहीं चाहता कि मेरा ऐब दूर हो, बल्कि मेरी तरह सभी ऐबी हो जाएं ताकि कोई मुझपर हंसनेवाला न रहे। फिर जहां मां आवारा हुई वहां उनकी लड़कियों-की नौजवानीका अध्याय स्वाहा समझिये। यह अगर उनको बिगाड़ना न भी चाहें तौभी इनकी संगतिका उन-पर इतना प्रबल प्रभाव पड़ता है कि ईश्वर भी उनको बुराई-से बचानेके लिये हिम्मत हार जाते हैं।

जो औरतें जवानीमें आवारा रहीं और यों कामियोंसे घिरे रहनेकी जिनकी लत पड़ जाती है वही बादको कुटन-पन करके अपने उजड़े हुए बाजारको बसानेकी कोशिश करती हैं; क्योंकि कामियोंसे घिरे रहनेकी इनकी कामना कैसे पूरी हो। अब कोई इनसे बात भी नहीं पूछता तो गैरहीकी खातिर कोई इनसे बोले, यही गनीमत है।

पन्नाको बिगाड़नेके लिये उसकी चढ़ती जवानी और रंसीलापन योंही क्या कम थे, जो दुर्भाग्यने उसे और भी बरबाद करनेके लिये इस शैतानकी खालाके सुपुर्द किया! ऐ! मेरे भोले-भाले पाठक! इस कम्बख्त समाजने किताबी संसारमें अपनी झूठी तारीफें कराकर तुम्हें बहका रखा है, तुमसे अपने ऐबोंको छिपा रखा है। इसलिये तुम क्या

जानो कि इस पाखण्डोंका भीतरी रहस्य कैसा है। जो कोई इसकी गुप्त-लीलाका जरा भी पर्दा उठाना चाहता है, यह कम्बख्त उसे बुरी तरह काटने दौड़ता है। अपने खुशामदियोंसे उसे नक्कू बनवाता है। बेचारे लेखकोंको असलियतकी दुनियामें प्रवेश करनेसे धमकाता है। क्या किताबी ही चरित्रोंसे समाज बना हुआ है? अगर है तो वैसे चरित्र कितने और कहां हैं? सभी औरतें जब सती और पतिव्रता होती हैं तो असलियतकी दुनियामें इतनी कुलटायें कहांसे फट पड़ती हैं? इतनी नकटी किस लोकसे आती हैं? बदचलनोंकी इल्लतमें इतने खून क्यों होते हैं? अदालतोंमें पराई औरत भगानेके मुकदमोंकी रोज इतनी भरमार कहांसे हो जाती है? वकीलोंकी जिरहमें गवाहोंके बयानों और मिसलनामोंकी अकसर धज्जियां क्यों उड़ जाती हैं? फिर भी समाज तू नेकचलन बनता है। तेरे खुशामदी समालोचक किताबोंमें ऐसी बातोंको देखकर कानों पर हाथ धरते हैं? मगर मुझे न तेरी परवाह है और न तेरे खुशामदी टट्टुओंकी। नक्कू बनूंगा, कलङ्कका टीका लगाऊंगा, मगर ओ पाखण्डी समाज! तुझे लथाड़कर छोड़ूंगा। खरी-खरी सुनाऊंगा। बलासे तुझे बुरा लगे, बलासे तेरे समालोचक नाक-भौं सिकोड़ें, जिनके

पाखण्ड, पक्षपात और दब्बूपनके मारे असली चरित्र किताबो संसारमें घुसने नही पाते और तू अपनी कालिख लगी सूरत देखने नहीं पाता। इसलिये आप भी पाठक! पन्नाकी मांके ऊपर मेरे ऐसे विचारोंसे चकराये होंगे। मगर यह देशका दुर्भाग्य है कि ऐसे चरित्र एक-दो नही बल्कि ढेरों हैं। यह कम्बख्त न खुल्लमखुल्ला वेश्या ही है और न कुटनी, मगर गृहस्थीकी आड़में पेशेवालियोंके भी कान काटती है।

पन्नाकी माकी संगतका पन्नापर प्रभाव सोचते ही मेरी पापिनी आत्मा यकायक जाग उठी और जो कुछ दिलचस्पी पन्नाकी शर्मीली निगाहोंने मेरे दिलमें पैदा कर रखी थी और आज उसे अपने उपन्यासकी नायिकासे मिलान करनेसे जो और भी बढ़ गई थी उसे इसने झट कामतृष्णामें बदल दी। जिस भोलेपनकी खातिर मैं पन्नाको 'मौडल' बनाना चाहता था उसी भोलेपनका जाल बिछाकर इसकी मां कामियोंका झुण्ड फँसायगी। जब माल बाजारी होनेवाला है तो वह किसी-न-किसीके हाथ बिकेहीगा। तब मैं ही उसका क्यों न खरीदार बनूं? आखिर मैं भी तो कामी, आवारा और बदचलन हूं। इस ख्यालने उपन्यासकी पूर्तिका विचार चूल्हेमे झोंककर मेरी कुवासनाको और भी

भड़का दिया। इसलिये पन्नाकी मांको मुझसे न दुतकारते बना और न पुचकारते। क्या करूं? किस तरह इससे पार पाऊं? कहां बेढबसे पाला पड़ा। खैर! मगर यह ज़माना ऐसे हुई थी तो मैं भी दुनियाको बराबर हुए था। इसलिये ठहर-ठहर यों बदलाई होने लगी।

वह—"क्यों, हँसे क्यों?"

मैं—"दुनियामें एक अपनी मुहब्बतका दम भरनेवाली पाकर अपने सौभाग्यपर कैसे न हँसूं? मगर यह बताओ कि आज तुम अकेली कैसे? पन्ना तो तुम्हारे साथ हमेशा रहती थी।"

पन्नाका नाम सुनते ही वह कुछ घबराई। मगर फिर सम्हलकर बोली।

वह—"क्या तुम्हें मेरी मुहब्बत नहीं है?"

मैं—"वाह! है क्यों नहीं? जब मैं पैदा नहीं हुआ था तभीसे तुम्हारी मुहब्बत मेरे दिलमें है।"

वह—"लो, तुम तो मसखरी करने लगे।"

मैं—"मसखरी करनेके काबिल तुम होतीं तो मसखरी भी करता। फिर तुमसे मैं भला मसखरी कर सकता हूं? राम! राम!"

वह—"तुम तो अजीब बहकी बातें करते हो।"

मैं—"यही तो मुहब्बतका सबूत है कि होश ठिकाने नहीं हैं।"

वह—"हो बड़े नटखट। तुमसे बातोंमें पार पाना मुश्किल है।"

मैं—"तो फिर क्या डंडेबाजी करनेका इरादा है?"

वह—(मेरे गालमें ठुनकी लगाकर) 'क्यों? न मानोगे?"

मैं—"ले जरा अपनी मुहब्बतको थामे रह। वरना ऐसी मुक्केबाजी जो जारी रही तो यह बत्तीसों गिरकर सचमुच मुझे तुम्हारा जोड़ीदार बना देंगे।"

वह—"क्या यही उल्टी-सुल्टी सुनानेके लिये मुझे बुलाया है?"

मैं—"वाह! वाह! मेरी क्या मजाल थी जो तुम्हे बुलाता। भला मैं कहीं तुम्हें ऐसी तकलीफ दे सकता हूं? तुम्हीं सोचो।"

वह—"आज पन्नासे साड़ी-धोतीके बहाने क्या कहला भेजा था?"

अब याद आया। पन्नाने नहीं, हाँ अलबत्ता उसके छोटे भाईने आज मुझे रास्तेमें टोककर कहा था, "अम्माने तुमसे धोती मांगी है।" मैं जल्दीमें था इसलिये इसका जवाब

यह देखकर कि "तेरी अम्माके मुंहमें जबान न थी जो तुझसे कहला भेजा" मैं चलता बना। पन्ना भी साथ रही होगी और उसीने अपने भाईको मुझे रोकनेके लिये सिखलाकर खुद आडमें छिप गई होगी। इसीलिये मैंने उसे नहीं देखा। मगर यह छेड़खानी उसीकी थी। या अपनी मांके कहनेसे ऐसा किया, इसको जांचने और अपने मतलबका एक हल्का रंग छिड़कनेके लिये मैंने यों कहा—

मैं—"पहिले पन्नासे सामना तो कराओ तो बताऊं क्या कहला भेजा था; क्योंकि मैं पीठ पीछे किसीको झूठी नहीं कहना चाहता।"

वह—"रहने दो। मैं जान गई तुम्हें।"

मैं—"तुम ऐसी चाहनेवाली अगर न जानेगी मुझे तो और भला मुझे कौन जान सकता है?"

वह—"फिर नहीं मानते? मैं अभी चली जाऊंगी।"

मैं—"इस अन्धेरी रातमें अकेली? नहीं नहीं, मैं ऐसा हत्यारा नहीं हूं। मैं लालटेन लेकर आदमी साथ किये देता हूं।"

यह कहकर मैंने नौकरको जोरसे पुकारा। यह सुनते ही वह आग हो गई। उसकी आंखोंसे चिनगारियां निकलने लगीं, दांत पीसकर बोली—

"तुम तो ऐसे हत्यारे हो कि तुमसे भगवान समझें। अच्छा।"

यह कहकर वह गलीकी तरफ लपकी और नौकरके बाहर आनेतलक अंधेरेमे गायब हो गई।

---

[६]

"अरसपे इश्कमें सब हो गये ख्वाहां उसके।
लोग इशारोंसे बताते हैं वह माल अच्छा है॥"

लो, सब बना बनाया चौपट हुआ। क्या सोच रहा था और क्या हो गया। कहां इतनी मुश्किलोंसे मैंने पन्ना-को छांटकर अपने उपन्यासका इसीलिये 'मौडल' बनाया था कि इसे वातमें पाकर भी इसपर मेरा अत्याचारका हाथ क्यों नहीं उठा। और कहां इसकी व्यभिचारिणी मांकी संगतिका उसपर प्रभाव सोचकर मैं ही उस 'मौडल' को खुद अपने ही हाथोंसे नष्टभ्रष्ट करनेके लिये तैयार हो गया। पक्षीकी सुन्दरतासे चकित होकर उसकी बोली सुननेके लिये उसे पालना चाहता था, मगर चिड़ीमारके हाथमें उसे देखते ही मेरी नीयत बदल गई। उसके लिये पिंजड़ा बनानेके मेरे सब मनसूबे खाकमें मिल गये और

और उसे जबह करनेके लिये अब मैं छुरी ढूंढने लगा। मैं पन्नाको देखना चाहता था, उससे मिलकर उसके हृदयकी थाह लेना चाहता था, केवल अपने उपन्यासकी पूर्तिके लिये। मगर अब मैं उससे मिलना चाहता हूं तो अपनी पापिनी आत्माके संतोषकी खातिर। मगर मुश्किल यह है कि इसकी मां मुझसे नाराज हो गई। इसी कम्बख्तने आकर मेरा 'मौडल' भी बिगाड़ा और मेरे रास्तेमें कांटा भी बो दिया। अब क्या करूं ?

"न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधरके हुए न उधरके हुए"

मैंने अपने उपन्यासको ज्यों-का-त्यों लपेटकर बकसमें बन्द कर दिया और बिस्तरेपर पड़े-पड़े सोचने लगा कि किस तरह पन्नाको अपने पंजेमें करूं ? क्या इसके लिये किसीकी सहायता लूं या इसकी मांकी खुशामद करूं ? मगर यह दोनों बातें मुझसे नहीं हो सकती; क्योंकि उस जानवरको मारनेमें क्या मजा जिसे हंकुए घेरकर सामने कर दें। शिकारका आनन्द तो शिकारके पीछा करने और उसको खुद ही अपना निशाना बनानेमें है, न कि उसकी लाशमें। तभी तो अक्सर वह लोग भी जो मांसाहारी नहीं हैं शिकार खेलनेके शौकके लिये शिकार खेलते हैं। मैं आवारा, कामी, बदचलन सब कुछ हूं सही, फिर भी मैं

इतनी नीचता नहीं कर सकता कि किसीकी सहायता, दबाव, धोखा या दगाबाजीसे पन्नाको अपने वशमें करूं।

जिस तरह हर काममें उत्तम और नीचका भेद है। जैसे बात एक ही मगर एकको हम हत्या कहते हैं और दूसरेको बलिदान, एक खुशामद है तो दूसरा सम्मान; एकको छुरी चलानेके लिये हम सजा देते हैं और दूसरेको फीस; कहीं गालीसे हम आग हो जाते हैं और ससुरालमें गाली सुनकर हम रुपये देते हैं। उसी तरह काम-कलामें भी भेद है, क्योंकि हम एक कामीको (Debauche) दुराचारी या लम्पट कहते हैं और दूसरे कामीको (Gallant) रसिक। कर्म तो दोनों हीके एक हैं और बुरे हैं; फिर इसके लिये घृणित और उसके लिये प्रशंसनीय शब्द क्यों ? सिर्फ इसीलिये कि एकके हृदयमें कठोरता और दगाबाजी है और दूसरेमें मधुरता और विलक्षणता, एक जहर देकर अपना मतलब निकलता है और दूसरा गुड़ देकर। तभी तो रसिक कामीके लक्षण प्रेमियोसे बहुत कुछ मिलते हैं। फिर भी इसके भाग्यमे प्रेमियोकी तरह जलना,मरना या तड़पना बदा नहीं होता;क्योंकि रसिक कामीका हृदय (Romantic) विलक्षण और मधुर होनेपर भी इसके दिमागमें अपने मतलबका ध्यान सदा बना रहता है, परन्तु प्रेमीके दिमाग-

को प्रेम ऐसा काव्यमय और कल्पनामय कर देता है कि वहां मतलबका नामोनिशानतक नहीं रहता। वह अपनी प्रेमिकाको पूजता है और वह अपने स्वार्थको। इसीलिये रसिक अपने शिकारको मुग्ध करते हुए उसे अपने जालमें ला फंसाता है, परन्तु प्रेमी बेचारा दो-चार कदम चलकर खुद ही प्रेमजालमें फंसकर ऐसा पागल और और अन्धा हो जाता है कि फिर उसे अपनी ही खबर नहीं रहती।

अब मेरा दिमाग न तो प्रेमियोंकी तरह खराब था और न मेरे दिलमें लम्पटकी तरह दगाबाजी भरी थी। मैं तो प्रेम-पथसे भटककर कामपथपर चल रहा था, इसलिये मेरे हृदयमें कुवासना और स्वार्थका अधिकार भी हुआ तो मधुरता और विलक्षणताके साथ। तभी तो पन्नाको जबरदस्ती, धोखा या दगाबाजीसे अपनी मुट्ठीमें करना मेरे लिये असम्भव था, तब मैंने यह स्थिर किया कि रास्तेमें नजर बचाकर और उसकी मांके चुपचाप पन्नासे छेड़छाड़ करूं और इसके लिये कलसे मैं क्लब नये रास्तेसे नहीं, बल्कि पुराने और चक्करदार रास्तेसे जाया करूंगा, जिसपर अक्सर उससे पहिले मुठभेड़ होती थी। यह सोचकर मैं सो गया, मगर शामको "क्लब" जानेके वक्त मैं रातकी सोची हुई बात बिल्कुल भूल गया और मैं "क्लब" पुराने रास्तेसे

जानेके बदले फिर नये रास्तेसे चला गया; क्योंकि काम-तृष्णामें प्रेमिकाके लिये उतनी परवाह नहीं होती जितनी प्रेमपिपासामे।

उस दिन 'टेनिस' का खेल जल्दी खतम हो जानेसे मैं एक तरफ टहलने निकल गया। रास्तेमें मिस्टर गुरु मिले। उनके रंग ढंग और चालसे ऐसा मालूम होता था कि यह टहलने नहीं बल्कि किसी जरूरतसे कहीं जा रहे हैं, इसलिये मैंने उनका साथ छोड़ना चाहा। मगर मेरा यह इरादा देखते ही वह मेरे पीछे पड़ गये और मुझे अपने साथ जबरदस्ती ले चले।

घूमते घामते जब हमलोग उस फुलवारीके पास पहुचे जिसमें पन्नाका बाप काम करता था तब मुझे यकायक रातकी सभी बातें याद आईं और मैं चारों तरफ आखे फाड़-फाड़कर देखने लगा। इतनेमें एक आदमी यह गाता हुआ एक तरफसे निकला—

"बांकी रंगीली रसीली मलिनियां देखी है हमने निराली ना।
झूम झूम जाती है जोबनकी माती घूम घूम देती है गाली ना॥"

इस गानेसे न जाने क्यों मुझमें कुछ जलन पैदा होने लगी। वह गानेवाला एक गलीमें जाना चाहता था कि हम लोगोंको देखते ही झिझककर दूसरी तरफ मुड़ गया।

मिस्टर गुरु हमको लिये हुए उसी गलीमें घुसे जिसमें गानेवाला पहिले जाना चाहता था। सामने देखा कि पन्ना चटकती मटकती हुई जा रही है। बोटी बोटी फड़क रही है। रह रहकर ओढ़नी सम्हाल रही है तो भी सम्हाले नहीं सम्हलती। कमरमें लचक, चालमें थिरक, उसपर नौजवानीकी मस्ती। उफ! गजब ढा रही थी। गानेकी आवाज अभी तक सुनाई दे रही थी जिससे यह और भी मस्त हो रही थी, क्योंकि उसके कदम बहक रहे थे और वह हर कदमपर सौ सौ बल खा रही थी।

"यों अलबेली अकेली कहूं सुकुमारी सिंगारनि कै चलै कै चलै।
त्यों 'पद्माकर' एकनकै उरमें रस बीजनी वै चलै वै चलै।
एकनको बतराय कछू छिन एकनको मन लै चल लै चलै।
एकनको तकि घूंघटमें मुख मोरि कनौखिन दै चलै दै चलै।"

---

[१०]

"बेखुदी बेसबब नहीं गालिब।
कुछ तो है जिसकी परदेदारी है।"

पन्नाकी यह रंगत देखकर मेरी आंखोंमें खून उतर आया। अब मैं आगे बढ़ना नहीं चाहता था। तौभी

गुरुके हुरपेटनेसे मुझे तेज चलना ही पड़ा। हमलोग तुरन्त ही पन्नाके बराबर पहुंच गए। जैसे ही मेरी उसकी चार आंखें हुईं वह अपनी सारी अटखेलियां भूल गई। शर्म और झेंपसे कट गई। अपराधिनीकी तरह मानों वहीं गड़ गई। मैं बढ़ता हुआ चला आया। मगर गुरुजी धीरे-धीरे उसके बराबर चलने लगे।

मैं यही सोच रहा था कि पन्नाके ऊपर मुझे क्यों इतना गुस्सा आया। और मुझे देखते ही वह झेंपकर सहम क्यों गई। आखिर उसने अपराध ही क्या किया जिसके कारण वह डरी, झेंपी या सहमी। फूल खिलकर अपनी बहार दिखाया ही चाहें। उसकी सुगन्ध चारों तरफ फैलेहीगी। मधुमक्खीके झुण्ड उसपर दौड़ेहींगे। मैं भी तो मधुमक्खीकी तरह उसका रस लेना चाहता था। मगर उसकी शोभा देखते ही मैं भागा और मुझे देखते ही फूल सकुचा गया। क्यों? दोनों तरफ यह उल्टी बातें कैसी? इधर जलन है, उधर झेंप। इधर क्रोध है, उधर डर। आखिर क्यों?

कुछ देरके बाद गुरु महाशय मेरे मकानपर आये। इनको अब देखकर मेरे बदनमें और आग सुलग गई। मन-के भावको लाख दबानेपर भी मेरी बातोंमें चिनगारियां निकलने लगीं।

गुरु—"वाह! कैसी लाजवाब चीज है!"

मैं—"होगी। मुझसे मतलब?"

गुरु—"अरे! तो इतने जामेसे क्यों बाहर हुए जाते हो? मैं तो एक सीधीसी बात पूछता हूं, और तुम लगे झट अपनी सफाई देने। खूब!"

मैं—"तो फिर मुझसे क्यों पूछते हो?"

गुरु—"तब किससे पूछूं?"

मैं—"अपनी आंखोंसे। अपने दिलसे।"

गुरु—"क्या तुमने उसके आगे अपनी आंखें बन्द कर ली थीं?"

मैं—"अरे! यार परेशान न करो। मेरी तबियत ठिकाने नहीं है।"

गुरु—"कबसे, जबसे उसे देखा है?"

मैं—"फिर वही बात! ईश्वरके लिये उसके बारेमें मुझसे कुछ न कहो।"

गुरु—"क्यों? क्यों? क्या देखते ही उसपर ऐसे मरमिटे कि उसके सम्बन्धमें दूसरोंकी बातें तुमसे नहीं सुनी जातीं?"

मैं—"नहीं जी—"

गुरु—"बस रहने भी दो, ज्यादा सफाई देनेकी जरूरत नहीं है। मालूम हो गया, कुछ दालमें काला है।"

मैं इसका जवाब भी न दे पाया था कि इतनेमें मेरे कई मिलनेवाले आ गये। वैसे ही मिस्टर गुरु उठकर चल दिये। यार लोग न जाने क्या क्या बातें करते रहे। मैं बिना समझे बूझे सिर्फ मुंहसे हामें हां मिलाता जाता था, क्योंकि मेरे कानोंमें गुरुकी आखिरी बात गूंज रही थी। यकायक महेश बाबूके एक सवालने मुझे चौकन्ना कर दिया।

महेश—"क्यों उस्ताद! तुम अपनी पन्नाको न दिखाओगे? आजकल उसकी बड़ी तारीफें सुन रहा हूं।"

मैं—"भई, मेरी पन्ना कैसी?"

काली बाबू—"अरे यह उससे कहो जो इस बातको न जानता हो। इतनी खुदगर्जी दोस्ती अच्छी नहीं होती।"

रसिक मोहन—"बेशक! यह बातें भला कहीं छिपाए छिपती हैं?"

मैं—"भाई, नाहक राईको पर्वत बनाते हो। मुझसे उससे कोई सरोकार नहीं।"

कालीबाबू—"अब लगे उस्तादोंसे चाल चलने। तीन दफे तो मैं खुद अपनी आंखोंसे देख चुका हूं कि तुम्हें देखते ही वह शर्माकर छिप गई, आखिर क्यों? और तो नहीं वह किसीके सामने छिपती।"

रसिक मोहन—"इस बातकी ताईद तो मैं भी करता हूं।"

मैं—"इसकी मुझे जरा भी खबर नहीं। और अगर वह मुझे देखकर छिप भी गई हो तो इससे यही जाहिर होता है कि वह मुझसे नफरत करती होगी।"

महेश—"जी नहीं। इसकी वजह नफरत नहीं बल्कि शर्म है। अगर तुम दोनोंमें कोई छिपी बात नहीं है तो यह बिना वजह शर्म क्यों है? यह तो मुझसे बताइये।"

कालीबाबू—"बहुत ठीक। मैं हजरतका रंग ढंग बहुत दिनोंसे ताड़ रहा हूं। मगर अबतक मैं इसीलिये चुप था कि देखूं यह दोस्तोंका भी कुछ ख्याल करते हैं या नहीं।"—

रसिक मोहन—"अजी यह यों माननेवाले असामी नहीं हैं। दोस्तों हीका जो इन्हें ख्याल होता तो इस तरहसे गुल-छर्रे उड़ाये जाते कि हमलोगोंके कानोंकान खबर न हो। मगर यह मालूम नहीं कि चोर ज्यादातर अपनी ही चालाकीमें पकड़े जाते हैं।"

मैं—"अच्छा, आपलोग आज खूब मुझे चोर साबित करनेपर तुले बैठे हैं। जब उससे मुझसे कोई सरोकार ही नहीं तो क्या मैं आपलोगोंके कहनेसे कह दूं कि सरोकार है?"

महेश—"बस बस, बहुत ज्यादे बगुला-भगत न बनिये।"

ऐसी बातें दुनियाको दिखानेके लिये अनाड़ियोंके सामने कहा कीजिये या किसी सभामें व्याख्यान देनेके लिये या किसी अखबारमें लेख लिखनेके लिये रख छोड़िये। यह सब पाखंड वहीं अच्छे मालूम होंगे। यहां नही। यहां कौन किसको अच्छी तरह नहीं जानता यह तो कहिये। फिर इस बहानेबाजीसे क्या फायदा?"

कालीबाबू—"अजी सीधी-सी बात यह है कि यह अपनी खुदगर्जी छोड़कर हमलोगोंका भी ख्याल करें। वरना हजरत कुल रकमसे हाथ धोयेंगे; क्योंकि आजसे मैं पन्नाके पीछे पड़ूंगा। फिर यह रह जायेंगे मुंह ताकते। इतना मैं कहे देता हूं।"

कालीबाबूका एक एक शब्द जलता हुआ अङ्गारेकी तरह मेरे दिलमें घुसा। मैं तिलमिला उठा और घबराहटमें मेरी जबानसे निकल गया कि—"पन्ना पंचैती नहीं हो सकती। शेर अपने शिकारको अकेला ही खाता है, गीदड़ों-की तरह मिलकर नहीं।"

काली—"शेर या फिर कुत्ते।"

---

[११]

"कूवते इश्क भी क्या शै है कि होकर मायूस ।
जब कभी गिरने लगा हूं मैं सम्हाला है मुझे ॥"

हाय! मैंने यह क्या कह डाला। अपने मिलनेवालोंकी निगाहमें जिस बलासे मैं बचना चाहता था उसीमें मैंने अपने आपको फँसा दिया। अपने पैरोंमें आप ही कुल्हाड़ी मारी। अपनी बरबादी को और साथ-ही-साथ पन्नाका भी सर्व-नाश कर दिया। क्योंकि यों चाहे यह लोग उसके पीछे न पड़ते और पड़ते भी तो इस तरह नहीं जिस तरह अब जिदमें आकर हाथ धोके पड़ेंगे। आसमान जमीन एक कर डालेंगे। अब पन्नापर जो न अत्याचार हो जाये वही कम है। यद्यपि उससे मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी बात पड़ जानेसे इन लोगोंको मुझपर हमेशा थूकनेको हो जायेगा कि "देखा! इनकी! पन्नाको आखिर बाजारी बना ही दिया न? हम लोगोंसे छिपाकर उसे सात पर्देके भीतर रखने चले थे। उसका नतीजा पा गए।" हाय! यह मैं कैसे सहूंगा? सब सहा जा सकता है मगर बातकी चोट नहीं बरदाश्त होती। और खासकर उस बातकी जिसमें कलङ्क लगाने या पगड़ी उतारनेकी धमकी होती है।

फलतक यह बातें मुझपर कुछ भी असर नहीं कर सकती थीं। बल्कि अगर ऐसा कोई कहता भी तो मैं उसे उल्टे बेवकूफ बनाता। मगर आज पन्नाको देखनेके बाद न जाने क्यों मेरा दिमाग़ उबल रहा था कि दोस्तोंकी बातें आग सी लगीं। और गुस्सेमें आकर मैंने यह आफत नाहक अपने सरपर खड़ी कर ली। बुरा हो उस उपन्यास-का जिसके लिखनेके लिये पन्नाका ख्याल मेरे दिमागमें आया। और भाड़में जाये उसकी मां कम्बख्त जिसने उस ख्यालको काम-तृष्णामें बदलकर पन्नासे मिलनेके लिये मुझे और भी उत्तेजित कर दिया। अगर मैं अपने इतने विचार उसपर खर्च करनेके बाद अपनी काम-वासनाके बहकानेमें आकर उसको देखनेकी लालसा न रखता तो शायद उसका रंग-ढंग देखकर मेरे हृदयमें इतनी जलन न पैदा होती, क्योंकि फूलका मधुमक्खियोंसे घिरा रहना स्वाभाविक ही है। उसमें किसीके बापका इजारा क्या? मैं उसपर चिढ़ने या जलनेवाला कौन था? इसमें पन्ना या उसके चाहने-वालोंका अपराध क्या? जो कुछ दोष था वो बस उसकी सुन्दरताका।

हाय! वह कम्बख्त क्यों इतनी सुन्दरी हुई? उसकी सुन्दरतामें क्यों इतना रसीलापन है? यदि उसमें सुन्दरता-

का कुछ भी धंधा न होता तो कामियोंकी निगाह उसपर क्यों पड़ती ? झूठ, फरेब और बातों बातूके ताने मुझे क्यों सुनने पड़ते ?

अफसोस ! जिस सुन्दरतापर यह आज इतनी इतराती हुई है और जिसके कारण यह अपने चाहनेवालोंकी संख्या बढ़ती हुई देखकर फूली नहीं समाती, इसीपर एक दिन यह आठ आठ आंसू बहायेगी। क्योंकि चूंटीके पर और भिखमंगेके हाथमें दौलत, चूंटी और भिखमंगेकी मौतकी रजिस्ट्री नोटिस है। वैसे ही बरबादीकी निशानी इन लोगोंकी सुन्दरता भी होती है। इसीके लिये इनका अधःपतन होता है, इनकी नाक कटती है और जान भी जाती है। फिर भी यह दगाबाज सुन्दरता चार दिनसे अधिक इनका साथ नहीं देती, क्योंकि ऐसी छोकड़ियोंकी खूबसूरती आतिशबाजीकी तरह चकाचौंध फैलाकर झपसे उड़ जाती है। जितनी ही ये सुन्दरी होती हैं उतनी ही जल्द और उतनी ही अधिक ये भद्दी हो जाती हैं। अफसोस ! यही दुर्दशा पन्नाकी भी होनी है। कल्ह यह एक नन्हीं और अल्हड़ छोकड़ी थी। आज परीको भी मात-कर रही है। और फिर कल औरोंकी तरह यह भी चुड़ैल हो जायगी। आज जो इसे ललचाई हुई निगाहोंसे देख रहे हैं कल्ह वही इसे देखकर मुंह फेर लेंगे।

"जोबन थे जब रूप थे गाहक थे सब कोय ।

जोबन रतन गवाँयके बात न पूछे कोय ॥"

इसकी जिस सुन्दरतापर कभी मेरा भी मन मुग्ध होता था उसीपर आज मुझे इतना सोच और अफसोस है। क्यों? ईश्वर जाने कुछ घड़ी पहिले मेरा क्रोध केवल पन्ना ही पर था। यहांतक कि गलीमें जब मिली थी तो उसकी तरफ घूमकर ताकना भी मुझे नागवार था। और उस वक्त मैंने यह भी दिलमें ठान लिया था कि इसको फिर कभी न देखूंगा। मगर अब अपने मिलनेवालोंके ताने सुनकर मेरे हृदयमें एक अजीब खलबली उठी जिसके कारण मेरे क्रोधका वेग कई धाराओंमें फूटकर कुछ पन्नाके रंगढंग, कुछ उसकी सुन्दरता, और कुछ उसकी मां और उसके चाहनेवालोंकी तरफ फैल गया। और इस प्रलयमें पन्नाको डूबती हुई देखकर मेरी आत्मा छटपटाकर चिल्लाने लगी कि इसे बचाओ, बचाओ।

अय! मेरे ख्यालातमें यह यकायक कायापलट कैसी हो गई? क्या उसकी खरी सुन्दरताके कारण जिसको अंग्रेजी कवियोंने (Rustic beauty) ग्रामीण सुन्दरताके रूपमें बखान किया है? क्योंकि इसमें स्वास्थ्यका पूर्ण विकाश, और बनाव-चुनावकी बाधाओंसे रहित होनेके

कारण प्रकृतिकी स्वाभाविक छटाकी पूरी बहार होती है। इसीलिये जिसको कवियों और चित्रकारोंने सुन्दरताका आदर्श माना है; क्या इसी आदर्शको कामियों द्वारा अति शीघ्र नष्ट होनेका अनुमान करते ही मेरा कवित्व-अंश उसकी रक्षाके लिये मुझे उभार रहा है? या अपनी बातकी रक्षाके लिये कि पन्ना पंचैती नहीं हो सकती, या डाहकी जलनसे, या स्वार्थ भावसे, या अपने हृदयकी दबी हुई स्वाभाविक कोमलताकी प्रेरणासे—मेरे मनमें यह भाव पैदा हुआ? आखिर मैं भी तो उन्हीं कामी कुत्तोंमें हूं जो उसे उसकी सुन्दरताको चिचोरकर फेंक देनेवाले हैं। मेरी भी तो नीयत वैसी ही है। फिर क्यों यह परोपकारी विचार मेरे अन्धकारमय हृदयमें उदय हुआ, इसका ठीक निर्णय नहीं कर सकता। उसके उत्तरमें बस गुरुके अन्तिम शब्द कि 'कुछ दालमें काला है।' मेरे कानोंमें फिर गूंज उठे और मैं पन्नाके उद्धारका उपाय सोचने लगा।

मगर इसको मैं नेक राहपरसे भटकनेसे किस तरह रोकूं? अगर वह पढ़ी-लिखी होती तो शायद भले-बुरेका ज्ञान उसके कुछ काम आता। धार्मिक होती तो पाप-पुण्यका डर उसे बदीसे बचाता। समझदार होती तो कर्तव्योंका विचार उसे समझाता। पर्देवाली होती

तो पर्दा ही थोड़ी-बहुत उसकी मदद करता। मगर यहां तो एक तिनकेका भी सहारा नहीं और उसपर घरहीमें सबसे जबरदस्त कुटनी उसकी मां ही मौजूद है। ऐसी हालतमें कालीबाबू और महेशबाबू ऐसे गुरु-घण्डालोंका वार रोकना मेरे सामर्थ्य और शक्तिके बाहर है। मैं किसी तरहसे भी उसे बुराईसे नहीं बचा सकता। और अगर मैंने उसे अच्छी राहपर लानेकी कोशिश भी की तो हाय! फिर मेरी कामना कैसे पूरी होगी? मैं अच्छा मांसाहारी हूं कि इधर मांस-भक्षणके लिये मेरी राल टपकी पड़ती है और उधर पक्षीको चिड़ीमारोंके जालसे भड़का देना भी चाहता हूं। चिड़िया जहाँ चौकन्नी हो गई फिर काहेको मेरे जालमें फँसने लगी। खैर, कुछ हो। बला-से, मेरे मनोरथोंका खून हो तो हो, मगर अब तो पन्नाको उबारना ही पड़ गया। और किसी ख्यालसे नहीं तो कम-से कम अपनी बात निवाहनेके लिये। इसलिये अब पन्नासे मेरा मिलना जरूरी मालूम हुआ। क्या कहना है! बदचलन चला है दूसरोंको बदचलनीसे बचाने।

मगर उससे मिलूं तो कहां और किस तरह? उसके घर जा नहीं सकता। लोग क्या कहेंगे? और जाऊं भी तो कोई फायदा न होगा, क्योंकि उसकी मां ही मेरी दुश्मन

ठहरा। वह कभी उससे मुझे बाततक करने न देगी। गलियों-में इतना मौका नहीं कि मैं उससे कुछ कह सकूं। क्योंकि अव्वल तो उसकी मां ज्यादेतर उसके साथ रहती है और दूसरे सैकड़ों निगाहें उसकी हरवक्त पीछा करती रहती हैं। और इन मुश्किलोंसे सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि मुझे देखते ही वह भाग जाती है। तो फिर क्या करूं?

यही सब सोचते हुए सारी रात कट गई। कभी आंखें बन्द भी हुईं तो स्वप्नमें भी पन्नाका ध्यान बना रहा। सोकर उठा तो दिमागमें वही ख्याल और दिलमें वैसी ही जलन थी। कोशिश करनेपर भी इस ख्यालको हटा न सका। शाम होते ही मैं रैकेट लेकर पुराने रास्तेसे क्लब' को चला। खेलनेके लिये नहीं, बल्कि खासकर पन्नासे मिलनेके लिये। क्योंकि आज मेरे दिलमें कलकी ऐसी लापरवाही न थी। दोस्तोंकी तानाभरी बातें मेरे कलेजेमें बरछियां चला रही थीं। कदम-कदमपर पन्नापर मेरा गुस्सा भड़क रहा था। उस वक्त जीमें यही आ रहा था कि अगर वह कहीं अकेली मिल जाय तो उसका गला घोंट दूं, ताकि न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। वाह जी! मिजाज! एक पराई लड़कीपर इतनी गर्मी दिखानेका तुम्हें क्या अधिकार है? मिस्टर गुरुकी आखिरी बात फिर कानोंमें गूञ्ज उठी।

संयोगवश उधरसे पन्ना अकेली आ रही थी। उसे दूर ही से देखते ही मेरे दिलमें एक खलबली-सी उठी, जिसमें कुछ गुस्सा और कुछ मिलनकी उत्कण्ठा दोनों ऐसे मिले जुले थे कि समझमें न आया कि लौट पड़ूं या आगे बढ़ूं। खैरियत इतनी थी कि मैं पेड़ोंकी आड़मे था। वरना मुझ-को देखकर वह खुद ही कतराकर दूसरे रास्तेसे निकल जाती और मैं अपनी समस्याको बिना हल किये ज्योंका त्यों वहीं खड़ा मुंह देखता रह जाता। मगर ज्यों-ज्यों वह नजदीक आने लगी त्यो-त्यों मेरे कदम मुझे उसकी नजरोंसे बचाते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। यकायक मेरा उसका सामना हो गया। आंखें लड़ते ही पहिले तो वह झिझकी; फिर खिल उठी। मुस्कुराहटकी एक रेखा उसके ओठोंपर नाचने लगी। मगर तुरन्त ही शर्मने उसका सर झुका दिया और चेहरेपर गम्भीरता लिये हुए कुछ मुर्दनी छा गई। वह डाह जो मेरे दिलको जला रही थी, वह गुस्सा जो मेरे दिमागको खौला रहा था उसकी एक ही शर्मीली और रसीली निगाहपर न्योछावर हो गये।

"दिलसे तेरी निगाह जिगर तक उतर गई।
दोनोंको यक अदामें रजामन्द कर गई॥"

मैंने जब कभी इससे बातें की थीं तो वह बिल्कुल

लापरवाहीकी होती थीं। मगर आज न जाने क्यों मेरी आवाजमें दर्द और मुलायमियत आ गई और जबान लड़-खड़ाने लगी। इसलिये कहना चाहता था कुछ, और कह गया कुछ और ही।

मैं—"अरी पन्ना! आजकल तू कहां रहती है?"

पन्ना—"और तुम कहां रहते हो?"

मैं—"बहुत दिनोंसे तू मेरे घर भी नहीं आई?"

पन्ना—"गई तो कई दफे मगर तुम्हें क्या खबर?"

मैं—"अच्छा अब आओगी?"

पन्ना—"क्या करने? तुम तो—'

दूर निकल गई। इसके बाद उसने कुछ कहा या चुप हो गई पता नहीं। हां, एक दफे मुड़कर देखा। मगर शर्मा-कर जल्दीसे दूसरी गलीमें भाग गई। मैं उसी जगह पेड़-का सहारा लेकर खड़ा हो गया और जूता बांधनेके बहाने उसी तरफ देखता हुआ उसके मुस्कुराते हुए चेहरेको सोचता रहा।—

"करिको चुराई चाल, सिंहको चुरायो लंक,
 ससिको चुरायो मुख, नासा चोरी कीरकी।
पिकको चुरायो बैन, मृगको चुरायो नैन,
 दसन अनार, हांसी बीजरी गम्भीरकी।

कहै कवि 'बेनी', बेनी ब्यालकी चुराइ लीनी,
रही रती शोभा सब रतिके शरीरकी।
अब तो कन्हैयाजूको चित्तहू चुराय लीन्हों,
छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीरकी॥"

---

[१२]

"मिलें भी वह तो क्योंकर
आरज़ू बर आयेगी दिलकी।
न होगा खुद ख़याल उनको
न होगी इल्तजा मुझसे॥"

उस दिन खेलनेमें तबियत न लगी। घरपर किसीसे बातें करनेको भी जी नहीं चाहा। खाने बैठा तो ध्यान खानेपर न था। काली बाबूके यहां जलसेमें जाना भूल गया। उनका आदमी मुझे बुलानेके लिये उनका पत्र लेकर आया। मैंने खतको फाड़कर टुकड़े टुकड़े कर दिया और कहला भेजा कि तबियत अच्छी नहीं है।

शरीर चंगा है। फिर यह मुर्दनी क्यों है? मुर्दनीके साथ कुछ बेचैनी भी है। दिमागमें रह-रहकर पन्नाका ख्याल उठ रहा है। उसका हंसता हुआ मुखड़ा, उसकी

रसीली चितवन, उसकी बांकी अदाएं आंखोंके सामने नाच रही हैं। अब तो न दिलमें जलन है और न गुस्सा है। केवल उससे फिर मिलनेके लिये तबियत छटपटा रही है। उसको नसीहत देने या फटकारनेके लिये नहीं, बल्कि मेरी आत्मा उससे मिलनेके लिये स्वयं व्याकुल हो रही है। मगर क्यों? समझमें नहीं आता। उससे मिलकर क्या कहना चाहता हूं, यह भी नहीं बता सकता।

मुझे इस उधेड़बुनमें देखकर मेरी कामवासना मुस्कुराकर चुपकेसे बोली कि यह मुझसे पूछो तो बताऊं। ठीक है अब मालूम हुआ कि यह सब इसीकी करामात है। फिर क्या था? कारणका पता पाते ही मेरी बदनीयतीकी दबी हुई आग भड़क उठी। उसमें पन्नाके सुधारके ख़्याल सब खाक हो गए। और मेरी पापिनी आत्मा उसे अपने जालमें फँसानेके लिये मुझे सैकड़ों ही तरकीबें बताने लगी। मैं भी उनपर अमल करनेके लिये बड़े ध्यानपूर्वक सुनने लगा। क्योंकि मैं तो पुराना पापी था ही, फिर मुझे एक नया पाप करनेमें हिचकिचाहट क्यों होती?

मगर दूसरे दिन जब वह 'क्लब' के रास्तेमें मुझे फिर मिली, मेरी एक भी तरकीब काम न आई। मैं जबान हिलानेकी कोशिशहीमें रहा और वह पाससे दूर निकल भी

गई। इसी तरह कई दिन बीत गए मगर उससे बात करनेकी नौबत न आई। जब कभी वह मुझे दूरहीसे देख लेती थी तब वह वहांसे कतरा जाती थी और जब मैं आड़में छिपता हुआ उसके सामने पड़ जाता था तो मैं उससे कहनेके लिये अपनी कुल सोची हुई बातें भूल जाता था। मुझे अपने इस बादेपन और कमहिम्मतीपर बड़ी झुंझलाहट मालूम होती थी, और ताज्जुब करता था कि मैं उसके सामने क्यों इस तरह बौखला जाता हूं कि उससे एक बात भी नहीं कह पाता।

उस वक्त मैं यही सोचकर रह जाता था कि मेरी यह हालत बातें करनेका काफी मौका न होनेके कारण हो जाती है, क्योंकि अव्वल तो राह चलते बातें करना और उसपर यह ख्याल कि दूसरा कोई जानने न पावे, हर हृदयमें घबराहट पैदा कर देते हैं। इसमें कोई अचरजकी बात नहीं है।

आखिर एक दिन वह मुझे उस गलीमें न मिली। खेलमें कुछ भी जी न लगा। इसलिये मैं 'क्लब' से उस दिन जल्दी लौट आया। जब घरके पास पहुंचा तो पन्नाको अपने घरसे निकलती हुई देखा। साथमें उसकी मां भी थी। इसलिये उस वक्त कुछ बोलना मैंने मुनासिब नहीं समझा। हां, आंख भरके उसे देखा जरूर। उसने भी मुझे उसी तरह

देखा। मगर उसकी आंखें डबडबाई हुई थीं। निगाहसे हसरत बरस रही थी। चेहरेपर मुर्दनी छाई हुई थी। मैं जहांका तहां खड़ा रह गया। उसने एक दफा फिर मुड़कर देखा और निगाहोंकी ओट हो गई। मैं भी भीतर चला गया और जाकर न जाने क्यों पलंगपर लेट गया। लेटे लेटे घन्टाभर हो गया। शामकी अन्धियाली गहरा गई। मगर मेरे चित्तकी उचाट दूर न हुई, बल्कि अब और भी परेशानी बढ़ने लगी। यहांतक कि मैं मकानसे बाहर निकल आया और अकेले सड़कपर टहलने लगा। एकाध राही रह-रहकर आते जाते थे जिनसे मेरे ध्यानमें कुछ भी बाधा नहीं पहुंचती थी। मगर तुरन्त ही सामनेसे किसीको आते हुए जानकर यकायक मेरा दिल धड़क उठा। अन्धियालीके कारण मैं अभी ठीक तौरसे निर्णय भी न कर सका कि आनेवाला पुरुष है या स्त्री। फिर भी दिल बोल उठा कि हो-न-हो यह पन्ना है। वह व्यक्ति बड़ी चुलबुलाहटके साथ आकर मेरे मकानके पास ठिठुका। कुछ देर रुका। फिर लौटा और मन्द गतिसे चलने लगा।

शामका वक्त, सनाटा, अंधियाली और एकान्त, उसपर पन्नाका पास ही अकेली होनेका ख्याल! बस क्या था मेरी कुवासनाओंकी बारूदमें यकायक आग ही तो लग

गई। वह मुर्दनी और उदासी जो अभीतक मुझे घेरे हुए थी, वह घबराहट और बौखलाहट जो दिनमें पन्नासे गली-में मिलनेके वक्त मेरे दिलमें पैदा हो जाती थीं मुझे छोड़-कर इस समय कोसों दूर भाग खड़ी हुईं। मैं एक शैतानी जोशमें बिल्कुल अन्धा हो गया। भले-बुरेका ज्ञान परोप-कारका विचार, पन्नाको सुधारनेका उद्योग, अपने उप न्यासके मौडलके नष्ट होनेका ख्याल सब धूलमें मिल गये। मेरे पापी चलनके आगे मेरे हृदयकी स्वाभाविक कोमलता दबकर छिप गई। और मैंने उस मन्द गतिसे जाते हुए ढांचेका पीछा किया।

ज्योंही मुझे उसकी चालसे विश्वास हुआ कि यह पन्ना ही है मेरे कदम और भी तेज पड़ने लगे। मेरे खूनमें एक अजीव गर्मी पैदा हो गई। दिलमें धड़कन, बदनमें कप-कपी और सांसमें तेजी आ गई। और मनमे एक दृढ़ संकल्प उठने लगा कि आज पन्ना मेरे पंजेमें किसी तरह निकल नही सकती। मैं शिकारी और शिकारियोंका गुरु-घंटाल! मेरी ताकी हुई चिड़िया मेरे जालमें फंसकर उड़ जाए? भूखे शेरकी मांदमें हरिणी आकर लौट जाये? गैर मुमकिन है। फिर मैं उसे ऐसे सुअवसर वा कुअवसरमें पा-कर किस तरह छोड़ सकता था। आखिर लपककर मैंने

उसका हाथ पकड़ ही लिया। वह घबड़ा उठी और चौंख-लाकर बोली—

पन्ना—"कौन?......अरे! तुम हो।"

मुझे पहचानते ही उसकी घबड़ाहट जाती रही और वह शांत भावसे खड़ी हो गई। मगर मैंने अभीतक उसका हाथ नहीं छोड़ा।

मैं—"हां। अब बोलो।"

पन्ना—"नहीं। छोड़ो।"

अब लगी वह नखरेसे हाथ छुड़ाने। कभी झुंझलाती; कभी विनती करती, कभी हाथ झटकती और कभी बल-खाती थी। मगर जिस तरफ वह सरककर भागना चाहती थी उस तरफ वह हर बार अपनेको मेरी गोदहीमें पाती थी तब अन्तमें वह हारकर बोली।

पन्ना—"उंह! छोड़ो भी। दिक न करो।"

मैं—"तुम तो मुझसे बहुत भागती थी। अब भगो तो जानूं।"

पन्ना—"हाय! कहाँ भागती हूं?"

न जाने इस जुमलेमें कौन-सी बात थी, और उसके कहनेका कौनसा ढंग था कि मेरे शैतानी जोशपर यका-यक पानी पड़ गया। जो कुछ कामके नशेमें मुझमें कठो-

रता आ गई थी वह एकदम लापता हो गई। मैं जो उसे अभी अपने वशमें करना चाहता था उसका हाथ छोड़कर खुद ही पराधीन हो गया, और चुपचाप उसका मुंह निहारने लगा। मेरे उत्तम और कोमल भाव जिन्हें कामने दबा रखा था वह सब उभर उठे और मुझे धिक्कारने लगे। कुछ घड़ी पहिले मैं क्या था और अब मैं क्या हो गया। जो बात इस समय सैकड़ों धर्म, उपदेश ज्ञान या पहरेकी रोक-टोककी शक्तिसे बाहर थी उसे इस छोटेसे जुमलेने कर दिखाया। इसने कौन-सा जादू मेरे हृदयमें फूंक दिया कि दमके दममें मैं बदल गया। मैं अब वह आवारा कामी न रहा। न मेरा वह जोश ही रहा और न वह मेरी नीयत रह गई। जमीन आसमान हो जाए! अमावसकी अन्धियालीमें पूर्णिमाकी चान्दनी छिटके! पापीके हृदयमें धर्म और ज्ञानकी ज्योति चमके! बेईमान ईमानदारी करे! कामी नेकचलनीकी राह ले! कितना असम्भव है? मगर यहां असम्भव भी सम्भव हो गया।

अभी-अभी मैं किस गुस्ताखीसे हाथापाई कर रहा था और अभी पलक मारते ही मैं काठके पुतलेसे भी बदतर हो गया! जो हाथ घातमें शिकारको पाकर चूकना जानता ही न था अब ऐसा बेकाम हो गया कि लपझप करनेकी

कौन कहे, पन्नाकी ओढ़नी तक छूनेकी भी इसे हिम्मत नहीं रही। जो जवान शोख तर्रार और गम्भीर औरतोंकी नीयत अपनी चिकनाहटसे फिसला देती थी अब वह हिलाए नहीं हिली। फिर क्या करता? और कहता भी तो क्या? यहा तो अपने स्वार्थसाधनके सभी ख्याल दिमागसे रफू-चक्कर हो गये। अपनी इच्छा, अभिलाषा और कामना तो दूर रही मैं अपनी स्थिति तक भूल गया। याद रहा तो सिर्फ यही कि पन्ना सामने खड़ी है। और कुछ नहीं।

"कुछ समझही में नहीं आता यह क्या है 'हसरत'।
उनसे मिलकर भी न इज़हार तमन्ना करना॥"

मैं समझता था कि मेरे हाथसे छूटते ही पन्ना भाग जायगी। मगर वह भागी नहीं, बलिक अबतक वैसी ही खड़ी रही। और बिल्कुल मेरे नजदीक। अन्धेरेमें उसकी सूरत साफ नहीं दिखाई देती थी। तौभी इतना मैं जान गया कि वह बहुत रंजीदा है, और शायद रो भी रही है। उसकी इस हालतसे मैं और भी मारे शर्मके कट गया और मेरे दिलमें हद दर्जेकी चोट-सी लगी। यहांतक कि मेरी आवाज जिसमें अबतक शोखी टपकती थी अब हार्दिक पीड़ासे भर्रा उठी।

मैं—"पन्ना, माफ कर। ईश्वरके लिये माफ कर। मुझसे बड़ी गल्ती हुई। मैं बड़ा ही बेहूदा हूं।"

पन्नाने बोलनेकी कोशिश की, मगर गला रूंधा हुआ होनेके कारण बोल न सकी।

मैं—"क्या तुम नाराज हो गई ?"

अब भी नहीं बोली। मगर सिर हिलाकर बताया कि 'नहीं'।

मैं—"तो फिर रोती क्यों हो ?"

पन्ना—"ऐसे ही।"

कुछ राही आ रहे थे। मैं हटकर पेड़की अन्धियालीमें आ गया। पन्ना भी मेरे साथ हट आई। इस समय उसका मुझपर यह विश्वास देखकर मेरा हृदय और भी चोटीला हो गया।

मैं—"देखो पन्ना, जब मैं खुद अपने कियेपर पछता रहा हूं और माफी मांग रहा हूं तब तुम रोकर मेरे दिलको क्यों और दुखा रही हो ?"

पन्ना—"कहां रोती हूं। मैं कोई रोनी हूं जो रोया करूं ?"

उसने अपनी आवाज सम्हाल ली थी। फिर भी उसमें कुछ कपकपी थी। इतना कहकर उसने हंसनेकी भी कोशिश की। मगर उसमें भी मायूसी टपक रही थी।

मैं—"अच्छा, तुम इधर आज अकेली और बेवक्त कहां जा रही थी ?"

पन्ना—"अपनी फुलवारी देखने।"

मैं—"खूब! यह भी कोई वक्त है फुलवारी देखनेका?"

पन्ना—"क्या करती? मेरे लिये और कोई वक्त ही नहीं है।"

मैं—"क्यों?"

वह कुछ न बोली।

मैं—"हां हां, बोलो।"

पन्ना—"क्या बोलूं? एक घण्टेमें मुझे लोग ले जायेंगे।"

फिर उसका गला रुंधने लगा और मेरी तबियत बेचैन हो गई।

मैं—"कौन ले जायेगा और कहां?"

पन्ना—ससुराल वाले"—आगे न बोल सकी।

मुझे नहीं मालूम था कि पन्नाकी शादी हो चुकी है। इसलिये यह सुनते ही मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसीने मेरे दिलमें आग लगा दी। और उसपर यह जानकर कि वह कलसे दिखाई न पड़ेगी, मैं और भी तड़प उठा।

मैं—"हाय! तो क्या कलसे तुम मुझे देखनेको न मिलोगी?"

पन्ना—"मैं बहुत जल्द भाग आऊंगी। मैं सच कहती हूं दो दिनसे ज्यादा वहां न रहूंगी।"

मैं—"अच्छा पन्ना, जाओ, अपनी फुलवारी देख आओ।"

पन्ना—"अब न जाऊंगी।"

मैं—"डरो मत, अब मैं पीछा न करूंगा।"

पन्ना—"नहीं। देर हो गई है। मैं चुपचाप अपने घर-से भागकर आई थी। अब जाती हूं। भूला चूका माफ करना।"

मैं—"क्यों मुझे शर्माती हो ? कसूरवार तो मैं हूं।"

पन्ना—"लो रहने दो। बहुत न बनाओ।"

मैं—"सुनो तो। तुम्हारा इस वक्त अकेली जाना ठीक नही। तुम नहीं जानती तुम्हारे पीछे कितने लोग घूम रहे हैं।"

पन्ना—"अच्छा तो तुलसी जो तुम्हारे यहां काम करती है उसकी छोटी बहनको मेरे साथ कर दो।"

मैं—"और मैं किस दिन काम आऊंगा ?"

पन्ना—"नहीं नहीं। तुम्हें तकलीफ होगी। और दूसरे कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?"

मैं—"जिसे तुम तकलीफ समझती हो वह मेरे लिये हद दर्जेकी खुशी है। और किसीके देखनेका डर फजूल है, क्योंकि मैं सड़कसे नहीं बल्कि अन्धेरी गलियोंसे तुम्हें ले चलूंगा। कोई पता भी न पायेगा।"

पन्ना—"जाओ, तुम आराम करो। मैं चली जाऊंगी।"

मैं—"अगर तुम मुझसे डरती हो तब तो कुछ कहना ही नहीं है। वरना—"

पन्ना—"अगर यह बात है तो जैसी तुम्हारी मर्जी।"

मैं उसका हाथ अपने हाथमें लिये अन्धेरी, तंग और सुनसान गलियोंसे चला। उसका रंज जाता रहा और मेरी बेचैनी भी दूर हो गई। दोनों ही आनन्दमें मस्त थे। मौजूदा खुशी हमेशा अगले पिछले रंजको भुला देती है। रास्ता बड़ा चक्करदार था। फिर भी ऐसा जान पड़ा कि हम लोग दो ही कदममें उसके मकानके पास पहुंच गये। तब तो हाय! उस समय सब रंग-रेलियां भूल गईं और मेरे दिलसे एक आह निकल पड़ी। उसने भी बड़ी हसरत-से कहा।

पन्ना—"अच्छा, अब जाओ।"

मैं—"अच्छा, जाती तो हो, मगर एक चीज लेती जाओ।"

पन्ना—"क्या है?"

मैं—"मेरे कसूरका जुरमाना।"

यह कहकर मैंने अपनी जेबमें हाथ डाला। संयोगसे पांच रुपये निकल आये। उनको कागजमें लपेटकर मैंने

उसके हाथपर रख दिया। उस समय अगर मेरे पास हजार रुपये भी होते तो वह सब पन्नापर न्योछावर कर देता।

पन्ना—"यह तो रुपये हैं। नहीं, यह मैं नहीं लूंगी।"

उसने यह कहकर रुपयोंको मुझे लौटाल दिया। मैंने उन्हें उसको ओढ़नीमें जबरदस्ती बांधकर कहा—

मैं—"रख भी ले। वक्तपर काम आयेंगे। मगर पन्ना, एक बातका मुझे बड़ा अफसोस है कि तू अपने शौककी चीज देखने जा रही थी, मगर मेरी वजहसे न देख सकी।"

पन्ना—"खैर जिसे देखना चाहती थी, उसे तो देख आई।"

यह कहते कहते वह झेंप गई। फिर तो न जाने मुझमें कहांसे हिम्मत आ गई कि मैंने उसे अपनी गोदमें उठाकर हृदयसे लगा लिया और उसने भी अपना सर मेरी छाती-पर झुका दिया।

---

[१३]

"लै सुखसिन्धु सुधामुख सौतिके,
आए इतै रुचि ओठ अमीकी।
त्यों ही निसंक लई भरि अंक
मयंकमुखी सु ससंकित जीकी।

जानि गई पहिचानि सुगन्ध,
कछू घिन मानि भई मुख फीकी।
ओछे उरोज अंगोछि अंगोछनि,
पोंछति पीक कपोलनि पीकी ॥"

सूखते हुए पौधे बरसातकी छींटोंसे जैसे लहलहा उठते हैं, वैसे ही मेरी बरसोंकी मुरझाई आत्मा आज पन्नाके गले लगानेसे खिल उठी। जो वास्तविक और हार्दिक आनन्द उसके गालके एक पवित्र चुम्बनमें मिला वह अब-तक मुझे अपनी कुल आवारगीकी जिन्दगीके सम्पूर्ण भोग-विलासमें न मिला था। आखिर इतनी खुशी मुझे पन्नाके मिलनेसे क्यों हुई? क्या मैं उससे प्रेम करता हूं? क्योंकि प्रेमीको अपनी प्रेमिकाकी एक मीठी चितवनसे जो सन्तोष होता है वह कामीको नहीं। इसलिये अगर सचमुच प्रेम ही करने लगा हूं तो उसके बिछुड़नेका मुझे रञ्ज क्यों नहीं है? उसके ससुराल जानेका ख्याल मुझे डाहकी अग्निमें एकदम भस्म क्यों नहीं कर देता? जो कुछ जलन मेरे हृदयमें पैदा भी हुई थी उसपर उसके चुम्बनने तो आनन्दका ऐसा दरिया बहा दिया कि इस वक्त मेरा हृदय स्वयं ही मस्त होकर उसमें डुबकियां लगा रहा है। यह प्रभाव यदि प्रेमका

नहीं है तो काम-भावका होगा। इसपर भी मुझसे हामी नहीं भरी जाती, क्योंकि उसको एकान्तमें और अपने वशमें पाकर भी मैं उसीके अधीन रहा। उससे अलग होनेपर मेरी नीयत डगमगाती जरूर है। यह अलबत्ता कामका लक्षण है, मगर उसके सामने मैं आवारगीके सभी हथखण्डे भूल जाता हूं और मेरी जबान और हिम्मत दोनों सटपटा जाती हैं। इसका कारण प्रेम अवश्य कहा जा सकता है। इसलिये पन्नाके लिये मेरे हृदयमें न स्वच्छ प्रेम ही है और न कोरा काम,। बल्कि एक अजीब गंगाजमनी भाव है जिसमें दोनोंका ऐसा हेलमेल है कि पता ही नही चलता कि किसका रंग अधिक चोखा है।

इसी तरह मैं अपनी मानसिक दशाकी आलोचना करता हुआ घर वापस आया, और आते ही अपने अधूरे उपन्यास-को उठाया। क्योंकि दिलकी मौजें अकेले सम्भाले नही सम्हलतीं। और मेरी खुशी ऐसी कि न किसीसे कहने योग्य और न हृदयके भीतर चुपचाप छिपा लेने योग्य। और दूसरे यह ख्याल कि ऐसे अवसरमें जो लेख लेखनीसे निकल जाते हैं वैसे फिर बरसों सर मारनेपर भी नही निकलते। और मैं तो केवल इसीके लिये इस झमेलेमें आ फँसा था। तब भला ऐसा सुयोग्य अवसर पाकर मैं अपनी

लेखनीसे चुहलें करनेसे, कैसे बाज रह सकता था। और उसपर एक पन्थ और दो काज। उपन्यासकी भी पूर्ति और दिलके वलवले निकालनेका भी उपाय। मगर लिखता क्या! आनन्दकी लहरें मेरे विचारोंको तितिर-वितर कर रही थीं। कलेजा बांसों उछल रहा था। रह-रहकर बिना हंसीके हंसी आ रही थी। इतनेमें मेरी स्त्री मेरे पास आ पड़ी। मेरा मिजाज तो बहक ही रहा था। उसी मस्तीमें उसके गलेमें हाथ डालकर मैंने उसे अपने पास बैठाना चाहा। वैसे ही उसने रुखाईसे मेरा हाथ झटक दिया। बरामदेसे हुलसी मेरी स्त्रीका यह व्यवहार देखकर बड़े गर्वसे हंसी। मैंने आंख उठाकर देखा कि स्त्रीका चेहरा गुस्सेसे तमतमा रहा है और हुलसी भी दूरसे मेरी तरफ शेरनीकी तरह ताक रही है।

मैं—'क्यों? खैर तो है? आज यह रंग बेढब क्यों है?"

स्त्री—"तबियत ही तो है।"

मैं"—वाह री! आपकी तबियत! मैं प्यार करूं और आप झिड़कियां बतावें।"

स्त्री—"तुमसे प्यार करनेके लिये कहती कौन है?"

मैं—"यह खूब कहा। तुम न कहो न सही, मगर मेरा तो प्यार करनेको जी चाहता है।"

स्त्री—"तब मिहरबानी करके आप एक और शादी कर लीजिये।"

मैं—"आखिर शादी करनेकी जरूरत ?"

स्त्री—'यह मेरी हालतसे पूछो या अपनी छिछोरी आदतसे।"

मैं—"तुम रोज ऐसा ही कहके खुद भी कुढ़ती हो और और मुझे भी नाहक परेशान करती हो।"

स्त्री—"जब तुम जानते हो कि मैं अक्सर अपनी बीमारीके कारण तुम्हारी खिदमत नहीं कर पाती तो क्यों नहीं मेरी मददके लिये अपनी दूसरी शादी करते ?"

मैं—"वाह! वाह! मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त! मैं तो तुमसे किसी बातकी शिकायत नहीं करता। फिर तुम क्यों मेरी शादीके लिये इतनी परेशान हो ?"

स्त्री—"इसलिये कि जिस बगलमें मैं बैठती हूं, उसमें कमीनी छोकड़ियोंका बैठना मुझे किसी तरहसे गवारा नहीं है।"

मैं—"तो कौन किसको अपनी बगलमे बैठालता है ?"

स्त्री—"जादू वह जो सरपर चढ़के बोले। देखो अपनी कमीजकी हालत! यह सीनेपर पान खाए ओठोंके दाग! यह कन्धेपर सेन्दूरके धब्बे! और बांहमें चमेलीके तेलकी खुश्बू!"

हाय ! गज़ब ! यह क्या हुआ ? जो हालत चोरकी मय मालके पकड़े जानेपर होती है उससे भी बद्तर मेरी अपनी कमीजके धब्बोंको देखकर हुई। पन्ना आज गवने जानेके लिये बनी-ठनी थी। लिपटाते वक्त उसकी ओढ़नी सरक गई थी। उसका सर मेरे कन्धेपर झुक गया था। मुझे अंधेरेमें इन बातोंका कुछ भी ख्याल न रहा। अब मैं कौन सा बहाना करता। यह सेन्दूरका दाग तो लाख बहानोंसे भी नहीं छूट सकता। मगर वाहरी ! तकदीर ! जब हृदय और कर्म दोनों पापी थे तब तो किसीने मुझपर उंगली भी नहीं उठाई थी और जब मैं ज़रा नेकचलनीकी तरफ झुका तो घोर पापी समझकर पकड़ा गया ! इसीलिये तो अच्छाई नहीं, इस दगाबाज दुनियामें बुराई ही फलती है। अब मैं अपनी सैकड़ों सफाई देनेपर भी अपनी स्त्रीके ख्यालमें निर्दोष नहीं हो सकता। यह कमीजके धब्बे तो खूनके दाग-की तरह चिल्ला-चिल्लाकर मुझे खूनी बता रहे हैं।

करीब है यारो रोज महशर, छिपेगा कुश्तोंका खून क्योंकर।
जो चुप रहेगी जबान खंजर, लहू पुकारेगा आस्तीं का ॥

मुझे अपराधीकी तरह चुपचाप सर झुकाए हुए देख-कर तुलसीकी विजयपूर्ण हँसी बरामदेमें गूंजी। मेरे बदन-में और भी आग लग गई। मैं समझ गया कि यह सब

आफत उसीकी ढाई हुई है। तभी तो स्त्री पहिलेहीसे गुस्से-में भरी थी। यही कम्बख्त मेरे पीछे जासूसकी तरह पड़ी रहती थी। इसीकी वजहसे मेरी स्त्रीको मेरी सब बातोंकी खबर हो जाती है। मैं इसी सोचमें गर्दन झुकाए बैठा रह गया। जितना आनन्द नहीं अनुभव किया था उससे कहीं अधिक लज्जा और पश्चात्तापकी वर्छियां मेरे कलेजेको टुकड़े-टुकड़े करने लगी। और उधर मेरे उपन्यास साहब भी मेरी यह दुरगत देखकर अपनी फूटी किस्मत पर चुपके-चुपके आंसू बहाने लगे। इतनेमें मेरी स्त्री बटन खोलकर मेरे बदनसे कमीज उतारती हुई नर्मी और तानेसे बोली।

स्त्री—"मैं तुम्हें इन बातोंसे मना नहीं करती। मैं तो सिर्फ तुम्हें दिखाना चाहती थी कि मैं तुम्हारी छिछोरी आदतको अच्छी तरहसे जानती हूं।"

यदि इस समय मेरी कमीजकी तरह मेरी आत्मा भी कलुषित होती तब तो मेरे मुंहसे एक भी शब्द नहीं निकल सकता था। स्त्रीकी बातका जवाब मैं फिर क्या देता? मगर धन्य ईश्वर! मेरे पापी हृदयकी वह क्षणिक पवित्रता निष्फल नहीं गई। उसने इस समय मेरी पूरी सहायता की। इसीके प्रभावसे मुझमें आत्मबलका संचार हुआ और सर उठाकर स्त्रीसे बातें करनेकी मुझे हिम्मत हुई। बस,

इतना सहारा पाते ही मैं इस गर्मागर्मीमें ठंढककी बूंदें यों छिड़कने लगा।

मैं—"खैर! अब मैं क्या कहूं? मगर इसकी वजह भी तुम जानती हो?"

स्त्री—"हां, वजह इसकी मैं ही हूं। तभी तो—"

मैं—"हां, तुम ही हो। मगर जिस ख्यालसे तुम कहती हो उस ख्यालसे नहीं।"

स्त्री—"फिर किस ख्यालसे?"

स्त्रीका मिजाज कुछ ठंडा पड़ा। क्योंकि हाकिमके आगे यदि अपराधी अपना अपराध स्वीकार कर ले तो उसके क्रोधकी मात्रा कुछ कम होही जाती है। इसलिये अब जरा हवाका रुख बदलते देखकर मैंने भी मसखरा-पनकारङ्ग लिया।

मैं—"देखो, मेरे हाथमें कितनी रेखा हैं?

स्त्री—"दो हैं। मगर इस बातमें इनको मुझे देखानेकी जरूरत?"

मैं—"बताता हूं, यह शादीकी रेखाएं हैं।"

स्त्री—"अरे! तुम्हारी दो शादियां लिखी ही हैं तब क्यों नहीं एक और शादी करते?"

मैं—"यही तो मैं नहीं करना चाहता।"

स्त्री—"क्यों ? क्या भाग्यकी रेखा कहीं मिट सकती है ? हाय ! तुम्हें कभी-न-कभी मुझे छोड़कर एक शादी और करनी पड़ेहीगी ।"

मैं—"अफसोस न करो । ऐसा अब हो नहीं सकता । इसीलिये तो मैं अपनी दुराचारीसे इस रेखाको मिटा रहा हूं ।"

स्त्री—"इसके क्या मतलब ?"

मैं—"यह दो रेखाएं साफ बता रही हैं कि मेरे भाग्यमें एक-स्त्री-व्रत धारण करना बदा नहीं है । इसलिये अगर मैं अकेली तुम्हींसे सरोकार रखता हूं तो भाग्य कम्बख्त अपने आदेशको पूरा करनेके लिये तुम्हे मुझसे जरूर छुड़ायेगा । तो तुम्हारे रहते ही मैं क्यों न अनेक-स्त्री-व्रतधारी हो जाऊं ? ताकि किस्मतका लिखा भी हो जाये, मुझे शादी भी न करनी पड़े और सबसे बड़ी बात यह कि तुम सलामत रहो ।"

स्त्री—"चलो हटो, बाते बनाना खूब जानते हो ।"

यह कहकर मेरी स्त्री मुस्कुरा पड़ी । और मैंने भी झट उसे गलेसे लगा लिया और उसके कन्धेपर सर रखके अपना मुंह छिपा लिया ।

—

[१४]

"जी ढूंढ़ता है फिर वही फुरसतके रात दिन।
बैठा रहूं तसब्वुरे जानां किये हुए ॥"

यदि मेरी स्त्री मुझे कोसती, दुतकारती, फटकारती या मुझसे घृणा करती तो शायद मुझपर उतना असर न पड़ता जितना उसने अपने मीठे बरताव और कृपालु और क्षमा करनेवाले स्वभावसे अपना प्रभाव डाला। हंसीमें बात तो टल गई, परन्तु सदाके लिये मेरी गर्दन उसके आगे झुक गई। लज्जा और पश्चात्तापने मिलकर मेरे कर्त्तव्य-पालनका पक्ष लिया और उसने मेरी कुवासना-के साथ घोर युद्ध करा दिया। इसलिये ईश्वर जाने अपनी स्त्रीके प्रति कर्तव्योंके ध्यानने या किसी गुप्त शक्तिने मेरी कुवासनाओंको दबा दिया, यह मैं ठीक नहीं कह सकता। परन्तु इतना जानता हूं कि मेरी छिछोरी आदतका फिर मुझपर अधिकार न रहा। मैं दोस्तोंकी रंगरेलियोंसे दूर भागने लगा। 'क्लब' जाना भी बन्द हो गया। क्योंकि सिवाय एकान्तके और मुझे कहीं अच्छा नहीं लगता था।

कहनेके लिये एकान्त था। मगर वहां दोस्तोंसे भी बढ़कर दिलचस्प हमजोलियोंका साथ रहता था। और वह

लोग सदैव मुझे अजीब गङ्गाजमनी तमाशे दिखाकर मेरे दिलको बहलाया करते थे। कभी 'कर्तव्य' की मूर्ति उठकर शेखी हांकती कि 'देखा मेरा प्रभाव! आखिर मैंने इसकी आखें खोल ही दीं। अबतक यह मुझे रंगरेलियोंमें भूला हुआ था। मगर चोरी पकड़ जानेसे सीधे रास्तेपर आ गया। तभी तो इसने अब सभोंसे मिलना-जुलना तक छोड़ दिया।" यह सुनकर लज्जा और पश्चात्ताप दोनो बोल उठते कि "बहुत ठीक।" तब पन्नाकी सूरत आंखोंके सामने नाचने लगती और हंस-हंसकर यों ठठोली करती कि—"क्योंजी,अब 'क्लब' क्यों नही जाते? इसलिये कि मैं ससुरालमे होनेके कारण उधरसे नहीं निकलती। दोस्तोंसे क्यों नहीं मिलते जुलते? इसलिये कि मेरे ध्यानमें तुम्हें विघ्न पड़ता है। इसपर मेरी आत्मा डरते डरते चुपकेसे बोल उठती कि 'शायद'। इसके बाद सदाचारी और दुरा-चारीसे छेड़छाड़ शुरू हो जाती। यह कहती कि—"तू बहुत डींगकी लेती थी। मगर मैंने तुझे हराहीके छोड़ा। वह जवाब देती कि—"अरी! घमण्ड न कर। मुझे आजकल चुपचाप देखकर हारी हुई न जान। मैं चारों तरफसे अपनी शक्तियोंको समेटकर पन्नापर धावा करनेके लिये इकट्ठी कर रही हूं।" इसपर मेरी नीयत अपने छिपे हुए स्थानसे

निकलकर मन बोल उठती कि—"सही है।" उस वक्त पन्नाका भोला मुखड़ा फिर आँखोंके सामने दिखाई देता और तानेसे यह कहकर लोप हो जाता कि—"इसका तमाशा मैं भी देखूंगा।"

इस तरह मेरे ख्यालातमें दिन-रात खेंचातानी हुआ करती थी। मगर मैं नहीं कह सकता कि मेरा कौनसा विचार कहांतक ठीक था। इतना अलबत्ता जानता हूं कि पन्नाका ख्याल ज्यादेतर दिमागमें रहने लगा। कई दफे इसके ध्यानको उसे पराई स्त्री जानकर कर्तव्यके आवेशमें हटा देना चाहा। मगर कुवासनाकी ललकारसे कि—"वाह! वाह! सत्तर चूहा खाकर बिल्ली हज करने चली है—" मैं अजीब दलदलमें पड़ जाता था; इसलिये चाहे इस कारण-से या किसी और वजहसे मैं अपने दिमागसे पन्नाकी तस्वीर न निकाल सका। बल्कि जी यही चाहता था कि-चुपचाप मैं उसीका ध्यान किया करूं, क्योंकि इसीमें मुझे आनन्द मिलता था।

पन्नाके लिये मुझे बेचैनी भी थी और बेफिक्री भी। बेचैनी इसलिये कि वह मुझे देखनेको अब नहीं मिलती थी। मगर यह सोचकर कि वह महेश बाबू ऐसे लोगोंके दगावसे दूर अपनी ससुरालमें सुरक्षित है, मेरे हृदयमें बड़ी ठंडक-

पहुंचती थी। फिर भी उसके देखनेकी लालसा प्रबल होकर मेरे दिलमें एक हल्कासा दर्द कभी कभी पैदा कर देती थी।

इसी तरहसे बहुत दिन बीत गए, मगर पन्नाकी याद दिलसे न गई। बेचैनीकी तेजी अलबत्ता बहुत कुछ कम हो चली थी। मगर एक दिन जब मैं कहीं बाहरसे घर आया तो देखा कि पन्ना मेरे आंगनमें बैठी हुई है। आंख लड़ते ही दिल तड़प उठा और कलेजा धकसे हो गया। उसके भी चेहरेपर लाली दौड़ गई, और आंखें चमक उठीं। क्यों? शायद इसलिये कि दो परिचित आदमियोंके यकाएक मिलनेपर दिल चौंक पडता ही है।

मेरी स्त्रीके दिलमें हुलसीकी लगाई हुई आग जो अबतक बनी हुई थी पन्नाकी मौजूदगीने सुलगा दी। इसलिये उसके मिजाजमें बेरुखी, व्यवहारमें रूखापन, चेहरेपर तमतमाहट और आंखोंमें क्रोध देखकर मुझे पन्नाको आंख भरके देखनेकी हिम्मत न पड़ी। कई दफे उसने मेरी ओर आशापूर्ण नेत्रोंसे ताका मगर मुझे मजबूर होकर अपना मुंह फेर लेना पड़ता था। इतनेमें बाजारसे हुलसी आ पड़ी। वह पन्नाको देखते ही जल मरी। फिर क्या था? आते ही लगी वह उसपर तानेकी आग बरसाने।

हुलसी—"ओहो! खटपर बैठी हैं। जो कहूं सुन्दर होतीं

तो अउर अकासेपर चढ़ जातीं। कहो हो यह का अपन मर्दके पलंगा समझी है?"

मेरी स्त्रीके सुलगते हुए क्रोधमें इस बातने और भी आंच लगा दी। वह अपनेको सम्हाल न सकी। तिलमिलाकर बोल ही उठी।

स्त्री—"होता नहीं तो बैठती कैसे?"

अब क्या था? तुलसी सहारा पा गई। फिर तो उसकी जहरीली जबानमें जितनी भी ताकत थी उसने सब पन्नापर खर्च करके उसे दुरदुराकर निकाल दिया। यह अनर्थ मैं अपने कमरेसे देखता रहा। मगर अफसोस! मैं जबान हिला न सका। वह रोती हुई चली गई, और इधर मैं कलेजा मसोसकर रह गया।

---

[१५]

"तर्के उलफत भी है और
वस्लका इकरार भी है।
मिलने जाते हैं मगर
मिलनेसे इनकार भी है॥"

अरी, मेरी स्त्री! तूने यह क्या गजब किया। पहिले अपने मीठे बरतावसे मेरे बहते हुए मनको अपनी ओर खीचकर कर्त्तव्य, लज्जा और पश्चात्तापका जो बान्ध तूने बान्धा था और जिसके भीतर पन्नाका खयाल, कौतुक, काम डाह और परोपकारके सहारे घुसकर मेरे हृदयकी कोमलताको जागृत कर देनेके लिये उपद्रव मचाए हुए था, हाय! उसी बान्धको तूने आज अपने व्यवहारसे तोड़ डाला। न जाने कितनी ही स्त्रियां इसी तरह अपनी असावधानीसे अपने पुरुषोंके हृदयोंको दूसरोंके फन्देमें आसानीसे फंस जानेके लिये अपना विरोधी बना देती हैं। पुरुष-हृदय अति ही चञ्चल होता है। इसको अपने पंजेसे सरकते हुए देखकर स्त्रियोंको चाहिये कि अपनी जलनको दबाकर दया, क्षमा, सहानुभूति और अपने मीठेपनसे फिर अपने वशमें कर लें, क्योंकि इन्हीं गुणोंके प्रभावसे ये लोग पुरुषोंमें लज्जा, पश्चात्ताप और सहानुभूति उभारकर इनके प्रेमको अपनी ओर मना ला सकती हैं। यह अत्यन्त ही जोखिमका समय होता है। ऐसे ही वक्त स्त्रीको मन-मोहनेवाले गुणोंके पूर्ण रूपसे प्रयोग करनेकी आवश्यकता है, क्योंकि पुरुष-हृदय जिधर अधिक मिठास देखेगा उसी ओर झुकेगा। जितनी ही अधिक स्त्री अपनी कोमलता और

मधुरता दिखलायेगी, उतनी ही अधिक पुरुषकी दृष्टिमें वह अपनी सौतको,फीकी बना सकेगी। अन्यथा डाहके आवेश-में अपना रूखापन दिखलाना अपने ही पैरोंमें स्वयं कुल्हाड़ी मारना है।

इस समय अनर्थ जो कुछ किया तुलसीने; मेरी स्त्रीने नहीं। फिर भी इसका मूल कारण मेरी स्त्रीका क्रोध ही था, जिसको यदि वह जीत लेती तो तुलसीको इतनी मजाल न थी कि बिना सहारा पाए वह ऐसी आफत ढाती। पन्नाकी दुर्गति अपनी आँखोंके सामने होती हुई देखकर और अपनेको बिल्कुल बेबस पाकर मेरे हृदयमें उसके लिये सहानुभूतिका यकायक बड़े जोरोंका तूफान उठा, जिसमें कर्तव्य, डाह, जलन, कामवासना इत्यादि सब हवा हो गये और मैं करुणाके भंवरमें पड़कर चक्कर खाने लगा। जीमें आया कि दौड़कर पन्नाको गोदमें उठा लूं, अपने हाथोंसे उसके आंसू पोछ दूं; मगर स्त्रीकी लाल आंखें देखकर मैं अपने जगहसे हिल न सका।

पन्नासे मिलनेके लिये उसी सायतसे मेरी बेचैनी बढ़ने लगी। बहुत कुछ जब्र किया। हर तरहसे तबियतको रोकना चाहा, मगर मेरी व्याकुलता शान्त न हुई। दिमागमें ऐसी आन्धी चल रही थी और दिलमें वह खल-

धली मची हुई थी कि मैं ही जानता हूं। जबान चुप थी। मुंह बन्द था। मगर दिल "हाय! पन्ना! हाय! पन्ना!" की रट लगाये हुए था।

पन्नाको कहां पाऊं ? कैसे मिलूं ? हाय! मेरे लिये सब द्वार बन्द हो गये। अपने ही घरपर उससे दो दो बातें करनेकी एक आशा रह गई थी, वह भी जाती रही। वाह री! तकदीर! सड़कोंपर अकेली घूमनेवाली और अपनी मांकी तरह गृहस्थीकी आड़में वेश्यावृत्ति करनेवाली एक बाजारू छोकड़ीसे भी बात तक करनेके लिये मैं तरस रहा हूं! और मैं कौन? जो उड़ती हुई चिड़ियाके पर गिनता था! हाय! वह दुराचारीके सब तजुर्बे क्या हुए जिनपर मुझे इतना घमण्ड था?

मेरे पड़ोसमें एक मन्दिर था। उसके पुजारीको नित सन्ध्याको पन्नाका छोटा भाई फूल दे जाया करता था। मैं उस दिनसे लगातार उस मन्दिरका पैकरमा करने लगा कि शायद किसी दिन मेरी तकदीर चमके और अपने भाई-के बदले पन्ना फूल देने आवे।

"इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाबके मूल।
हुइहैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल॥"

आखिर एक दिन मेरी आशा फली। मैंने क्या देखा?

हाय ! उसका वर्णन नहीं कर पाता। केवल इतना जानता हूं कि मेरे बदनमें यकायक बिजली दौड़ गई। दिल बड़े जोरोंसे धड़कने लगा। तब बदनकी सुधि जाती रही और मैं आपेसे बाहर हो गया। न जाने पन्नापर कहांसे इतनी अलौकिक सुन्दरता फट पड़ी थी या मेरी ही दृष्टिमें कुछ हो गया था कि मैं टकटकाकर उसकी छवि निहारने लगा। वह चुलबुलाती हुई आई। मुझे देखकर मुस्कुराई। मगर तुरन्त ही गम्भीर होकर निगाहें नीची कर लीं और कतरा-कर झट दूसरे रास्तेसे निकल गई।

जब मुझे होश आया, तब जाना कि जहां मैं खड़ा था, वह खुली हुई जगह थी। सभी उधरसे आते-जाते थे। वहां-पर पन्नासे एक बात भी नहीं हो सकती थी। मगर जिस रास्तेसे कतराकर वह गई है वह अलबत्ता कुछ आड़में है। मुमकिन है इसी बातकी मुझे सुध दिलानेके लिये पन्ना उधरसे गई है। यह सोचकर मैं वहीं जाकर उसके लौटनेका इन्तजार करने लगा।

पन्ना मन्दिरसे निकली। जहां मैं पहिले खड़ा था वहां मुझे न देखकर रुक गई। इधर-उधर कई दफे देखकर फिर मन्दिरमें चली गई। कुछ देरके बाद बाहर आई। फिर चारों तरफ देखा और सोचमें जहांकी तहां खड़ी रही।

यह रंगत देखकर मैं अपनी जगहसे जरा और आगे बढ़ गया। अब उसकी दृष्टि मुझपर पड़ी। उसकी बौखलाहट जाती रही। मगर इस रास्तेसे जानेके बदले वह मुस्कुराती हुई सीधे रास्तेकी तरफ मुड़ गई।

मैं बदहवास हो गया और जल्दी-जल्दी उस रास्तेपर आकर उसका पीछा करता हुआ उसके बराबर पहुंच गया। मगर समझमें न आया कि क्या कहूं, किस तरहसे उसे अपने घरसे निकाले जानेके लिये अपना रञ्ज और अफसोस और अपने हृदयकी बेकली और बेबसी उसपर प्रगट करूं। मैं इसी सोचमें दो चार कदम उससे आगे भी बढ़ गया, मगर मुंहसे एक भी शब्द न निकला। इस परेशानीमें कठपुतलीकी तरह कभी सर खुजलाता था और कभी पाकेटमें हाथ डालता था। ऐसा करनेमें जेबसे एक रुपया निकल आया। मैं झट उसको उसके रास्तेमे गिराकर कदम बढ़ाता हुआ निकल गया। घूमकर यह भी नहीं देखा कि उसने रुपया उठाया या नहीं।

---

(१६)

"वादा आनेका वफा कीजिये

यह क्या अन्दाज है।

तुमने क्यों सौंपी है
मेरे घरकी दरवानी मुझे ?"

इसी तरहसे मुझे जब-जब मौका मिला मैं बराबर पन्ना-को रुपये देने लगा। उसके साथ अपनी सहानुभूति दिखलानेका मेरे पास और कोई उपाय ही न था। छोटे हृदयोंमें खुशी पहुंचानेके लिये रुपयोंसे बढ़कर दूसरी कोई उत्तम सीढ़ी नहीं है। और ऐसा करनेमें मेरे दिलका भी बोझ बहुत कुछ हल्का होता था। वह अब नित मन्दिरको आने लगी, और मैं भी सब काम छोड़कर उसके आनेके घन्टों पहिलेसे उसका रोज इन्तजार करता था।

एक दिन पन्ना ज्योंही मन्दिरसे निकली त्योंही उससे उसकी एक हमजोलीसे मुठभेड़ हो गई। पन्ना उसके साथ बातें करती हुई जब मेरे पाससे गुजरने लगी तो बोली—

पन्ना—"अच्छा, सखी आज मिलना। मैं फिर आऊंगी।"

यह कहकर उसने मुझपर एक निगाह डाली। उसकी सखी "अच्छा" कहके एक तरफ चली गई। पन्ना भी अपने मकान जानेके बदले दूसरी तरफ मुड़ गई। मैं वहीं बैठा रह गया। उसकी तरफ आज रुपया भी फेंक न सका। वह निगाहोंकी ओट हो गई, मगर उसके शब्दकी "आज

"मिलना मैं फिर आऊंगी" मेरे कानोंमें वैसे ही गूंज रहे थे और उसकी चितवन अब भी मेरे दिलसे कह रही थी कि "कुछ सुना ? मैं तुमसे कहती हूं तुमसे।"

शामकी अन्धियाली गहरा गई। मकानोंमें चिराग जलाए जाने लगे। हवाकी ठंढक बढ़ चली। मगर मैं मन्दिरके चबूतरेपर ज्योंका त्यों बैठा रहा।

कई घन्टे हो गए, रात भी अब कुछ भीग चली। खाना खानेके लिये मेरे नौकर मुझे चारों तरफ ढूंढ़ने निकले। सड़कपर मैं उन्हें इधर-उधर जाते हुए देखता था। फिर भी मैं वहीं बैठाका बैठा ही रहा। दिल हर बार यही कहकर मुझे उठने नहीं देता था कि पन्नाने आज मिलनेको कहा है। अगर तुम खाना खाने चले गए और उस वक्त वह आई तब ? एक दिन न खाओगे तो क्या हो जायेगा ?

दिलकी राय मुझे पसन्द आई। मैं झटसे उठकर सड़कपर टहलने लगा और अपने नौकरके सामने इस तरह जाकर, जैसे मालूम हो मैं कहीं दूरसे आ रहा हूं, कहा कि जल्दीसे मेरा कोट और टोपी दे जा। मेरी एक जगह दावत है। शायद देरमें आऊं।

इस तरहसे कोट और टोपी लेकर अपने ढूंढ़नेवालोंसे छुटकारा लिया। और इधर-उधर घूमकर फिर मैं वहीं

जाकर चुपकेसे बैठ गया और निगाहें पन्नाके रास्तेपर बिछा दीं।

आधी रात हो गई। पहरा पड़ने लगा। मारे सर्दीके मैं कांप रहा था। फिर भी मुझसे वहांसे हटा नहीं गया। सोचता था कि शायद पन्नाको अबतक मौका न मिला हो या अन्धियाली रातमें आनेसे डरती हो। इसलिये चान्द निकलनेका इन्तजार कर रही है।

चान्द भी निकल आया। अब मन्दिरके पास खड़ा रहना ठीक नहीं मालूम हुआ; क्योंकि अगर किसी पहरे-वालेसे मुठभेड़ हो जाती तो क्या जवाब देता। इसलिये वहांसे खिसककर अपने मकानके पास ऐसी जगह खड़ा हुआ जहांसे मन्दिरका चबूतरा दिखाई देता था। कई दफे जीमें आया कि घरका दरवाजा खुलवाकर सो रहूं। मगर दिलने कहा नहीं, थोड़ा और सब्र करो, क्योंकि उसने यहांके लोगोंको धोखा देनेके लिये सोनेका बहाना किया होगा। और इसीमें उसे शायद नींद आ गई है। जैसे ही आंख खुलेगी, वह आयेगी।

झुटपुटा हो गया। कौवे बोल उठे। पूर्व दिशामें लाली फूटने लगी। दुनियाकी आंखे खुल गईं। और उसीके साथ मेरी भी अब आंख खुली। तब जाना कि केवल सहानु-

भूतिके आवेशमें मुझसे यह भूलना नहीं हुई है बल्कि प्रेम मुझे मूर्ख बनाये हुए है। गंगाजननी भावोंकी आड़में छिपता हुआ चुपके-चुपके मेरे हृदयपर सम्पूर्ण रूपसे इसने अपना अधिकार जमा लिया। इसीलिये मैं आंखवाला होकर भी इसे अबतक नहीं पहचान सका था। हाय! इसको देखा भी तो कब जब मैं स्वयं इसके पंजेमें पड़कर बेबस हो गया और इससे भागने और बचनेकी मेरे पास कोई युक्ति ही न रही। जो जितना ही चालाक और होशियार बनता है वह उतना ही बड़ा धोखा खाता है। जब गर्दनमें फांसी पड़ जाती है तब सारी हेकड़ी भूल जाती है। यही हालत मेरी हुई। मैं जानता था कि मैंने दुराचारीसे अपने हृदयको ऐसा सख्त बना लिया है कि अब कभी प्रेमका उसपर जोर नहीं चल सकता। मगर मुझे यह मालूम न था कि प्रेमकी ठंढी आंचमें ऐसी गर्मी होती है जो पत्थरको भी दमकी दममें मोम बना दे; चरित्रहीनके हृदयमें भी अपना डंका बजा दे।

बस, अब मूर्खता हो चुकी। जान बूझकर अब मुझसे ऐसी चूक न होगी। इसी दमसे मैं अपने दिलको काबूमें करूंगा और मन्दिरपर भूलकर भी न जाऊंगा। चाहे जो हो। इस तरहके प्रणसे मैंने अपने बहकते हुए हृदयको उसी

वक्त बान्धा और बड़ी बड़ी कसमोंसे उसे और भी कसके जकड़ दिया। मगर ज्यों-ज्यों पन्नाके आनेका समय समीप होने लगा त्यों त्यों मेरे संकल्पोंके बन्धन एक-एक करके सब टूटने लगे, और मैं दनसे मन्दिरपर आकर फिर चक्कर लगाने लगा, बल्कि हर दिनसे उस रोज एक घण्टा पहिले। मगर तकदीरकी खूबी! उस दिन पन्ना न आई। उसके बदले आया उसका छोटा भाई।

मैंने उसे अपने पास बुलाया। पैसा देकर उससे कुछ फूल लिये। फिर बातोंमे उससे पूछा कि—"आज पन्ना क्यो नहीं आई?" उसने जवाब दिया कि—"अम्मांसे और उनसे लड़ाई हुई है। इसीलिये दोपहरहीसे लेटी है। आज रोटी भी नहीं खाई।"

मैं—"किस बातपर लड़ाई हुई है?"

वह—"अम्माने कहा था कि महेशबाबूके लिये एक खूब बढ़िया माला गूंथ दो। उन्होंने नहीं गूंथी। बस इसी पर।"

यह कहकर वह चला गया। मगर 'महेशबाबू' 'माला' और 'अम्मां' इन तीन शब्दोंने मेरा काम तमाम कर दिया। इनको सुनते ही मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरे हृदयमें असंख्य बिच्छुओंने डंक मार दिया। मेरा सर चकरा

गया। लड़खड़ाता हुआ वहांसे आया और आकर अपनी चारपाईकी झट शरण ली।

मैं वैसे ही बेचैनीकी हालतमे बड़ी देरतक पड़ा रहा। चिरागबत्तीका वक्त हो गया, मगर अब भी मेरे दिलकी जलन शान्त न हुई थी। इतनेमे यकायक पन्नाके छोटे भाई-की आवाज मेरे कानमे पड़ी। वह मेरे मकानमें किसीसे बाते कर रहा था। झटसे उठकर मैं अपने मकानके बाहर आया इसलिये कि लौण्डा बाहर निकले तो उससे पन्नाके बारेमें और कुछ पुछूं। वह भी मेरे पीछे ही बाहर आया और मेरे टोकनेके पहले वह खुद ही आकर मुझसे बोला।

वह—"बाबूजी! इस नोटके दस रुपये दे दो।

मैं—"यह नोट तुझे किसने दिया?"

वह—"हमें तो अम्मांने दिया है। और अम्मांको महेश-बाबूने दिया है। वह बड़े अच्छे हैं। एकदम राजाबाबू हैं। एक मालाके लिये दस रुपयेका नोट दे दिया! बाप रे बाप! इतना कोई न देगा।"

अब तो मेरी रही-सही जानपर और भी आ बनी। मैं अपनेको सम्हाल न सका। नोटको फेंक दिया और दांत पीसकर उससे कहा।

मैं—"तो मेरे पास इसे काहेको लाया कम्बख्त?"

वह—"अम्मांने कहा था कि इसे महेशबाबूके पास ले जाकर कहना कि यह कागज क्या होगा। हमें इसके रुपये दें। मगर बहिनीने हमको चुपकेसे अलग ले जाकर महेश बाबूके यहां जानेसे मना कर दिया। उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है और कहा है कि इसके रुपये दे दें, और जल्दीसे महेशबाबूके घर चलें।"

मैं—"पन्ना क्या कर रही है?"

वह—"उनके सरमें दर्द है। और अम्मां माला बना रही है।"

सब बातें मेरी समझमें आ गईं। महेश बाबूकी बाजी चल गई। इधर वह, उधर उसकी मां। और इन दोनों हत्यारे और डाइनके बीचमें मेरी पन्ना तबाह हो रही है। हाय क्या करूं? लौण्डेने जमीनपरसे नोट उठा लिया था। मैंने कांपते हुए हाथसे उससे फिर नोट लिया और भीतर जाकर चुपकेसे दस रुपये लाकर उसके हाथमें दिये। और नोटको एक कागजके टुकड़ेमें पुड़ियाकी सूरतमें मोड़ा और यह कहकर इसे भी उस छोकड़ेको दे दिया कि—

मैं—"लो, इस पुड़ियाको चुपकेसे पन्नाको दे देना। इससे सरका दर्द अच्छा हो जायगा। मगर खबरदार! खोलना मत! और रुपयोंको पन्नाके सामने अपनी मांको देना।"

लौण्डा दौड़ता हुआ अपने घर गया और मैं भी झट चादर ओढ़कर अपना मुंह अच्छी तरहसे छिपाए हुए महेशबाबूके मकानकी तरफ चला। जब उनका मकान दिखाई देने लगा तो मैं दूर ही पर एक म्यूनिसिपलटीकी लालटेनके खाबेमें खड़ा हो गया।

महेशबाबू बड़ी उतावलीमें अपने फाटकपर टहल रहे थे। और इधर मेरे हृदयमें जहन्नुमकी आग भड़की हुई थी ही। उनको देखते ही मैं और भी जल-भुनके राख हो गया। मारे गुस्सेके मैं कांप रहा था। और पसीनेकी बूंदें मेरे बदनसे टपक रही थीं, इतनेमें पन्ना हाथमें माला लिये हुए चुलबुलाती हुई मेरे पाससे निकली। उफ! उस समय क्रोध, बेचैनी, छटपटाहट और जलनसे मेरे दिल और दिमाग दोनों टुकड़े-टुकड़े हो गये। जीमें आया कि पन्ना-का खून चूस लूं या फिर इस सड़कपर अपना ही सर फोड़ दूं। मैंने हाय करके दोनों हाथोंसे अपने हृदयको कसके दबा लिया और अपनी धधकती हुई खोपड़ीको लम्पके खम्भेपर दे मारा।

---

[१७]

"धाय रिसाय गई घर आपने
तीरथ न्हान गए पितु भइया।
स्यामै सुनाय कहै, को दुहैगो,
लगै निसि आधिकमें यह गइया।
दासियो रूसि गई कितहूं,
सजनी यह कौन सुनै दुख दइया।
दै पट पौढि रहौंगी भटू,
पलंगापर मेरिऊ जानै बलइया॥"

जिन विचारोंसे तङ्ग आकर आदमी फिर आदमी नहीं रह जाता है, होशहवासको यकायक भाड़में झोंककर पागलोंसे भी बदतर हो जाता है, जिनसे भागनेके लिये दुनियाको त्यागकर जंगल और पहाड़ोंकी शरण लेता है, या जिनसे प्राण बचानेके लिये और कोई उपाय न पाकर अपनी ही जानपर खेल जाता है, बस उसी तरहके ख्यालात मुझपर यकायक टूट पड़े और सरपर झट खून सवार हो गया। फिर तो इसकी ललकारमें डाहकी लपटें भी खूनकी प्यासी होकर और भी प्रचण्ड वेगसे भड़क उठीं और बड़ी

विकलतासे तड़पने लगीं। इस भयंकर हाहाकारमें हर तरफ खाली खूनकी मांग थी। जमीनसे लेकर आसमान-तक इसकी चिल्लाहट गूञ्ज रही थी। इस जहन्नमी आग-को बुझानेके लिये खून कहां पाऊं? क्रोधने पन्नाको ताका। डाहने महेशबाबूको तरफ इशारा किया। हृदयकी वेदनाने मेरी गर्दन बताई। और पागलपनने कहा कि इन तीनोंही-का बलिदान कर दो।

इस शैतानी हुक्मको माननेसे भला मुझे कौन रोक सकता था? करुणा और सहानुभूति तो दोनों ही भस्म हो चुकी थी। सोच-समझका कहीं नामोनिशान न था। बुद्धि भी लापता हो गई थी। ऐसी घोर अशान्तिमे, ऐसे होश-हवासके प्रलयमें सहसा मेरी घृणाने उठकर मेरी रक्षा की। इसकी धिक्कार मेरे लिये उपकार हो गई। इसकी विषवर्षाने अमृतकी बून्दोंका काम किया। इसने आते ही मुझे आड़े हाथों लिया कि "इसी छोकड़ीके पीछे तुम इतने दीवाने हो रहे हो जो अपना सर्वस्व दस रुपयेमें लुटाने जा रहो है? इसी बाजारी चीजको तुम अनमोल समझकर इसपर अपने हृदय और प्राण दोनों निछावर किये हुए हो? थुड़ी है तुमपर, तुम्हारी समझपर, और तुम्हारे प्रेमपर! अनुचित प्रेम! और उसमें 'वफा' की उम्मीद? यह केवल मूर्खोंका

स्वप्न और पागलोंकी कल्पना है। अरे! इसकी तो जड़ ही 'बेवफाई' है। अगर ऐसा न होता तो यह उचित मार्गसे बहककर अनुचितकी तरफ क्यों मुड़ता? एक तो अनुचित प्रेम योंही विश्वासघातक और उसमें प्रेमिका कौन? कुटनी-की लड़की जिसको जन्मघुट्टीमें 'बेवफाई' पड़ी है, जिसके रोम-रोममें विश्वासघात और बाजारोपन भरे हैं उसके लिये तुम अपने दिलको कुढ़ाते हो? खूनका पाप अपने सर चढ़ाते हो? कौड़ियोंके मालके लिये अपनी अनमोल जान लूटा रहे हो? घृणाकी चीजको प्रेमसे सत्कार करते हो? लानत है तुमपर! जैसी रूह वैसे फरिश्ते।"

उफ! यह फटकार तो बड़ी कड़वी थी। मगर इसके अक्षर-अक्षरमें सच्चाई कूट-कूटकर भरी थी। अब मुझे अपनी मूर्खताका ज्ञान हुआ। मैं खूनकी घूंट पीकर रह गया। घृणाने क्रोधको जीत लिया। मुझसे अब वहां एक मिनट भी खड़ा न रहा गया। फिर भी न जाने क्यों मेरे पैर न उठे। इतनेमें देखा कि पन्नाने माला महेशबाबूके हाथमें दी और उनके मुंहपर कुछ कहकर कुछ फेंका और अपने घर-की तरफ सरपट भागी। उसकी आवाज हवामें तैरती हुई मेरे कानोंमें पड़ी और सीधे दिलमें जाकर गूंज उठी कि "ले जाओ अपना नोट।"

अत्यन्त ताप जिस तरह असहनीय है उसी तरह अत्यन्त शीतलता भी। लूके झोंके जितने कष्टदायक होते हैं उतनी ही पालेकी ठंढक भी। अभी-अभी मेरा हृदय मारे जलनके तड़प रहा था और अभी उपर्युक्त शब्दोंने वहां पहुंचते ही वह ठंढक पहुंचाई कि मैं शीतलतासे बेकल हो गया। अभी पन्ना-का खून पीनेके लिये मैं छटपटा रहा था और अब उसको हृदयसे लगानेके लिये बल्कि उसके पैरोंपर गिर पड़नेके लिये यकायक बावला हो गया। वाह रे प्रेमीका मन! घड़ीमें कुछ और घड़ीमें कुछ! न इस करवट चैन लेने देता है और न उस करवट। आंख उठाकर चारों तरफ देखा तो न पन्ना ही दिखाई पड़ी और न घृणा। अपने हृदयको ढूंढ़ा तो उसे भी प्रेमके मौजोंमें लापता पाया। जहां अभी हाहाकार मचा हुआ था वहीं अब धूमधामकी बहार थी। जहां अभी हाय! हाय! की चिल्लाहट थी वहां अब वाह! वाह! की ध्वनि गूंज रही थी। धन्य है प्रेम, धन्य है तेरी गङ्गा-जमनी छटा, और धन्य है तेरी महिमा! तू वेश्याकी लड़कीको भी एक दफे सतीत्वका पाठ पढ़ानेका दम रखता है। तेरे आगे शिक्षा, सुधार और पर्दा सब कौड़ियोंके मोल हैं।

दूसरे दिन पन्ना मन्दिरको आई। न जाने उस समय

मैंने उसे किन नजरोंसे देखा कि जिनके उत्तरमें उसने जो दृष्टि मुझपर डाली उसमे उसका सम्पूर्ण हृदय खिंचकर चला आया। उफ! यह देखते ही मैं बदहवास हो गया। मेरा धैर्य जाता रहा। जबानसे कुछ कहने ही वाला था कि इतनेमें उसकी परसोंवाली सखी कहींसे आ पड़ी। पन्ना मेरे पास ही खड़ी होकर उससे बातें करने लगी और बीच-बीचमें आंख चुराकर मेरी तरफ देख लेती थी।

सखी—"वाह! सखी, परसो तो खूब मिली।"

पन्ना—"क्या करु', अम्मांके मारे बस नहीं चला। वह रास्तेहीमें मिल गईं। फिर उन्हींके साथ उधर हीसे उधर चला जाना पड़ा। इधर लौटनेका मौका नहीं मिला। भला तुमने मेरा इन्तजार किया था?"

यह कहकर उसने मेरी तरफ इस तरह देखा मानों उसने यह सवाल मुझीसे पूछा है। मुझसे न रहा गया। मैं बोल उठा—"रात भर।"

यह सुनते ही पन्नाकी अजीब हालत हो गई। उसका चेहरा दमक उठा, उसकी आंखें एक अपूर्व ज्योतिसे चमकने लगीं। उसकी सखीकी पीठ मेरी तरफ थी। उसने भी सुना और ज्योंही उसने सर घुमाकर मेरी तरफ देखा त्योंही मैं यह कहकर उठ खड़ा हुआ कि—"उफ! रातभर आज

काम करना है।" वह कुछ समझ न सकी। मेरी पहिली बातको मेरी बड़बड़ाहटका एक अंश जानकर फिर उसने लापरवाहीसे अपना मुंह फेर लिया। मगर पन्ना मुस्कुरा पड़ा।

वहांसे उठकर मैं धीरे-धीरे एक तरफको चला। मगर मेरे कान पन्नाकी आवाजपर लगे हुए थे। मैं दो ही चार कदम बढ़ा था कि वह अपनी सखीसे यों कहने लगी।

पन्ना—"सखी! क्या कहूं। न जाने हमें क्या हो गया है कि न रातको नींद और न दिनको चैन है। आज घर बिलकुल सूना है। सब लोग नेवते गये हैं। खाली अम्मां हैं। वह भी अलग मुंह फुलाए पड़ी रहती हैं। मैं अकेली रातभर छटपटाऊंगी। कहीं तुम आ जाती तो क्या कहना था।"

यह सुनते ही मेरे दिलमें एक अजीब खलबली मच गई। मैंने चौखलाकर पन्नाकी तरफ देखा और उसने भी मुझे बड़ी आशापूर्ण दृष्टिसे देखा।

---

[१८]

"दरसावती लालको बाल नई
सुसजे सिर भूषन गुवालरियां।

छवि होती भली गजमोतीके बीच
जो होती बड़ी बड़ी लालरियां॥"

रात ज्यों-ज्यों बीतने लगी त्यों-त्यों मेरी व्याकुलता बढ़ चली। सरे शाम होते मैं इसी उलझनमें था कि पन्नाके घर जाऊं या न जाऊं। जाना उचित है या नहीं। उसकी मां आवारा रही और अपनी लड़कीको भी अपनी ही तरह बनाना चाहती है। यह सब सही, मगर छिपे चोरी! फिर भी दुनियाकी दृष्टिमें वह वेश्या नहीं है और न उसका घर वेश्याका घर है। मकानके भीतर कदम रखते ही मैं कानूनकी निगाहोंमें मुजरिम हो जाऊंगा। अगर किसीने देख लिया तो गजब ही हो जायेगा। पन्नाकी नाक कटेगी और मेरी भी जान जायगी। अगर यह न भी हो तो भी चोर समझकर मैं पकड़ा जाऊंगा। पन्नाकी मां अपनी बनावटी आबरू बचानेके लिये मुझे चोर साबित करनेमें कोई कसर उठा नहीं रखेगी। और पन्ना भी बदनामीके डरसे अनजान बनकर झट अलग हो जायगी। जेलखानेको छोड़कर मेरा फिर कहीं ठिकाना नहीं लगेगा। उफ! यह जान जानेसे भी बढ़कर है। नहीं नहीं, जान बूझकर मैं ऐसी बेवकूफी नहीं कर सकता।

मगर पन्नाने शायद मुझे बुलाया है। अगर सचमुच

बुलाया है तो वह मेरा इन्तजार करती होगी। उसकी बात-को मैं क्योंकर तोड़ूं? अगर नहीं जाऊंगा तो वह अपने दिलमें भला मुझे क्या कहेगी, मुझे झूठा, दगाबाज और मतलबी समझेगी। मुझपर फिर वह कभी नहीं भरोसा कर सकती। मेरे प्रेमको कच्चा जानेगी। मेरी जलन और बेचैनीकी फिर वह परवाह न करेगी। मैं उसकी निगाहोंमें सदाके लिये गिर जाऊंगा। नहीं नहीं, मैं पन्नाको इन्त-जारमें रख नहीं सकता। मैं जाऊंगा चाहे कुछ हो। दर-वाजे ही परसे पन्नाको बताकर कि मैंने तेरी बात पूरी कर दी लौट पड़ूंगा।

मेरी स्त्री मायकेमें थी। तुलसी भी उन्हीके साथ गयी हुई थी। मुझे रोक-टोक करनेवाला घरमें कोई न था। मैं बिस्तरे परसे उठा। अपने कमरेका लम्प बुझाकर कम्बल ओढ़ लिया। छड़ी लेकर चुपकेसे दरवाजा खोला और घरके बाहर हो गया। ठनाठन बारहका घण्टा बजा। मैंने चाहा कि लौट पड़ूं क्योंकि रात ज्यादा हो गई थी, मगर दिलपर कुछ भी वश न चला। अन्तमें मुझे दरवाजा भेड़-कर धड़कते हुए दिलके साथ जाना ही पड़ा।

गलियोंमें सन्नाटा छा रहा था। फिर भी मैं अपने मुंहको कम्बलसे बहुत कुछ छिपाये हुए था। पन्नाका

दरवाजा बन्द था। सोचा, अब भी ग़नीमत है, लौट चलूं। बस, वेवकूफ़ियोंकी हद हो चुकी। लौटनेका मैंने पक्का इरादा कर लिया। फिर कहा कि अच्छा द्वार तो उससे कम चूम लूं। मैंने आहिस्तेसे किवाड़ोंपर हाथ रखा। वह भीतरसे बन्द न होनेके कारण कुछ खुल गए, और साथ ही चूड़ियों-की एक हल्की झनकार सुनाई पड़ी। और तुरन्त ही पन्ना दरवाज़ेपर आकर बोली—"तुम आ गये?"

बोली तो वह केवल दोही शब्द, मगर उसने इनको इस बनकसे कहा कि मानो उसके रोम-रोम बोल उठे कि—

"जाने कहो ते न्यारि कीति तें, अब
रहे मेरे मन्दिरमें मन्द मन्द आये॥"

पन्नाको देखते ही मकानके भीतर जानेकी मेरी सारी हिचकिचाहट दूर हो गई। मैं झटसे जाकर उसकी बगलमें खड़ा हो गया। उसने द्वारपर ही मुझे पान दिया।

मैं—"क्या तुम जानती थीं कि मैं आऊंगा जो तुमने पहलेसे पान बना रखा?"

पन्ना—"मैं तीन घण्टेसे तुम्हारा इन्तज़ार कर रही थी तभीसे पान मेरे हाथमें है। देखो, कैसा कुम्हला गया है, अच्छा यह न खाओ। मगर हाय! पानदान तो अम्मांके सिरहाने रखा है।

सचमुच पान सूख गया था। उसका कत्था फूटकर पन्नाकी उंगलियोंमें लगकर सख्त हो गया था। यह देखते ही मेरे हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ गई। उसीके आवेशमें मैं उसके पानवाले हाथको अपने सर आंखोंसे लगाकर बार-बार चूमने लगा। इतनेमें वह बोल उठी।

पन्ना—"हाथ क्या देखते हो? बिना कंगनके सूने हाथ कहीं अच्छे थोड़े मालूम होते हैं?"

मैं—"मगर मुझे तो यह ऐसा ही बहुत प्यारा मालूम होता है। खैर! कल कंगन भी आ जायेगा।"

पन्ना—"और गलेके लिये कण्ठा और कानोंके लिये झूमकें भी।"

न जाने क्यों मुझे यह बात जहरसी लगी। जिस तरह-से खटाई पड़ते ही दूध फट जाता है, उसी तरहसे यह बात सुनते ही मेरी आंखोंके सामने पड़ा हुआ प्रेमका पर्दा यका-यक फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब मुझे पन्ना प्रेमकी देवी नहीं, बल्कि एक ओछी तबियतकी मामूली और लालची छोकड़ी दिखाई पड़ी जिसका प्यार मेरे लिये नहीं है, बल्कि रुपयों और गहनोंके लिये हैं। ठीक है—

"भूधर सुकवि हेतु धनहीके बार वधु,
और न विचारै कछु यह बात जियकी।

लाल चाहै जियसों कै बाल मेरे हिय लागै

और बाल चाहै हियसों है लाल कीजै पियको ॥"

प्रेमका नशा हलका पड़ते ही मुझे ज्ञान हुआ कि मैं कहांपर और किसके मकानमें हूं। वह भी आधी रातके वक्त और बिना मालिक-मकानकी रजामन्दीके। यह ख्याल आते ही कानूनकी सब दफाएं मेरी आंखोंके सामने घूमने लगीं। मैं अपनी ही दृष्टिमें चोर हो गया। हाथोंमें हथकड़ी, पैरोंमें बेड़ियां पहिने पुलिसके पहरेमें जेलखानेकी तरफ जाता हुआ मालूम पड़ा। चारों तरफ लानत, फटकार और थू-थूकी आवाज गूंज उठी। मेरे प्राण सूख गए। दिलमें डर समा गया। चेहरेसे घबराहट और बदहवासी बरसने लगी। बदन पसीने-पसीने हो गया। सर चकरा गया। पैर थरथराने लगे। मैं खड़ा न रह सका। मैं वहीं दरवाजेके पास ही बैठ गया।

पन्ना—"हां हां, जमीनपर न बैठो।"

मैं—"बस बोलो मत।"

पन्ना—"हाय! हाय! तुम्हें क्या हो गया? पानी लाऊं?"

मैं—"नहीं, बल्कि जहर।"

पन्ना पानी लेनेके लिये दौड़ी। घबराहटमें उसके हाथ-

से गिलास छूटकर गगरेपर झनसे गिरा। कमरेमें उसकी मां जग पड़ी और वहींसे बोली—"कौन है?"

इसके बाद मुझे नहीं मालूम कि मैं कैसे और किस तरह सड़कपर आ गया।

---

[१६]

तुम्हें देखिबेकी महा चाह बाढ़ी
विलापै, बिचारै, सराहै, स्मरै जू।
रहे बैठि न्यारी घटा देखि कारी,
बिहारी, बिहारी बिहारी ररै जू।
भई काल बौरी सि दौरी फिरी,
आज बाढ़ी दसा ईस काधौं करै जू।
बिथामें ग्रसी सी, भुजंगै डसी सी,
छरीसी, मरीसी, घरीसी भरै जू॥"

खुशबूही फूलको प्यारा बनाती है, रंग नहीं। प्रेम ही सुन्दरताको मोहनी बनाता है, रूप नहीं! फिर जिस सुन्दरीमें प्रेम न हो वह लाख खूबसूरत होनेपर भी किस कामकी?

आंखोंको भले ही थोड़ी देरके लिये सुख दे, मगर हृदयको सन्तोष नहीं दे सकती। वह नीयतको केवल बिगाड़ना ही जानती है उसको सुधारकर हृदयमें भक्तिभाव उभारना नहीं। मैं पन्नाके लिये क्यों इतना पागल और बेचैन था? सिर्फ इसीलिये कि वह भी मेरे लिये बावली हो रही है, मगर आज मालूम हुआ कि वह मुझपर नहीं बल्कि गहनों-पर जान देती है। वह मुझे सिर्फ इसीलिये प्यार करती है कि मैं उसे बराबर रुपये देता हूं। अगर मुझसे भी बढ़कर कोई आंखका अन्धा और गांठका पूरा उसे मिल जाय तो निस्सन्देह उसका प्यार मेरी तरफसे खिंचकर उसकी तरफ मुड़ जायेगा। उसके हृदयमें केवल लालच ही लालच है और कुछ भी नहीं। फिर—

"सोनेसो रंग भयो तो कहा, अरु जो विधिना कटि खीन संवारी।
दान्योंसे दन्त भयो तो कहा, जु कहा भयो लाम्बी लटैं सटकारी।
रूपकी रासी भई तो कहा, नहीं प्रेमको रासो हिये अवधारी।
नैन बड़े जो भए तो कहा, पर आखिर गोरस बेचन-हारी॥"

बेशक यह उसकी छोटी जातीयताका प्रभाव है। इसी-लिये लोग कहते हैं कि 'ओछेसे प्रीति दई न करावे'। हाय! मुझसे बड़ी मूर्खता हुई जो जान-बूझकर ऐसी कमीनी धाकड़ीसे दिल लगाया। अपने उत्तम भाव एक अनुचित

और सर्वथा अयोग्य व्यक्तिपर नष्ट कर डाले। क्योंकि दूध-पर पालनेसे भला कहीं नागिन जहर उगलना छोड़ सकती है? नही, कदापि नहीं।

प्रेम जितना ही घना होता है उतना ही वह तुनुक-मिजाज भी होता है। और उतनी ही अधिक जरासी बात-पर उसमें चोट लगनेकी सम्भावना होती है? तभी तो पन्नाके हृदयकी असलियत जानकर मेरी वह दशा हुई जिसका वर्णन करना लेखनीकी ताकतके बाहर है। प्रेमको घायल पाते ही घृणाने अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे मेरे हृदयपर चढ़ाई कर दी। फिर तो पन्नाकी सारी बातें जो प्रेमके साम्राज्यमें अत्यन्त ही प्यारी मालूम होकर हृदयको मोहित किये हुई थीं उन्हींमें अब ऐब दिखलाकर घृणा हृदयको अपनी ओर मोड़ने लगी। इसके आवेशमे मैंने जाना कि पन्नाका नित मन्दिरपर आना मेरे लिये नहीं बल्कि मेरे रुपयोंके लिये था। मन्दिरपर जिस दिन उसकी सखीके आ जानेसे मैं उसे रुपया न दे सका था उस दिन वह रुपये ही लेनेके लिये फिर आनेको कहकर मुझे कम्बख़्तने रातभर गलियोंमें खड़ा रखा। महेशबाबूके यहां भी उसने मुझे इसी-लिये बुलाया था ताकि मैं जान जाऊं की एक और उल्लूने भी उसके लिये थैली खोल रखी है और इसलिये मैं अपनी

बोली बढ़ाता रहूं। अगर मैं उसका नुकसान पूरा न कर देता तो वह कदापि नोट न फेंकता। आज भी उसने मुझे इसी नियतसे अपने घर बुलाया था कि उसे गहनोंकी जरूरत थी। उफ! इन ख्यालातमें पड़कर मैं बराबर अपनेको धिक्कारने लगा।

यों जब मैं उसे अपना हृदय ही दे चुका था तब फिर मेरे पास बाकी ही क्या रह गया था। जान-ईमान, रुपये-पैसे जो कुछ मेरे थे सब उसीके हो चुके थे। मुझे तो उसको अपना सब कुछ देकर भी सन्तोष न होता। मगर अब उसकी नीयत देखकर हृदयने ऐसा पलटा खाया कि उसे एक पैसा भी देते हुए मुझे खलने लगा। जी नहीं चाहा कि उसे गहने दूं। मगर उसने अपने हृदयका कमीनापन दिखलाया तो क्या मैं भी कमीनापन करूं? नहीं, यह भलमनसाहत नहीं है। इसलिये दिलपर जब्र करके बाजारसे मैंने बने बनाये गहने मंगवाए और उन्हें कागजमें लपेटकर और फिर सुतलीसे अच्छी तरह बान्धकर एक नासमझ लड़केके हाथ पन्नाके पास चुपकेसे भिजवा दिये। और कसम खाई कि जो कुछ हो चुका वह हो चुका अब उनका मुंहतक न देखूंगा।

अफीमको नशेकी बुराइयां जानकर अफयूनसे घृणा

करके भागता है। उसको त्यागनेके लिये कड़ी-से-कड़ी कसमें खाता है। मगर जब चुस्की लगानेका समय आता है तब वह अपनी आदतसे मजबूर हो जाता है। उसकी सारी प्रतिज्ञाएं धूलमें मिल जाती हैं। और वह विवश हो-कर फिर अफयून घोलने लगता है। यही हालत जब पन्ना-का मन्दिरपर आनेका समय हुआ, मेरी हुई। जितना ही मैं अपने हृदयको काबूमें रखने लगा उतनी ही उसकी बेकली, बेचैनी और छटपटाहट बढ़ने लगी। तीन दिनतक प्रेम और घृणाका इसी तरह संग्राम होता रहा और मैं बरा-बर घृणाहीका पक्ष लेकर अपने प्रेमको दबाता रहा। परन्तु इस मानसिक उपद्रवसे हृदयकी बुरी गति हो गई। इसका भयंकर प्रभाव मेरे स्वास्थ्यपर पड़ा। मैं बीमार पड़ गया और चलने-फिरनेसे भी मजबूर हो गया।

बीमारी दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। अपनी सेवासे मेरे जलते हुए हृदयपर शीतल जलकी बून्दें छिड़कनेवाली घर-पर मेरी स्त्री भी न थी। फिर बीमारी घटती तो क्योंकर घटती। सातवें दिन ज्वरका ताप बहुत बढ़ गया। इधर हृदयकी जलन और उधर देहकी जलन। कलेजेके इस तरफ भी आग और उस तरफ भी आग। उफ! बुरी हालत हो गई। होश-हवास जाते रहे। बेसुधीकी दशामें मेरी आंखें बन्द हो गईं।

कबतक ऐसी हालत रही मैं नहीं जानता। घरकी बूढ़ी औरतें परेशान होकर बार-बार मेरी पेशानीपर हाथ रखके ज्वरका ताप देखा करती थीं। परन्तु एक दिन उसी तरह किसीने मेरे मत्थेपर हाथ रखा जिसके स्पर्शमें न जाने कौनसी बात थी कि मुझे मालूम हुआ मानों मेरी भीतरी जलनमें कुछ ठंढक पहुंची। मैंने आंखें खोल दीं। देखा कि पन्ना मेरी तरफ देख रही है और उसकी सूरतसे बदहवासी और घबराहट बरस रही है।

पन्ना अब मुझे नित आकर देखने लगी। संकटकी घड़ीमें थोड़ी भी सहानुभूति बेगानोंको अपना बना देती है। इसीलिये घरकी औरतें उससे प्रसन्न रहने लगीं और मेरी भी घृणामें अब उतनी तेजी नहीं रही। तुलसीके न होनेके कारण उसके आनेमें कभी रोक-टोक नहीं हुई। उसकी मौजूदगीसे मेरी बेचैनी बहुत कुछ शान्त होने लगी, और धीरे-धीरे मैं अच्छा हो चला।

एक दिन जब पन्ना जाने लगी और घरकी औरतें अपने काम-धन्धोंमें फंसी थीं, मैंने कहा कि—"अभी थोड़ी देर और बैठो।"

पन्ना—"अच्छा। मेरा बस चले तो यहीं जिन्दगीभर बैठी रहूं। मगर क्या करूं, अम्मां मेरी दुश्मन हैं।"

यह सुनते ही मेरी रही-सही घृणा भी दुम दबाकर सरकी। मैंने घबराकर पूछा कि—"क्यों, तुम्हारी अम्मां दुश्मन कैसी?"

पन्नाने एक बड़ी गहरी सांस ली और कहा कि—"तुम क्या जानो?" और फिर रोने लगी।

मैं—"अरी! यह क्या पन्ना, तुम रोती क्यों हो?"

पन्ना—"जब तुमने मुंह फेर लिया तब क्या करोगे पूछकर?"

मेरी घृणा पलट पड़ी और प्रेमको फिर पीछे हटाने लगी।

मैं—"कैसे जाना कि मैंने तुमसे मुंह फेर लिया? इस लिये कि मैं तुम्हें अब रुपये नही देता हूं?"

पन्ना—"नहीं, वल्कि इसलिये कि तुमने अपनी बीमारी-की मुझे खबरतक नहीं दी। जब मैंने कई दिनतक तुम्हें मन्दिरपर नहीं देखा तब मुझसे नहीं रहा गया और डरते-डरते यहां आई।"

प्रेमने यकायक धावा कर दिया और घृणा फिर भाग खड़ी हुई।

मैं—"हाय! पन्ना, मेरी यह दशा तुम्हारी वजहसे हुई।"

पन्ना—"और तुम क्या जानो तुम्हारे कारण जो मुझ-पर सांसत हो रही है।"

मैं—"कैसी सांसत ?"

पन्ना फिर रोने लगी और बोली—"तुम मुझे अपने ही सामने रखो या मुझे कहीं लेकर भाग चलो। बस, और मैं कुछ नहीं जानती।"

मैं—"भला दुनिया ऐसा मुझे काम करने देगी ?"

पन्ना—"हाय ! तो बताओ मैं क्या करूं ?"

मैं—"आखिर बोलो तुम्हें कौनसा दुःख है ?"

पन्ना—"दुःख न पूछो, जब तंग आकर मर जाऊंगी तब जानोगे।"

मैं—'अरी ! बता तो सही, तुझे मेरी कसम।'

पन्ना—"क्या कहूं ? तुम्हारे घर में अम्मांसे छिपकर आती हूं। अगर पता पा जांय तो आफत कर दें। आज-कल दोपहरमें वह सो जाती हैं तभी मुझे यहां आनेका मौका मिलता है। वह इसीलिये मुझपर इतनी चौकसी रखती हैं कि कहीं मैं तुम्हारे पास न चली जाऊं। तभी तो वह मुझसे नाराज रहती हैं।"

मैं दिलमें कुछ सोचकर मुस्कुरा पड़ा।

मैं—"मगर पन्ना ! उसने तो शायद खुद ही तुम्हें महेशबाबूको माला देनेके लिये भेजा था।"

लज्जासे चेहरा लाल हो गया।

पन्ना—"यही तो झगड़ेकी जड़ है, जो मैं उनका कहना नहीं सुनती। क्या मैं इतना नहीं समझती कि कौन बेवकूफ खाली मा॰॰के लिये दस रुपये देगा?"

मैंने मुस्कुराकर कहा—"तब तो इससे बढ़कर बेवकूफ तुम उसे समझती होगी जो सड़कोंपर योंही रुपये फेंका करता है।"

पन्ना झट एक हाथसे मेरा मुंह बन्द करके बोली—"चुप और फिर शर्मा गई। थोड़ी देरके बाद सर झुकाए हुए गम्भीरतासे बोली—

पन्ना—"उन्हीं रुपयोंक॰ कर मैं अम्मांको कुछ खुश रखती हूं। नहीं तो वह मुझे मन्दिरतक भी न आने द और तुरन्त ही मुझे ससुराल भेज दे।"

मैं—"यहांसे तो वहां मजेमें रहोगी।"

पन्ना—"हाय! वहां तो और भी आफत है। मेरी सौतेली सास नई हैं और गांवके जमींदारसे उनसे बड़ा मेल है। बस और क्या कहूं। यहां तो मन्दिरपर आकर मैं अपना सब दुखड़ा भूल जाती हूं। मगर वहां हाय! दिन-रात रोते ही बीतता है।"

यह सुनते ही मुझे एक नई जलन पैदा हो गई, और

पन्नापर मुझे बेहद तर्स मालूम हुआ। हृदयमें प्रेमका दरिया उमड़ उठा, और जी चाहा कि झटसे उसे कलेजे-से लगा लूं। मगर मैं अपनी कमजोरीकी हालतमें चारपाई पर लेटा था, और वह मेरे सिरहाने जमीनपर बैठी हुई मेरा सर दबा रही थी। घरके लोग दूर थे फिर भी सामने दिखाई देते थे। इसलिये चुपकेसे उसका सिर्फ हाथ ही चूमकर रह गया। वैसे ही मुझे गहनोंकी याद आई। देखा तो पन्नाके हाथ पहिलेहीकी तरह सूने हैं।

मैं—"पन्ना! मेरे भेजे हुए गहने क्या तुम्हें नहीं मिले?"

पन्ना—"मिले क्यों नहीं। मैंने उन्हें अम्मांको देकर पूर्णमासीमें गंगास्नानको चलनेके लिये राजी किया है।"

मैं—"क्यों? आखिर वहां जानेकी जरूरत?"

पन्ना—'मैंने एक मन्नत मानी है।"

मैं—"अरे! तुम धार्मिक भी हो? मैं तो तुम्हें खाली लालची ही जानता था।"

उसने भी हंसकर जवाब दिया—"और मैं तुम्हें आदमी समझती थी, मगर निकले निरे डरपोक।" यह कहकर मुस्कुराती हुई चली गई।

---

[२०]

"कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसे यह लोक नरलोक वर लोकनि,
मैं लीन्हीं मैं अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौं।
तन जाउ मन जाउ 'देव' गुरुजन जाउ,
जीव किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावनवारी बनवारीकी मुकुट वारी,
पीत पट वारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

उसी दिन सन्ध्याको गाड़ीसे मेरी स्त्री मेरी बीमारी-की खबर पाते ही मायकेसे चली आई। यहां आनेपर उसे मालूम हुआ कि उसकी गैरहाजिरीमें पन्ना यहां आया करती थी। फिर तो वह आते ही अपना सारा गुस्सा मुझपर इस बहाने निकालने लगी कि मैंने उसे अपनी बीमारीका हाल क्यों नहीं लिखा। और बीच-बीचमें इस तरह ताने भी मारती जाती थी कि "हां हां, मैं कौन हूं, तीनमें या तेरहमें? मैं तुम्हारा अपनी होती तब तो। पन्ना-के आगे भला मेरी क्यों पूछ होती?" उधर तुलसीसे भी

न रहा गया। वह सीधे पन्नाके घर दौड़ गई और वहां जा-कर उसके मां-बापके सामने वह आफत मचाई कि फिर पन्ना न तो मेरे यहां आने पाई और न वह मन्दिर ही पर मुझे देखनेको मिली।

इसलिये अब मेरी तबियत बहुत बेचैन रहने लगी। शामको अकसर जब तबियत बहुत घबरा उठती थी तो सुनसान स्थानोंपर जाकर घण्टों अकेले बैठा रहता था। इसी तरह एक दिन मैं पार्कमें एक झाड़ीके किनारे चुप-चाप लेटा हुआ था। थोड़ी देरके बाद वहांसे कुछ दूरपर कई लोग आकर बैठ गये। उनमें महेशबाबू और कालीबाबू भी थे। चान्द निकल आया था। मगर झाड़ीकी साया मुझपर पड़नेके कारण मैं बिलकुल अंधेरेमें था। इसलिये उन लोगोंने मुझे नहीं देखा।

उनकी बातचीतसे यकायक पन्नाका नाम सुनते ही मेरे कान खड़े हो गए और मैं बड़े गौरसे उनकी बातें सुनने लगा।

महेश—"मारो गोली, तुमने भी किस चुड़ैलका नाम लिया। कम्बख्तका मिजाज ही नहीं मिलता।"

काली—"तो क्या उसकी उम्मीद छोड़ देनी पड़ेगी ?"

महेश—"भाई, क्या बताऊं ? मैं तो सब कोशिशें कर-

के हार गया। ऐसोंके लिये दो-चार रुपये बहुत हैं! मगर मैं तो एकदम दस रुपये देकर उसकी मांको राजी किया था। फिर भी वश नहीं चला।"

काली—"मेरी भी जब कोई तरकीब न चली तब हारकर उसको मांसे मिला। पहिले तो वह बहुत बिगड़ी, मगर मैं इन लोगोंको खूब जानता हूं। उसकी गीदड़-भभकियोंमें मैं कहां आनेवाला था। चुपकेसे उसके हाथमें पांच रुपये रख दिये, तुरन्त रास्तेपर आ गई।"

महेश—"मगर नतीजा क्या हुआ?"

काली—"रुपये पानीमें गये। फिर उस दिनसे उसकी मां मिलती ही नहीं। बुलवानेपर भी नहीं आती।"

महेश—"भई, मैं ही खुशकिस्मत हूं। मेरे रुपये तो वापस हो गए।"

काली—"तो मैं क्या रुपये खोकर चुप थोड़े ही बैठा हूं। पांचके बदले उसके पचास न खर्च करा दूं तो मेरा नाम नहीं। उसके बिरादरीवालोंमें मैंने आग लगा दी है कि पन्नाकी मां कुटनी है और अपनी लड़कीके जरियेसे रुपये कमाती है। अब उसका हुक्का पानी बन्द होने ही वाला है। फिर बिरादरीको खिलाते-खिलाते उसे आटे-दालका भाव मालूम होगा।"

महेश—"खूब किया दोस्त! चलासे पन्ना हमेशाके लिये हाथसे गई। चलो, अब हजरत भी रह जायंगे अपना मुंह लेकर। उन्होंहीने तो इसे इतना आसमानपर चढ़ा रखा है।"

मैं समझ गया कि हजरतसे इशारा मेरी तरफ है!

काली—"अजी उनकी न कहो। वह तो बड़े बेढब निकले। अब पता ही नहीं मिलता कि हजरत कहां रहते हैं। उसीके पीछे हम लोगोंको धता बताकर अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकाते हैं।"

महेश—"वह भी अब कबतक? हांडी ही गायब कर दी जाय तो पकायेंगे क्या अपना सर?"

काली—"इसकी तो तदबीर मैंने कर ही दी है।"

महेश—"अजी, उससे बढ़कर मैंने सोची है। मैं चुपकेसे इनकी आशनाईकी खबर उसकी ससुरालमें पहुंचाए देता हूं। फिर देखना, हजरत किस तरह उससे मिलने पाते हैं। लाख सर पटकके मर जाएं, मगर अब जिन्दगीभर टापते ही रहेंगे। उसकी तमाम बिरादरीवालोंकी नजर इनपर हर वक्त रहेगी। किस-किसकी आंखोंमें धूल झोकेंगे?"

काली—"और इनके लिये तो खास तौरसे पन्नापर भी खूब कड़ी रोक-टोक रहा करेगी। बस यही ठीक है।"

यह बात मेरे हृदयपर वज्राघातसे भी अधिक लगी। मैं तड़प उठा। मगर करता क्या? केवल कलेजा मसोस-कर रह गया। वह लोग तो उठकर चले गए मगर मैं वहीं पड़ा हुआ बड़ी देरतक छटपटाता रहा। यह सोच-सोचकर और भी परेशानी बढ़ती थी कि "हाय! पन्ना मुझे अब कभी देखनेको भी न मिलेगी। न जाने उसपर कैसी-कैसी आफतें आनेवाली हैं। इन कमबख्तोंको द्वेष निकालना है तो अकेले मुझीपर क्यों नहीं निकालते? गेहूंके साथ घुन क्यों पीसे देते हैं? या ईश्वर तुम्हीं इन हत्यारोंके अत्या-चारसे उसकी रक्षा करो। मुझे न देखनेको मिले न सही मगर उसपर कोई आंच न आवे।"

यकायक मेरी दृष्टि चान्दपर गई। वह पूर्ण रूपसे आकाशमें विराजमान था। फिर भी उसकी गोलाईकी लकीर एक तरफ कुछ सीधी-सी थी। अब याद आया कि कल पूर्णमासी है और कल ही गङ्गास्नानका मेला भी है जहां पन्नाने जानेको कहा था। अगर गई होगी तो आज शाम हीकी गाड़ीसे चली गई होगी। आधी रातको एक गाड़ी और जाती है। मगर वह स्नानके समयके बाद वहां पहुंचती है। क्या मैं भी चला जाऊं? शायद उससे वहां भेंट हो जाए। वरना बादको जहां इन हत्यारोंकी सुलगाई

हुई आग भड़की फिर तो उसकी परछाईंके लिये भी तर-सना पड़ेगा।

यह ख्याल आते ही मैं झटपट घर आया। मगर फिक्र हुई कि वहां जानेके लिये क्या बहाना करुं। जाऊं या न जाऊं। और जाऊं तो इस तरह कि भण्डा न फूटे। बस, इसी सोच-विचारमें गाड़ीका समय निकल गया और सारी रात भी कट गई। मगर यह समस्या हल न हुई। अन्तमें हाथ मल-मलकर पछताने लगा कि—"हाय! जिन्दगीमें अब मेरे लिये उससे मिलनेका एक यही मौका था उसे भी मैंने खो दिया। अब क्या करुं?"

दस बजे दिनको खा पीकर कामपर जानेके लिये अपने घरसे निकला। मगर पहुंच गया स्टेशन। घाटकी गाड़ी सीटी दे चुकी थी। कहीं जानेका मेरा इरादा न था। मुझे खुद ताज्जुब था कि यहां क्यों आया। मगर जब रेल चली तब मुझे होश हुआ और जाना कि मैं गाड़ीमें बैठ हुआ हूं।

बीचके स्टेशनोंपर कई 'स्पेशल' गाड़ियां मेलेके यात्रियो-को वापस लाती हुई मिलीं। मुसाफिरोंसे डब्बे खचाखच भरे हुए थे। मैं अपनी खिड़कीसे सर निकालकर वापस आती हुई गाड़ियोंके मुसाफिरोंको आंखें फाड़-फाड़कर देखने

लगा। मगर उन भीड़ोंमें क्षणिक दृष्टिसे किसीको पह-चानना असम्भव था। दिलमें यह कुशङ्का पैदा होने लगी कि ऐसा न हो कि पन्ना भी इन्हीं गाड़ियोंमें लौटी जा रही हो।

घाटके स्टेशनपर उतरा, स्टीमरपर चढ़ा और चार बजे मेलेमें पहुंचा। मेला इस समय घाटसे हटकर तमाम शहर भरमें फैला हुआ था। हर गली-कूचेमें यात्री हजारोंकी संख्यामें फटे पड़ते थे। यह हाल देखकर मैं हाय मारकर रह गया। इस अथाह भीड़में मैं पन्नाको कहां, किस तरफ और कैसे ढूंढ़ू ? उसका पता लगाना तो भूसाभरी कोठरीमें एक खोई हुई सूईको ढूंढ़ निकालनेसे भी कहीं कठिनतर है। और उसपर यह दुविधा अलग कि वह मेलेमें आई है या नहीं। अगर आई है तो अभीतक यहीं है या लौट गई।

उफ! बहुत सर मारा। बहुत ढूंढा। बड़ी दौड़-धूप की, मगर सब कोशिशें बेकार हो गईं। टांगोंका बुरा हाल हो गया। आंखें पथरा-सी गईं। मुंहपर हवाइयां उड़ने लगीं। शामकी अन्धियाली छा गई। चिराग-बत्तीका वक्त आ गया। अब भीड़में नजरोंने काम करनेसे जवाब दे दिया। अब क्या करूं ? अफसोस! वापस जानेवाली स्टीमर भी छूट गई।

फिर भी जहांतक दममें दम था, आशामें जान थी मैंने नौ बजे राततक शहर भरकी गलियां छान डालीं। अभीतक पानीकी एक बून्द भी मेरे मुंहमें नहीं गई थी। इधर पन्नाके लिये छटपटाहट, उधर थकावटकी मार और उसपर भूख-प्यासकी बेचैनी। उफ! अंग-अंग शिथिल पड़ गए। पासमें न ओढ़ना और न बिछौना। यहां कहां पड़ रहूं या घर किस तरह वापस जाऊं और वहां पहुंचकर मेरी क्या दुर्दशा होगी अब यह सोचकर मेरी रही सही जान भी निकल गई।

शायद पन्ना स्टीमरपर उस पार चली गई हो। भीड़ बहुत थी। मुमकिन है उसे गाड़ी न मिली हो। इसलिये हजारों मुसाफिरोंकी तरह वह भी स्टेशनपर अभीतक पड़ी हो। मगर मैं उस पार कैसे जाऊं? अब तो सुबहको स्टीमर मिलेगी।

घाटपर एक डोंगीवालेको बड़ी मुश्किलोंसे उस पार चलनेके लिये राजी किया। और मैं नावपर बैठ गया। जब बीच दरियामें पहुंचा तो देखा कि उधरसे एक छोटीसी डोंगी आ रही है। और वह हमारी नावसे टकराते-टकराते बच गई। मैं अपने ख्यालातमें ऐसा डूबा हुआ था कि मुझे मालूम नहीं हुआ कि उसपर कौन था। इतनेमें उसपरसे एक आवाज आई।

"अरे! कौन? तुम! यहां!"

यकायक मुर्देमें जान आ गई। निराशाकी अंधियालीमे सूर्य निकल आया। मेरे हृदयमें बिजली दौड़ गई। बोटी-बोटी फड़क उठी। कलेजा बांसों उछल पड़ा। मेरा खोया हुआ धन मिल गया। मारे खुशियालीके मैं आपेसे बाहर हो गया।

मैं—"अरे! पन्ना?"

मैं झटसे कूदकर उसकी डोंगीपर हो रहा, और अपनी नाव वापस कर दी। अब देखा कि डोंगीपर पन्ना अकेली बैठी हुई खे रही है। उसे इस हालतमे पाकर मैं अपना सब दुखड़ा भूल गया।

मैं—'क्यो पन्ना! तुम इसपर अकेली कैसे? इस नाव-का मल्लाह कहां?"

पन्ना—"यह हमारे मामाकी है। वह इस पार रहते हैं। मगर फूल देने रोज उस पार जाना पड़ता है। इसलिये उन्होंने यह डोंगी खास अपने लिये बनवा ली है। हमलोग उन्हींके यहां टिके हैं। मैं इस वक्त वहांसे चुपके से चली आई हूं। और किनारेसे डोंगी खोलकर बैठ गई।"

मैं—"क्या उस पार जा रही हो?"

पन्ना—"नही। बस यहीं तक।"

यह कहकर उसने नाव खेना बंद कर दिया। डोंगी धीरे-धीरे धारमें बहने लगी। इतनेमें डांड़ मेरे हाथमें देकर वह नावका किनारा पकड़े हुए झट दरियामें लटक गई। मैं घबड़ा उठा। मेरे हाथ-पांव फूल गए। हक्की-बक्की बन्द हो गई। मैं "कि कर्तव्य विमूढ़" की तरह खाली देखता ही रह गया और वह पानीमें गोता लगाकर फिर तुरन्त ही नावपर हो रही। अब जाकर मेरी जानमें जान आई और मेरे मुंहसे आवाज फूटी।

मैं—"यह कौनसी बेवकूफी थी ?"

पन्ना—"मैंने एक मन्नत मानी थी कि बीच धारामें स्नान करूंगी।"

मैं—"भाड़में गई ऐसी मन्नत। अभी नावका किनारा हाथसे फिसल जाता तो मालूम होता। मैंने भी तुमसे मिलनेके लिये सैकड़ों ही मन्नतें मानी थीं। मगर ऐसी बेतुकी एक भी नहीं।"

पन्ना—"सच ? मुझसे मिलनेके लिये ?"

मैं—"हाँ, तुझीसे मिलनेके लिये।"

पन्ना—"मैं तो तुम्हें मिल गई। अब इस डांड़की क्या जरूरत ? यह नावको खेकर वहीं ले जायगा जहां तुम मुझसे फिर छिन जाओगे।"

पन्ना—"मैं तो तुम्हें मिल गई। अब इस डांड़की क्या जरूरत? यह नावको खेकर वहीं ले जायेगा जहां तुम मुझसे फिर छिन जाओगे।"

[पृ० ४१२

यह कहकर उसने मेरे हाथसे डांड़ छीन लिया और उसे दरियामें फेंक दिया। मैं उसकी यह कार्रवाई देखकर दंग हो गया। मगर मेरा हृदय फूला न समाया। प्रेमका लबालब प्याला छलक उठा। मैं आपेसे बाहर हो गया। झटसे पन्नाको खींचकर अपने कलेजेसे लगा लिया और कहा—

मैं—"अच्छा तो पन्ना! फिर वहीं चल जहां दुनिया न हो, समाज न हो, डर न हो, बदनामी न हो। खाली हम हों और तुम और तीसरा कोई न हो।"

इसके जवाबमें उसने केवल एक ठंढी सांस भरी और अपने दोनों हाथ मेरी गर्दनमें डालकर अपना सर मेरे कन्धेपर झुका दिया।

मैं—"मगर पन्ना! यह तो बताओ तुमने यह मन्नत क्यों मानी थी?"

पन्ना—"वैसे ही।"

मैं—"बातोंमें न टालो। बता दो।"

पन्ना—"तुमसे क्या मतलब?"

दो आत्माओंके मिलते समय बीचमें यह हलका पर्दा कैसा? दूध और पानीके बीचमें कागजकी दीवाल? मखमलके गद्देपर एक छोटी-सी कङ्कड़ी? भला कैसे गवारा की

जा सकती है ? उसी तरह मैं भी अपने इस स्वर्गीय सुखके मज़ेको पन्नाकी इस पर्दादारीसे किस तरह किरकिरा कर सकता था ? इसलिये बिना उसका भेद जाने मुझसे रहा न गया। जितना ही वह इसके छिपानेका उद्योग करने लगी उतनी ही मेरी जिद् बढ़ती गई। अन्तमें मेरे हाथ जो उसे मेरे हृदयसे लगाए हुए थे आप-से-आप ढीले पड़ गए और सरककर नीचे गिर गए। और मैंने बड़े खिन्न हृदयसे कहा—

मैं—"तो मालूम होता है तुम मुझे गैर समझती हो। तभी अपने भेदको मुझसे छिपाती हो।"

पन्ना—"नहीं यह बात नहीं है।"

मैं—"देखो, गंगाकी धारपर हो, झूठ न बोलो।"

पन्ना—"हाय! जब तुम बीमार पड़े थे तो तुम्हारे अच्छा होनेके लिये मैंने यह मन्नत मानी थी।"

यह सुनते ही मैं फड़क उठा और मेरे हृदयमें एकबारगी प्रेमकी ऐसी बाढ़ उमड़ पड़ी कि मैं अपनेको किसी तरह सम्हाल न सका। फिर तो बेअख्तियार उसके चरणोंपर यह कहते हुए मैंने अपना सर रख दिया कि—

"अरी पन्ना! तूने यह क्या किया? तू अनुचित प्रेम-से कलङ्कित होनेपर भी उत्तमोंमें उत्तम है। समाजकी

पापिनी होनेपर भी तू प्रकृतिकी देवी है। तेरा हृदय संकुचित और ओछा होनेपर भी उदार और गम्भीर है। तूने अपने गहनोंके भी शौकसे बढ़कर अपनी भीतरी सुन्दरताका ऐसा परिचय दिया कि यह सुन्दरता चिरस्थाई न सही, क्षणिक ही सही फिर भी सर्वथा पूजनीया है। धन्य है प्रेम, धन्य है तू पन्ना, और धन्य है तेरी स्त्री-जाति जो दुनियाकी जटिल-से-जटिल समस्याओंसे भी जटिल है, जिसका ठीक-ठीक हल करना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है और जिस दिन यह समस्या हल हो जायेगी उसी दिन संसारकी रोचकताओंका भी अन्त हो जायेगा।"

उसने जल्दीसे अपने पैर खींचकर अपने हाथोंसे मेरे सरको उठा लिया और उसे गोदमें लेकर अपने हृदयसे लगा लिया। गंगाकी लहरें मेरे मानमर्दनका उचक-उचककर तमाशा देखने लगी और ऊपर चान्द भी खिलखिलाकर हँसने लगा।

राधा

[१]

"समझके रखियो कदम आशियांसे ओ बुलबुल।
लगाये बैठे हैं फन्दे जहां तहां सइयाद ॥"

पन्ना! अरे निर्दयी पन्ना! तूने मुझे क्यों इतना पागल बना रखा है? अगर खाली पागल ही बनाकर छोड़ती तब भी अच्छा था। अपने ख्यालातमें हरदम मस्त तो रहता। मगर मेरे ख्यालात ही मुझे मारे डालते हैं। मर जाता तोभी बेहतर था। तब दिलमें इतनी जलन तो न होती? दिन-रात बेचैनीकी धधकती हुई आगमें तो न तड़पता? ईश्वर! क्या करूं? कहीं चैन नहीं मिलता। किसी जगह दो मिनट आरामसे नहीं बैठ सकता। यही धड़का लगा रहता है कि कहीं पन्ना न आती हो।

जब दौड़कर सड़कपर जाता हूं
इधरसे नहीं शायद उधरसे आती हो।
बैलकी तरह कभी इस सड़कपर कभी उस
चक्कर लगाया करता हूं। मगर पन्ना न इ
और न उधरसे।

खुबहसे शामतक सौ-सौ दफे मैं राधाके घर जाता हूं, क्योंकि पन्ना उसके घर कभी रोज आती थी। कुछ दिनों-से उसका वहां आना बिलकुल कम हो गया है। मगर मेरा वहां जाना कम नहीं हुआ, क्योंकि यही आशा लगी रहती है कि अबतक नहीं आई तो आज जरूर आयेगी।

राधा मुझे देखकर बहुत खुश होती है। सिर्फ मेरी बदहवासीकी वजहसे। अफसोस! वह नहीं समझ सकती कि इसकी ऐसी हालत क्यों है, क्योंकि अभी वह नासमझ है। शायद वह मुझे चाभीवाला जानदार खिलौना सम-झती है या बेदुमका मतवाला जानवर। इसीलिये जब मैं वहां जाता हूं तो वह मेरे पास हंसती हुई दौड़कर आती है और निहायत ही भोलेपनके साथ मुझसे खेलने लगती है। जब चलने लगता हूं तब कभी मिठाई, कभी चाय, कभी शरबत, कभी पान, कभी इलायची देकर मुझे परकाये रखना चाहती है।

मुझे भी उसकी लपझप बड़ी प्यारी मालूम होती है, क्योंकि उसीके खेल-कूदमें मेरी बेचैनी कुछ शान्त रहती है। इसलिये मैं वहां और भी जाने लगा।

---

[२]

"गैरत पे तेरी बुलबुल पत्थर पड़े, कि गुलको।
सौ बार हमने हँसते बादे सबा से देखा॥"

पन्नाके प्रेममें मैं इतना पागल क्यों हूं? शायद इसलिये कि मैं उसे हदसे ज्यादे चाहता हूं। जितना मैं उसे प्यार करता हूं उतना शायद ही दुनियामें किसीने किसीको प्यार किया होगा। अकेलेमें उसके पैरकी धूलिको चूमता हूं और सर चढ़ाता हूं। उसकी एक मिहरबानीकी नजरके लिये मैं जानतक देनेको तय्यार हूं। वह भी मुझे प्यार करती है। मेरे लिये व्याकुल रहती है। फिर भी मुझे शांति नहीं है। जब वह सामने रहती है तब भी तड़पता हूं और नहीं रहती तब भी तड़पता हूं। बरसोंसे मैं उसीके पीछे तबाह हूं। कहीं जाता हूं, कहीं रहता हूं, हरदम उसीका ध्यान बना रहता है। हम दोनों सामाजिक श्रेणीमें एक दूसरेसे इतने दूर फेंक दिये गये हैं कि न मैं उसके घर जा

सकता हूं और न उससे बातें ही कर सकता हूं। सब उससे हँसते हैं, बोलते हैं, छेड़खानियां करते हैं और मैं उसे आंख भरके देखने तकको तरसता हूं। इससे और भी बेचैनी है।

पन्ना कोई परदेवाली नहीं है। वह बहुतोंके घर आती-जाती है। बाजारोंमें निकलती है। सैकड़ों मनचले अवारे उसकी ताकमें लगे रहते हैं। कई तो सीधे उसके घर पहुंचते हैं और उसके घरवालोंके संग घण्टों बैठे हुक्का पीया करते हैं। कुछ बड़े-बड़े अमीरोंकी भी निगाहें उसपर पड़ चुकी हैं, जिनके जोर व पहुंच, माल व दौलतके आगे बहुतोंकी इज्जतकी खैर नहीं। और पन्ना तो बेपढ़ी हुई ओछी संगतमें पली हुई है। वह क्या जाने सच्चे प्रेमकी महिमा और सतीत्वके महत्व। फिर भी मैं उसपर जान देता हूं। आजसे नहीं, कलसे नहीं, बल्कि बरसोंसे, मुद्दतोंसे और किस्मतकी बदनसीबी कि इस बीचमें उससे अकेले में इतमीनानसे कुछ देरतक कभी बातें करनेका मौका न मिला। इसीसे मुझे उसके प्रेममें भरोसा नहीं है, बल्कि हद दर्जेकी जलन है, छटपटाहट, बेखबरी और बेचैनी है, जिसके आगे दुनियाकी सब पीड़ायें इकट्ठी होनेपर भी कुछ नहीं हैं। इसको सहते-सहते मैं मर मिटा। उफ! अब नहीं सहा जाता।

अन्तमें घबड़ाकर पन्नाके ध्यानको भुलानेके लाख उपाय किये, मगर सब निष्फल। देवी-देवताओंको मिन्नतें मानीं, मगर मुझे शान्ति नहीं मिली और मेरा पागलपन दूर नहीं हुआ। मैंने हर-तरहसे दिलको समझाया कि पन्ना के चरित्रका एतबार मत कर। नीच कुल और ओछी संगत वालियोंसे सच्चे और निष्काम प्रेमकी आशा और उसपर भरोसा मत कर, ताकि उस तरफसे नफरत हो जाये और मैं इस मुसीबतसे छुटकारा पा जाऊं। मगर प्रेम कम न हुआ। बल्कि दिनोंदिन और दृढ़ होता गया। यहांतक कि अब भी इन ऐबोंका ख्याल करता हुआ भी मैं उसको वैसे ही प्यार करता हूं।

---

[३]

"कूचये इश्ककी राहें कोई पूछे हमसे।
'खिज्र' क्या जाने गरीब अगले जमानेवाले॥"

अगर पन्नाको मैं कुछ घड़ीके लिये भूलता हूं तो उसी वक्त, जब राधा मुझसे मीठी-मीठी बातें करती है, मेरे सामने अठखेलियां दिखाती है। सूखते हुए जख्ममें खुजलाहट बड़ी प्यारी मालूम होती है। मगर उस वक्त मालूम

नहीं होता कि यह खुजलाना कभी जख्मको अच्छा नहीं होने देगा, बल्कि अकसर तो इसके मूल कारणको दबाकर खुद ही मूलकारण बन जाता है और जख्मीको पीड़ा ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। कभी-कभी पहलेसे भी अधिक हो जाती है। और बादको जख्मकी उत्पत्तिका कारण इसकी मौजूदगीके कारणमें कुछ ऐसा घुलमिल जाता है कि इसके दर्दके उभरनेके साथ दूसरे कारण होका ख्याल उठा करता है। यही हालत मेरे प्रेम-घावकी है। पन्नाने जख्म बनाया और राधेने उसपर खुजलाना शुरू किया। इसलिये मुझे राधाकी बातोंमें बड़ा मजा आता है। उसके सामने मैं अपनी तकलीफोंको भूल जाता हूं। मेरा पागलपन दूर हो जाता है।

जब मैं बेचैनीसे तड़पने लगता हूं तब शान्ति पानेके लिये राधाहीकी शरणमें दौड़ता हूं। वह भी मेरी आवाज सुनते ही हजार काम छोड़कर मेरे पास आती है। राधा-को एक दफे दो दफे नहीं बल्कि दिनमें बीसियों बार देखता हूं। और पन्ना अब महीनोंपर दिखाई पड़ती है। राधा मुझ-से खुद छेड़कर बोलती है और पन्नाको मुझसे बातें कर-नेकी कभी हिम्मत नहीं पड़ती। अगर मैं इससे कुछ कहता भी हूं तो वह जवाब नहीं देती, बल्कि नजर नीची किये

अपने रास्ते चली जाती है जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं। मगर दूसरोंकी बातोंके जवाब बेधड़क देती है। जब कभी पन्ना मेरे घर किसी खास कामसे आती है तो मैं उससे बातें करनेका कोई बहाना नहीं पाता। जब मैं भीतर जाता हूं तो वह बिल्कुल कठपुतली सी बनकर नीची निगाह किये बैठी रहती है।

जब राधाके घर मैं जाता हूं या वह मेरे घर आती है तो सैकड़ों बातें हुआ करती हैं। कभी खेल-तमाशेका जिक्र, कभी पढ़ने-लिखनेकी बात, कभी खाने-पीनेका तजकिरा, जिनसे उसकी समझकी खूबी और अक्लकी तेजी बात-बातमें जाहिर होती है। इसलिये राधाकी तरफ मेरी दिल-चस्पी दिनोंदिन बढ़ती ही गई। यहांतक कि जिस दिन राधासे मेरी भेंट नहीं होती, उस दिन दिलमें एक अजीब मीठा मीठा दर्द उठता है।

जब कोई शिकारी अपने शिकारको घायल करके छोड़ देता है और उसकी परवाह नहीं करता तो दूसरे शिकारी-को उसे मार लेनेमें बड़ी आसानी पड़ती है। वही ठेस जो पहिले कुछ मालूम भी नहीं होती, वही जब जख्मपर लगती है उस वक्त उसमें जैसी पीड़ा उठती है उसे जख्मी हीका दिल जानता है। तभी तो 'जूलियेट' ने दूसरेके प्रेमी 'रोमियो'

का चुटकी बजाते ही एक ही चितवनमें काम तमाम किया। वैसे ही पन्नाकी लापरवाही दिखानेसे उसकी गैरहाजिरीमें मेरा जख्मी दिल राधाकी मीठी निगाहोंका शिकार हो गया। एक बीमारीसे बचनेके लिये दवा पीनी शुरू की थी; मगर दवा पीते-पीते उल्टे मुझे दवा पीनेकी बीमारी हो गई। पेटके दर्दको दूर करनेके लिये लोग हुक्का मुंहसे लगाते हैं, मगर कुछ दिनोंके बाद फिर हुक्का मुंहसे नहीं छूटता।

---

[४]

"अल्लाह री आशाकी बुतो बुतखाना छोड़कर।
'मोमिन' चला है काबेको यक पारसाके साथ॥"

पन्ना और राधामें आकाश-पातालका बल है। यह नीच कुलकी सुन्दरी है वह उच्च कुलकी बालिका है। इसकी सहेलियां अवारा लड़कियां हैं, उसी सीता-सावित्री-की जीवनियां हैं। यह निष्काम प्रेमको पूरी तरहसे अनुभव करनेमें असमर्थ है और वह प्रेमको निष्कामके सिवा और कुछ जाननेके अयोग्य है। यह मस्तीमें चूर है तो वह भोलेपनकी मूर्त्ति है। यह शोखी और चुलबुलाहटसे कूट-कूटकर भरी है तो वह सिधाईके सांचेमें ढली है। इसके

कटाक्ष जल्लादकी बेरहम छुरी हैं तो उसकी चितवन नश्तर देनेकी नहरनी है। यह जीते हुएको मारती है तो वह मरते हुएको जिलाती है। इसकी आंखें अगर मदकी छलकती हुईं प्यालियां है तो उसके नयन अमृतके मीठे-मीठे घूंट हैं पन्ना अगर स्वर्गको अप्सरा है तो राधा प्रकृतिमें साक्षात् देवी है।

इसलिये इन दोनोंके प्रति मेरे भाव भी पृथक् हैं। पन्ना-की यादमें जलन और बेचैनी है। राधाके ख्यालमें शीतलता और शान्ति है। पन्नाको देखते ही दिलमें एक बड़े जोर-की खलबली उठती है और मैं बिलकुल पागल हो जाता हूं, और कई दिनतक पागल रहता हूं। राधाको देखते ही चित्तमें प्रसन्नता छा जाती है और तबियत ठिकाने रहती है। पन्नाको पाकर यही जी चाहता है कि उसे बेअख्तियार कलेजेसे लगा लूं, बल्कि दिल चीरकर दिलके भीतर बैठाल लूं मगर फिर भी मुझे चैन न आयेगा। और राधाके सामने यह तबियत करती है कि आगे बैठालकर उसकी पूजा किया करूं।

इसी परेशानी, उलझन बेचैनी और पागलपनके डरसे मैं डरता रहता हूं कि कहीं पन्नासे न भेंट हो जाय। दूसरे, साल भरसे ऊपर हो गये उसने मुझसे एक बात भी नहीं

-की। इस बीचमें कभी मेरे घर आई भी तो उसने मुझे निगाह उठाकर देखा भी नहीं। इससे तबियत मेरी और भी जली हुई है। इधर मेरा जी राधासे बहलने लगा। मैंने भी पन्नाको एकदम भुलादेनेके लिये यह इरादा कर लिया कि अब जो हो सो हो पन्नाको कभी देखूंगा नहीं। दिलको फुसला-मनाकर राधाहीसे बहलाऊंगा और यों उसकी यादको भुला दूंगा।

---

[५]

"ये बुत जो दिलकश हैं आज इतने,
ये रूहपर कल अजाब होंगे।
नहीं समझते जो हजरते दिल,
तो आप एक दिन खराब होंगे॥"

अबतक मैं पन्नाके ख्यालमें दीन-दुनियाको इस तरह भूला हुआ था कि मैंने कभी राधाकी बातोंपर गौर नहीं किया। मगर अब जो आंखें खोलीं तो देखा कि राधाकी बातचीत चाल-ढालमें कुछ छिपा हुआ भेद है। उसकी आंखें खाली देखती नहीं बल्कि कुछ कहती भी हैं। उसकी खातिर-

दारियोंमें बहुत कुछ कोमलता और मधुरता है जो चुपचाप दिलको लुभा रही है, मगर दिमागको खबर नहीं होने देती।

दिमाग उसको निरी बालिका समझता है। उसके लपझप, छेड़छाड़, शोखी, और चुहलको बिल्कुल बच्चोंकी क्रीड़ा और खेल-कूदकी तरह देखता है। इसलिये राधासे हंसने बोलनेमें मैंने कोई बुराई न समझी। उस वक्त मुझे पता नहीं चला कि राधा अपना दिल देकर मेरा टूटा हुआ दिल खींचे लिये जा रही है।

दूधका जला मट्ठा फूंक-फूंककर पीता है। पन्नाकी मुहब्बतमें जैसी मुसीबतें और तकलीफें मुझे उठानी पड़ी हैं, उससें मैंने कसम खा ली कि किसीसे अब मैं प्रेम न करूंगा और ईश्वरसे यही प्रार्थना करता हूं कि दुश्मनको भी यह बीमारी न हो। फिर भला जानबूझकर अब मैं कैसे हिम्मत कर सकता हूं कि राधाको प्यार करूं या यह चाहूं कि राधा मुझे प्यार करे। राधाकी संगतमें मेरा जी बहलता था और मेरे दिलकी तकलीफ कम होती थी। मैं नहीं जानता था कि जी बहलाते-बहलाते फिर मैं उसी मुसीबतमें पड़ूंगा जिससे मैं भाग रहा हूं।

राधा मुझसे बचपनहीसे बहुत हिली हुई थी, मगर कबसे उसकी निगाहें मीठी होने लगीं मैं ठीक बता नहीं सकता।

जबतक राधा अज्ञान थी तबतक उसकी चुहल और लपझपमें कोई रुकावट न थी, मुझे देखते ही वह मेरे पास दौड़कर आती थी, और बेखटके मेरा हाथ पकड़कर खींचने लगती थी। कभी दूरहीसे पुकारकर अपने पास बुला लेती थी। अकसर दावतोंमें जहां मैं उसके साथ जाता था वह मेरी ही थालीमें साथ बैठकर खाती थी, तब वह अपने पैर-से मेरा एक पैर अकसर चढ़ाये रहती थी।

ज्यों-ज्यों वह सशान हो चली, त्यों-त्यों उसकी शोखियां भी कम होने लगीं। एक दिन जब वह चार महीनेके बाद मिली तो पहिलेकी तरह मैंने दौड़कर उसको गोदमें उठाना चाहा। वैसे ही वह झिझककर सिमटी और बल खाकर कतरा गई। यह नई बात देखकर मैं सटपटा गया और राधाको देखने लगा। उस वक्त मुझे मालूम हुआ कि उसकी निगाहें रसीली और शर्मीली हो चली हैं।

स्त्रीकी सुन्दरता कितनी ही अलौकिक और अपूर्व क्यों न हो, मगर अकेली वह पुरुषोंके हृदयमें प्रेमभाव उभार नहीं सकती। जब स्त्रीकी निगाहोंसे रसकी बूंदें बरसती हैं तभी पुरुषोंके हृदयमें प्रेमका अंकुर उगता है। अगर ऐसा न होता तो भिन्न-भिन्न स्त्रियां भिन्न-भिन्न पुरुषोंको अति सुन्दरी न मालूम होतीं, बल्कि सारी दुनिया

एक ही स्त्रीके पीछे दीवानी होते, फिर सबको एक ही स्त्री सुन्दर मालूम होती जो असलियतमें सबसे खूबसूरत है। परन्तु प्रेमकी दिव्य प्रभा हर प्रेमिकाको उसके प्रेमीकी दृष्टिमें सभोंसे सुन्दर बना देती है। वैसे ही राधा आज मुझे बेहद प्यारी मालूम हुई। यहांतक कि जब वह अपने छोटे भाई मोहनको गोदमें लेकर मेरे पास आई और उसने कहा कि—

"तुमने आज मोहनको प्यार नहीं किया। देखो बहुत दिनोंके बाद आया है।"

तब मेरी जबानसे बेअख्तियार निकल पड़ा—

"किसे प्यार करूं, तुम्हें या इसे?"

राधा०—"जिसको मुनासिब समझो।"

अरी राधा! तूने यह क्या पूछा? मेरी समझ अब मेरे पास कहां? वह तो तेरे नयनोंकी प्रेम-वर्षामें डूब गई। मैं क्या जानूं कि क्या करना मुनासिब है और क्या मुनासिब नहीं है। यही जानता तो मेरी जबानसे यह बात निकलती? अफसोस! मैं यही सोच रहा था कि राधा फिर बोली—

"लो, इस बच्चेको तुम्हें दिये देती हूं, तुम इसे अपने घर ले जाओ।"

मोहनको गोदमें लेते हुए राधाका हाथ पकड़कर मैंने कहा—

"तो तुम भी चलो फिर।"

राधाने तिर्छी चितवनसे मेरी तरफ देखा और बोली—

"हट।"

फिर हाथ छुड़ाकर वहांसे चली गई।

---

(६)

"केसव" चूक सबै सहिहौं,
मुख चूमि चले यह तो न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे मोहिंकै,
नहिं आपनि धायसे जाय कहौंगी॥

कहां पहिले राधा मुझसे छेड़खानियां किया करती थी, कहां अब मैं खुद उससे छेड़खानियां करने लगा। अगर वह चुपचाप खड़ी भी रहती है तब भी मैं बिना कुछ छेड़छाड किये नहीं मानता। जब वह लम्पके सामने कुर्सी पर बैठी हुई कुछ लिखती या पढ़ती है तब मैं उसके पास इस तरह खड़ा होता हूं कि उसका पैर ठीक मेरे पैरोंपर पड़े। तब वह कभी अपने झूलते हुए तलवोंको मेरे पैरोंपर

टेक देती है, कभी झुंझलाकर जोरसे उन्हें दबा देती है। जब कभी अंधेरेमें उसके बराबर में बैठता हूं, और उसकी कुर्सीपर उसके गालोंके पास मैं अपना हाथ रखता हूं तो वह उसपर अपना सर झुका देती है। उस वक्त मेरे दिलमें एक अजीब आनन्दकी लहर उठती है जिसमें मैं अपनी सुधबुध भूल जाता हूं, अपने आपको भूल जाता हूं। यहां-तक कि पन्नाको भी एकदम भूल जाता हूं।

पुरुष स्त्रीसे हर बातमें बलवान होता है इसलिये स्त्री अबला कहलाती हैं, परन्तु प्रेममें स्त्रोसे पुरुष निर्बल होता है। पुरुष कितना ही ताकतवर और जबरदस्त हो लेकिन वह किसी स्त्रीको बिना उसकी मर्जी पाये हुए कभी प्रेम करनेकी हिम्मत कर नहीं सकता। यह और बात है कि स्त्रीकी सुन्दरता पुरुषके चित्तको डगमगा दे। उसमें एक तरहकी अभिलाषा उत्पन्न कर दे। परन्तु यह अभिलाषा बिना उस स्त्रीकी खास तवज्जह पाये तुरन्त ही सूख जाती है। स्त्री ही जब हिम्मत दिलाती है तभी पुरुष उससे प्रेम करनेका साहस करता है। वरना मेरी मजाल क्या थी कि राधासे अब मैं ऐसी छेड़खानियां करता।

स्त्री सैकड़ों उपायसे पुरुषको प्रेम करनेकी हिम्मत दिलाती है। वह हावभाव, नाज-नखरे, शोखी और चुल-

बुलाहटसे अपनी दिलचस्पी और तवज्जह दिखाती है और यों दिलको फंसानेके लिये प्रेम-जाल बिछाती है। वह देखना और फिर घूम-घूमकर देखना। वह आंख लड़ते ही मुस्कुरा देना। वह सामनेसे हट जाना, मगर आड़में छिपकर झांकना। वह शर्माकर नजर नीची कर लेना। मुंह फेर-कर पान देना और भाग जाना। वह दरवाजा बन्द कर देना और जरा-सा खोलकर खड़ी रहना, फिर जोरसे भेड़-कर चल देना। वह घूंघट सम्भालते तिरछी नजर चला देना। वह बाहर आवाज सुनते ही घरके भीतर चहचहाने लगना। बात-बातमें खिलखिलाकर हंस पड़ना। न जाने ऐसी-ऐसी कितनी ही तरकीबसे स्त्रियां पुरुषोंको प्रेम करने के लिये उभारती हैं और जब वे प्रेम करने लगते हैं और अच्छी तरहसे उनके प्रेम-जालमें जकड़ जाते हैं तो ये लोग उनको वहीं तड़प-तड़पकर मरनेके लिये छोड़कर बेफिक्र हो जाती हैं। फिर न वह चुहल है न शोखी, न नखरे न चुलबुलाहट, न अठखेलियां और न छेड़खानियां। हैं तो क्या अलग सर झुकाकर बैठना। अगर मजबूरन सामने पड़ जाना तो नजर नीची किये धीरे-धीरे चलना और चुपचाप कतराकर निकल जाना या कठपुतलीकी तरह मुंह फेरकर खड़ी हो जाना। कई बार बुलानेपर बड़ी

मुशकिलोंसे अनमनी होकर बोलना और कभी वह भी न बोलना।

राधाने किस तरहसे मुझे छेड़छाड़ करनेकी हिम्मत दिलाई वह दिल ही जानता है, दिमागको पता नहीं। इसलिये जिस बातको मैं खुद ही नहीं जानता वह मैं क्योंकर बतलाऊं?

राधा घन्टों अपने बंगलेके हातेमें घूमा करती है, कभी-कभी वह सड़कपर निकल आती है। इसके लिये वह अकसर डांटी जाती है तौभी वह मानती नहीं। जबतक मैं वहां रहता हूं तबतक वह एक न एक बहानेसे मेरे सामने रहती है। इन बातोंपर भी मेरे दिमागने अबतक न जाना कि राधाके हृदयमें प्रेम-अंकुर निकल रहा है।

और मैं राधाको कितना प्यार करता हूं इसका भी अभी अनुमान नहीं कर सकता। जब राधा कुछ दिनोंके लिये अपनी ननिहाल चली गई, मुझे बिछुड़नेका रंज तो जरूर हुआ, मगर उसके वियोगमें जलन न थी, क्योंकि मुझे इतमीनान था कि राधा जहां रहेगी वह कभी बदल नहीं सकती। जब मिलेगी तब उसका बरताव मेरी तरफ वैसा ही रहेगा जैसा अबतक रहा है। मगर पन्नाके बारेमें यह इतमीनान मुझे नहीं रहता। कहां असली सोना, कहां सोनेका मुलम्मा। प्रेमके प्रभावसे जानवर आदमी बन

जाता है, आदमी देवता, पापी धर्मात्मा और जल्लाद दया-वान हो जाता है। मेरे प्रेमने भी पन्नाके चरित्र और भाव-पर सोनेका पानी चढ़ा दिया है जरूर, मगर जिस धातुकी पन्ना बनी हुई है वह कबतक कलईके आड़में छिपी रहेगी। कहीं ऐसा न हो कि वह मुझसे बिछुड़कर लालचकी आंच में पड़ जाए और भीतर-ही-भीतर पिघल जाए। इसीलिये कवियोंने कहा है कि—

"ओछेकी प्रीति वई न ठहरावे"

इसी बीचमें मुझे एक जगह दौरेपर जाना पड़ा। वहां-से राधाकी नन्हियाल दस कोसकी दूरीपर थी; मगर रास्ता खुश्कीका था। यकायक मुझे राधाको देखनेकी प्रबल इच्छा हुई। तबियतको कई दफे रोकना चाहा, मगर दिलके जोशके आगे दिमागकी कब चलती है। यद्यपि मैं दिन भरका थका हुआ था, मारे भूख-प्यासके जान निकल रही थी। सवारीने भी आगे चलनेसे जवाब दे दिया। इस मौजेके जमींदारान सभी जान-पहचानके थे। हर तरहके खातिरदारीके सामान मेरे लिये वहां मौजूद थे। मगर मैंने सबपर लात मार दी। जब वहांके लोगोंको मालूम हुआ कि मैं रातके वक्त दूसरे मौजेको जाना चाहता हूं, सब दांतों उंगली काटने लगे। क्योंकि उधरका रास्ता बड़ा ही खतर-नाक था। बीचमें जंगल पड़ता था। वहां डाकुओंके कई अड्डे थे। कई बार मुसाफिर वहां सरे शाम ही लूट लिये

गये थे। हालहीमें एक खून भी हो चुका था। कोई एका या तांगा उस वक्त चलनेको तय्यार न हुआ। मगर मेरी तबियत किसी तरह न मानी। अन्तमें दुगुना किराया देकर एक एकेवानको किसी तरह राजी किया और अकेले उस सुनसान भयानक रास्तेमें राधाका नाम लेकर चल खड़ा हुआ और साढ़े ग्यारह बजे रातको राधाका दर्शन पाकर दम लिया। उस वक्त भी मुझे खयाल न हुआ कि मैं राधा-को प्यार करता हूं और यह उसका प्रेम ही मुझे यहां इतने वक्त खींच लाया है।

बहुत दिनोंसे जी चाहता था कि राधाको एक दफे 'प्यारी' कहूं। मगर हजारों कोशिशें करनेपर भी यह लफ्ज मेरी जबानसे नहीं निकला। न जाने कैसे हमारे यहांके गल्प-लेखकों और औपन्यासिकोंके नौजवान प्रेमियोंकी कौन कहे बूढ़े-बूढ़ियोंमें यह अनमोल 'शब्द' टके पसेरीसे भी बदतर हो गया है। एक दिन राधाके घर मैं बैठा हुआ कागजके छोटे-छोटे टुकड़ोंपर कुछ गोद रहा था। कई बार "प्यारी" लिखा और काटा। इतनेमें वहां राधा आ गई। उसने पूछा क्या लिख रहे हो। मैं घबराया और जल्दीसे उस कागजके छोटे टुकड़ेको जिसपर खाली "प्यारी" लिखा था छिपाकर मैंने जवाब दिया —

"कुछ नहीं !"

राधा—"सचमुच ?"

मैं—"अच्छा बता दूं तो खफा तो न होगी ?"

राधा—"यह मैं पहिले कैसे बताऊँ ?"

मैं डरते-डरते उस कागजको राधाके हाथमें देकर वहांसे भागा। पीछे मुड़कर देखा कि राधा मुस्कुराती हुई कागज फाड़ रही थी। जैसे ही मेरी नजरसे उसकी नजर मिली वैसे ही वह बोल उठी।

"हो पागल तुम।"

उस दिनसे राधा मुझे पागल ही कहती है। एक रोज रातको राधा मेरे घर आ रही थी। उसके घरके कई आदमी थे। मैं भी राधाके साथ था। हम दोनों सबसे पीछे थे। रात अन्धियाली, गली तंग और ऊंची नीची थी। राधा कहीं ठोकर न खा जावे, मैंने उसका एक हाथ पकड़ लिया उसने मेरा दूसरा हाथ अपने हाथमें ले लिया। मुझे शरारत सूझी। मैंने उसकी उंगली अपने मुंहके पास लेजाकर दांतोंसे दबा ली। उसने बदलेमें मेरी उंगली अपने दांतोंके बीचमे रख ली। ऐसा करनेमें उसका सर मेरे छातीकी तरफ झुक गया। मेरा दिल धड़कने लगा। कलेजा बांसों उछलने लगा। राधा उस वक्त मुझे इतनी प्यारी मालूम

हुई कि मैं अपनेको रोक न सका, झटसे उसका मुंह चूम लिया। जबतक वह सम्भले और कुछ कहे या करे तबतक आगेसे उसे किसीने पुकारा और वैसे ही वह मेरा हाथ छोड़कर हट गई।

———

[७]

"दिलसे मेरे कि जबांसे तेरी पूछे कोई।
गैर क्या जाने मजा तो तेरे दुशनाममें है॥"

राधा मुझसे बराबर मिलती है। बड़ी देरतक सामने खड़ी रहती है। मगर अब पास नही आती। जब मैं उसके नजदीक जाता हूं तो वह पीछे हट जाती है। बाजे वक्त तो बुरा मालूम होता है और बाजे वक्त उसका मुस्कुराती हुई पीछे हटना इतना प्यारा मालूम होता है कि यही जी चाहता है कि दौड़कर उसे गोदमें उठा लूं और कलेजेसे लगा लूं, एक दिन मैंने उससे एक किताब मांगी। वह दूरसे मुझे किताब देने लगी। मैंने कहा—

"मैं बाज आया तुम्हारी किताब लेनेसे।"

राधा—"क्यों?"

मैं—"किताब लेती हुई कहीं तुम मुझसे छू न जाओ। और फिर तुम्हें छूत लग जाये।"

राधा—"वाह! वाह! कैसे पागल हो तुम?"

मैं—"बिलकुल सरसे पैरतक।"

राधा—"बोलो, किताब लोगे या नहीं?"

मैं—"नहीं।"

राधा—"तो फिर क्या लोगे?"

मैं—"अमृत।"

राधा—"अमृत कहांसे लाऊं?"

मैं—"तुम्हारे ओठोंमें है।"

राधा—"अच्छे पागल हो।"

इतना कहती हुई किताब मेरी गोदमें फेंककर भाग गयी।

उसका पागल कहना तो बड़ा प्यारा मालूम हुआ; मगर उसका यों चली जाना अलबत्ता कुछ दिल दुखा गया। मैं घर आकर सोचने लगा कि राधा अभी कमसिन है। वह प्रेम क्या जाने? उसे मेरी मुहब्बत नहीं है, बल्कि उसे लड़कपनका कौतुक और थोड़ी बहुत मुझसे दिलचस्पी है जिनकी वजहसे वह मुझसे इतनी हिल-मिल गई है; जैसे अक्सर पालतू जानवरोंसे बच्चे हिल-मिल जाते हैं। अगर

ऐसा ही उसका हेल-मेल है तो यह उसके लिये अच्छा ही है क्योंकि इसमें प्रेमकी तरह न तो बदनामी है, न समाज और धर्मकी सत्यानाशी, न किसीको शिकायतका मौका और न बुरा माननेकी वजह, न जुदाईकी बेचैनी और न डाहकी जलन, बल्कि सिर्फ मिलनका आनन्द ही आनन्द है। दिमागने इसको बहुत सराहा, क्योंकि यह हिन्दुस्तान है। यहां धर्म और समाजके आगे प्रकृतिका कुछ वश नहीं चलता। राधा अभी कुंवारी है। उसे यहांकी रस्म-रिवाजके अनुसार किसीसे प्रेम करनेका क्या अधिकार? और मैं भी बिना किसीकी मांगमें सेन्दूर दिये हुए उससे प्रेम करनेवाला कौन? अगर इसके विरुद्ध मैं चलता हूं तो मैं महा नीच, कुकर्मी, पापी, अधम, सब कुछ हूं। मगर दिल इन बातोंको नहीं समझता, इसलिये उसे बड़ी चोट लगी।

उस दिनसे मैंने राधासे लपझप करना एक दम बन्द कर दिया। मगर एक रोज जब राधाके यहां रातके वक्त बैठा हुआ कोई किताब पढ़ रहा था, राधा भी मेरी कुरसीकी बगलमें मेजके पास खड़ी थी। इतनेमें नौकर लम्प उठा ले गया। कमरेमें चारों तरफ़ अन्धेरा छा गया। मेरे सरके पास ही राधाके गाल थे। बस दिलमें यकायक धड़कन

पैदा हो गई। दबे हुए भाव सब उभर पड़े। दिमाग बौखला गया। सोच-समझपर उल्टी झाड़ू फिर गई। मैं बिल्कुल बेकाबू हो गया और लपककर उसका मुंह चूमनेके लिये सर उठाया वैसे ही वह झिझककर पीछे हटी और झुंझलाहटमें उसकी जबानसे निकल पड़ा—"बेहूदे।"

यह सुनते ही दिलकी सारी गर्मी उतर गई। दिमाग चकरा गया। शर्म और पश्चात्तापसे पसीना छूटने लगा। मैं सर पकड़कर चुपचाप बैठ गया। जब जरा होश ठिकाने हुआ तो मैं वहांसे उठकर चला आया।

---

(८)

"शौक ने तोड़ ही डाले थे मुहब्बतके कयूद।
मुझको होश आया पहुंचकर दरे जानांके करीब॥"

राधाको मैं देवी कह चुका हूं। इसलिये उसके मुंहसे गालीका शब्द उसके स्वभावपर कलङ्क लगाता हुआ मेरे दिलमें रह-रहकर खटक रहा है। मगर यह तो अपने कियेका फल है। उसके साथ ऐसा अनुचित व्यवहार करनेका मुझे क्या अधिकार था? इससे भी ज्यादे अगर कुछ कहती तौभी

मेरे अपराधका दण्ड काफी न होता। खैर जो कुछ हुआ सो हुआ, मगर इतना मुझे विश्वास हो गया कि राधाको सचमुच मुझसे प्रेम नहीं है। और अब तो मुझसे नाराज भी हो गई। इसलिये मेरा मन उसकी तरफसे बहुत कुछ फीका हो चला। क्योंकि—"Love unrewarded soon sickens and dies". E. Moore

फिर पन्ना मुझे मीठी मालूम होने लगी। उसकी याद फिर मुझे सताने लगी। मैं कई दिनतक मारे डर, शर्म और पश्चात्तापके राधाके घर नहीं गया। पन्नाने कभी ऐसा तीखा व्यवहार मेरे साथ नहीं किया था। वह जब कभी मुझसे मिली तो बड़े प्यारके साथ। उसकी पिछली बातें एक-एक करके याद आने लगीं। इस बीचमें पन्ना मेरे घर कई बार आ चुकी थी। मगर ऐसे वक्त जब मैं घर पर नहीं था। एक दिन मेरी तबियत बहुत घबड़ाई और दिलमें यकायक ख्याल पैदा हो गया कि आज पन्ना दिखाई पड़ेगी। मैं दोपहरसे सड़कपर चक्कर लगाने लगा। राधा-की नौकरनी चमेली वहां कई बार मिली। वह मुझे पहले भी ऐसी हालतमें बहुत दफे देख चुकी थी। आज उससे बिना टोके न रहा गया।

चमेली—"तुम पागलोंकी तरह क्यों यहां घूम रहे हो।"

मैं—"क्योंकि मैं पागल हूं।"

चमेली—(मुस्कुराकर) "किसके पीछे ?"

इस सवालसे मैं यकायक चौंखला गया। मगर तुरन्त ही सम्भला और हंसकर जवाब दिया :—

"इस वक्त तो तुम्हारे ही पीछे हूं।"

चमेली शहरकी रहनेवाली बचपन हीसे बड़े-बड़े घरोंमें पली थी। और उसपर जवानीकी उमंग और मस्तीका नशा, सैकड़ोंके कान काटे हुए थी। खड़ी बोलीके मजाक करने और समझनेमें भला वह कब चूकनेवाली थी? वह मेरी दीमानी बातको समझ कर बोली।

चमेली—"नहीं नहीं, दिल्लगी नहीं।"

मैं—"अरे! वाह! मैं कसम खाकर कह सकता हूं।"

चमेली—"लो रहने दो, बहुत न बनो। यह तो मैं देखती हूं कि तुम मेरे पीछे खड़े हो। मगर सच बताओ क्या किसीका आसरा देख रहे हो?"

मैं—"बस अब ज्यादा न पूछो,जाओ अपना काम देखो।"

चमेली—"अच्छा, धूपमें न खड़े हो। आओ फुलवारीमें चलो।"

हम दोनों राधाके हातेमें गये। एक पेड़के नीचे कुरसियां पड़ी हुई थीं। मैं एकपर बैठ गया।

चमेली—"अच्छा, उसका नाम बता दो।"

मैं—"किसका ?"

चमेली—"जिस कठजीवने तुम्हें इतना सता रखा है।"

मैं—"नहीं, यह बात नहीं है।"

चमेली—"हमसे न उड़ो। तुम्हारी सूरत साफ बता रही है। दिनों-दिन तुम घुलते जा रहे हो, ऐसे मालूम होते हो जैसे बरसोंके बीमार।"

मैं चुप हो गया और पन्नाके ख्यालमें मैं इतना डूब गया कि मुझे कुछ सुनाई नहीं दिया कि वह क्या कह गई। वह फाटकपर चली गई। और न जाने क्यों मेरी आंखोंसे आंसू गिरने लगे। वह फिर मेरे पास यकायक आ गई मैं आंसु न छिपा सका।

चमेली—"अरे! रोते काहेको हो ?"

मैं—"कौन कहता है ?"

चमेली—"फिर यह आंसु कैसे ?"

मैं—"आंखोंमें किरकिरी पड़ गई है, वही पानी निकल आया है।"

वह फिर फाटकपर चली गई। इस दफे वहींसे अपने आप बोल उठी।

चमेली—"हां हां वही है।"

मैं—"कौन ?"

चमेली—"मेरी सखी।"

मैं—"कौन तेरी सखी ?"

चमेली—"पन्ना।"

यह सुनते ही मैं उछल पड़ा और फाटककी तरफ सरपर पांव रखकर दौड़ा। उसने फाटक बन्द कर दिया। मैंने उसे जोरसे खोला। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। ठीक उसी वक्त इधर बंगलेके बरामदेमें राधा निकल आई। और उधर कुछ दूर सड़कपरसे पन्नाने सर घुमाकर मुझे देखा। मैं बिल्कुल दीवाना हो गया। चमेलीसे हाथ जबर-दस्ती छुड़ाकर उस गलीमें दौड़ा, जिसमें अभी पन्ना गई थी। जब थोड़ी दूर चला गया तब मुझे होश आया कि अरे! यह मैं क्या कर रहा हूं। यह ख्याल आते ही मैं रुक गया और वहीं एक दोस्तके यहां बैठ गया।

---

(६)

"हम न कहते थे बनावटसे है सारा गुस्सा।
हँसके लो फिर वो उन्होंने हमें देखा देखो॥"

फारसीके एक शायरने कहा है कि प्रेम पहले प्रेमिकाके हृदयमें उत्पन्न होता है उसके बाद प्रेमीके दिलमें। और इसका सबूत यों दिया है कि जबतक बत्ती पुष्प न जले तबतक पतिंगोंको नहीं जला सकती। यह प्रेमतत्वकी बड़ी गूढ़ बात है। और मैं इसके एक-एक शब्दको सच मानता हूं। इतना ही नहीं। यह तो मैं पहले ही कह चुका हूं कि स्त्री हीके हिम्मत दिलानेसे पुरुष उससे प्रेम करनेका साहस करता है। बल्कि अब मैं यहांतक कहनेको तैयार हूं कि स्त्री कितनी ही सुन्दरी क्यों न हो और उसका प्रेमी उसको कितना ही अधिक प्यार क्यों न करता हो, मगर जैसे ही स्त्रीकी तवज्जह उसकी तरफ कम होगी वैसे ही पुरुषकी प्रेमाग्नि भी ठंढ़ी होती जायगी। उसी तरह राधाके निरादर करनेसे मेरा मन उसकी तरफसे फीका हो चला; क्योंकि मैंने जाना कि वह मुझसे प्रेम नहीं करती, उसे मेरी परवाह नहीं है।

राधा अब बाहर निकलने नहीं पाती। फिर भी वह बिना बाहर निकले हुए नहीं मानती। मगर हाते ही के भीतरतक रहती है। पन्नाके देखनेके दूसरे दिन मैं शामको टहलता हुआ राधाकी सड़कपर आया। वह हातेमें थी। मुझे देखते ही वह फाटकपर आकर खड़ी हो गई। उसकी

आंखोंमें झेंप और ओंठोंपर मुस्कुराहट थी। मैं आगे बढ़ गया और पास ही एक मित्रकी बैठकमें चला गया। तुरन्त ही देखा कि राधा सड़कपर दूर निकल आई और आकर ऐसी जगह खड़ी हो गई जहांसे खाली मेरा ही सामना पड़ता था। और वहां वह छोटे-छोटे लड़कोंसे खेलने लगी। और नजर बचाकर कनखियोंसे रह-रहकर मेरी तरफ देख लिया करती थी। उसके चेहरेपर घबड़ाहट बरस रही थी। इस-लिये कि कहीं ऐसा न हो कि उसे वहां कोई देख ले। मैं भी यही डर रहा था कि अब डांटी गई। जीमें आया कि उससे जाकर कहूं कि यह क्या गजब कर रही हो। मगर उस वक्त उठनेका कोई मौका न मिला।

इतनेमें वह मेरी आंखोंको ओट हुई। मगर तुरन्त ही थालीमें आरती लिये हुए देवी-पूजनके लिये सामनेसे निकली। कुछ भूल गई। फिर लौटी, फिर आई। अब मुझ-से न रहा गया। मेरी बुझती हुई प्रेमाग्नि फिर भड़की। मैं उठा और धीरे-धीरे चलने लगा। राधा झट पूजा करके लौटी। जब वह मेरे बराबर आई, वह रुकी और आंचलके भीतरसे अपना हाथ निकालकर उसने मुझे दो पान दिये।

उसकी यह बात मेरे दिलपर कैसा गजब ढा गई मैं ठीक बता नहीं सकता। राधाका प्रेम झट कलाबाजी खाकर

उसके दिलमें कुछ चोट जरूर लगी। मैं झूठ बोलकर उसे धोखेमें डालना नहीं चाहता था। इसलिये मैंने भी उस पहेलीके जवाबमें असली बातको अधूरे जुमलेमें यों कहा, ताकि चमेली न समझ सके—

मैं—"नहीं। इधर भी है और उधर भी।"

राधा दौड़कर तश्तरीमें मिठाई ले आई। मैंने लाख बहाने किये मगर उसने एक न माना। मुझे मिठाई खिला ही कर छोड़ा। फिर उसने अपने हाथकी बिनी हुई एक 'नेकटाई' दी और बोली।

"देखो, तुम्हारे लिये मैंने यह टाई बिनी है। यह अच्छी नहीं है। दूसरी बिन रही हूं, कल दूंगी।"

मैं नहीं कह सकता मेरे दिलकी उस वक्त क्या हालत थी। बस, इतना जानता हूं कि मैं तबसे उसे सौ जानसे चाहने लगा।

---

[१०]

"सखीके बोले पीरीति भाल।
हांसिते हांसिते पीरीति करिया।
कांदिते जनम गेल॥" (बंगला)

कुछ दिनोंके लिये राधा अपने एक रिश्तेदारके यहां चली गई। एक सप्ताहके बाद उसके घरवाले सब लौट आए, मगर राधा न आई। जब उस दिन मैं राधाके घर गया तो एक छोटे बच्चेने मुझसे कहा कि—

"राधाने तुम्हें नमस्कार किया है और कहा है कि गुस्सा मत होवें, मैं बहुत जल्द आऊंगी।"

गुस्सा होनेकी वजह और जल्दी आनेकी जरूरत क्या थी, दिमागको समझमें कुछ भी न आया। मगर दिलने फौरन उस जुमलेमेंसे छिपे हुए भेदको ढूंढ़ निकाला और बोल उठा कि वह 'प्रेम" है।

अब मुझे होश हुआ कि राधा मुझसे प्रेम करती है। अगर सचमुच ऐसा ही है तब तो राधाके लिये बुरा हुआ, क्योंकि फिर वह भी मेरी तरह तड़पेगी, हरदम बेचैन रहेगी, रो-रोकर दिन काटेगी। मैं इसकी मुसीबतें उठा चुका हूं। मैं जानता हूं कि इसका दर्द कैसा प्राणघातक होता है। इसीसे बचनेके लिये मैंने राधासे दिल बहलाया था। और उसके बदलेमें मैं हत्यारा राधाका खून चूसूं, उसके चैन वो आराम छीनूं? उसका आनन्द लूट लूं? नहीं, जान-बूझकर मुझसे राधाका सर्वनाश नहीं किया जा सकता। राधाको मैं चाहे जितना प्यार करूं। दिल

कहता है कि वह भी मुझे प्यार करे। मगर वहाँतक जहां-तकमें उसे तकलीफ न हो। क्योंकि इस अभागे देशमें शुद्ध प्रेममें सफलता विरले ही किसी भाग्यशालीको नसीब होती है। हमारे और राधाके प्रेममें सफलता असम्भव है। समाज, धर्म, और भाग्य सभी इसकी जड़ काटनेके लिये तय्यार बैठे हैं। इसीलिये जब राधा प्रयाग गई और मुझे भी उसके बाद वहां जाना पड़ा तो राधाके द्वार तक जाकर लौट आया जिसमें ऐसा न हो कहीं राधा जाने कि मेरे ही लिये यहां आये हैं और यह जानकर उसके प्रेमकी आग और भड़क उठे। फिर बुझाए न बुझे। क्योंकि उच्च कुलकी नारियां जब कभी पूरी तरहसे सच्चा प्रेम किसीसे करती हैं फिर चाहे उसमें उनकी सफलता हो या न हो दूसरेसे प्रेम नहीं कर सकतीं। जिन्दगीमें वह एक ही बार दिल देना जानती हैं। मगर मैं भी कैसा अनोखा प्रेमी हूं कि प्रेमिकाके प्रेमसे व्याकुल हो रहा हूं। मुझे अब फिक्र हुई कि क्या राधा सचमुच मुझे बहुत चाहने लगी।

जब राधा घर वापस आई तो उससे मुझसे एक दिन दो बातें हुईं।

मैं—"राधा, मैं भी प्रयाग गया था।

राधा—"जिस वक्त तुम वहां पहुंचे हो उसी वक्त मुझे मालूम हो गया था।"

मैं—"मगर तुम्हें मैं वहां ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गया और तुम न मिली।"

राधा—"और मैं खुद तुम्हें ढूंढते-ढूंढते मर मिटी।"

यह सुनते ही मैं घबड़ा उठा। दिल-ही-दिलमें ईश्वरसे प्रार्थना की कि "इस बालिकाकी रक्षा कर। इसे प्रेम-रोग पकड़ रहा है। इसे इसकी वेदनासे बचा।" फिर मैंने इस विषयके टालनेके इरादेसे दूसरी बात छेड़ी।

मैं—"तुम्हारा बंगला खूब अच्छा बना हुआ है।"

राधा—"और मुझे तुम्हारा मकान अच्छा लगता है।"

मैं—"मगर मेरा घर तो छोटा है।"

राधा—"तो भी मुझे वही पसन्द है। मेरा वश चले तो वहीं रहूं।"

मेरा सर चकराने लगा। मैं उठ पड़ा और सड़कपर टहलने लगा। राधा झट देवीजीकी पूजा करनेके लिये निकली। रास्तेमें मिली और आँचलके भीतरसे हाथ निकालकर फिर दो पान दिये।

मैं—"यह क्या राधा? भला इसकी क्या जरूरत थी? क्यों इतनी तकलीफ करती हो तुम!"

राधा—"मैं कल भी और परसों भी पान लाई थी। मगर तुम रुके ही नहीं, चले गये।"

मैं—"माफ करना, मुझे मालूम न हुआ। दूसरे तुम्हें ऐसे मौकेपर टोकना मैं नहीं चाहता था।"

राधा—"क्यों?"

मैं—"क्योंकि तुम पूजन करने जा रही थी।"

राधा—"यह तो सब दुनियादारी है, दिखलावा है।"

अरी राधा। बस बस! अपने हृदय-घावको अब ज्यादा मुझे मत दिखला। अब मुझसे यह देखा नहीं जाता। कलेजा मुंहको आता है। मेरे जख्मपर बरछियां-पर-बरछियां चल रही हैं। मैं खुद ही अपनी पीड़ासे मर रहा था; अब तेरा दर्द देखकर और बेचैनी हो गई। इन्हीं ख्यालोंमें मैं तड़प रहा था। राधा वहांसे अपने घर चली गई। और मैं सीधे देवीजीके मन्दिरमें गया और हाथ जोड़कर विनती की कि—

"इस बालिकाकी रक्षा कर। मैं अकेले ही हर तरहके दुःख भोगनेके लिये काफी हूं। मुझे जितना जी चाहे जला ले, तड़पा ले, सता ले। मगर इस नासमझ लड़कीके दिल पर कोई चोट न पहुंचा।"

रातभरतक मैं बेचैन रहा। सोचता-सोचता मैं परेशान हो गया कि अब मैं क्या करूं। अन्तमें यह तै किया कि

राधाको इस मामलेकी सारी असलियत बता दूं। यों उसे रंज क्यों मिले बताऊं। ज्यादा कुछ न कह सकूंगा। इस-लिये उसी परेशानीमें मैंने यों लिखा—

तुम मुझे पागल कहती हो। बिलकुल सही है। मैं पागल हूं। एकदम पागल हूं। बल्कि पागलोंसे भी बदतर हूं। अगर पागल न होता तो तुम्हें मैं यह बात लिखने बैठता? क्या लिख रहा हूं कुछ समझमें नहीं आता। ईश्वर तुम्हें हमेशा खुश रखे। यही जानता हूं। तुम बराबर फलो फूलो, यही दोआ तुम्हारे लिये मेरे दिलसे निकलती है।

"जिसने मेरी जिन्दगी खराब कर डाली है, उसको भी अब तुम जानती हो। तुमने पूछा भी था कि क्या इधरसे ख्याल उधर हो गया। मैंने कहा था कि नहीं, ऐसा नहीं हुआ बल्कि ख्याल उधर भी है इधर भी। कभी कुछ इधर झुक जाता है और कभी उधर। मैं तुमसे कभी झूठ नहीं बोल सकता। लोग चाहे जैसा मुझको समझते हों। मैं बुरासे बुरा सही। मगर तुम दोनोंके लिये मैं कभी सपनेमें भी बुरा नहीं हो सकता। मगर वह नीच कुलकी है। उस-की समझ इतनी सुन्दर नहीं कि मेरे ऊंचे भावको पूरी तरहसे अनुभव कर सके। तुम नेक हो, भोली हो, ऊंचे भावोंसे भरी हो। मुझे उसपर भरोसा नहीं है। उसके

ख्यालमें मुझे हद दर्जेकी तकलीफ और बेचैनी है जिसके आगे मौत भी प्यारी मालूम होती है। इसीलिये मैं उसके पंजेसे छूटना चाहता हूं। मगर मेरा कोई वश नहीं चलता। दुनियामें कोई उससे मुझे छुड़ा नहीं सकता। अगर कोई मुझे इस मुसीबतसे बचा सकती है तो बस तुम ही। इस-लिये तुम्हारी शरण ली थी। भाई बहनकी तरह हम तुम बराबर मिलते रहे हैं। मगर यह हेलमेल दिनोंदिन घना होता जाता है जिससे एक नयी ही बात पैदा होती जाती है। अब भी सवेरा है। तुम्हें पहिलेसे आगाह करके आने-वाली मुसीबतोंसे बचा लेना ही मेरा धर्म है। प्रेमका रास्ता बड़ा ही सङ्कटमय है। तुम इससे बचो। मुझपर जो गुज-रती है मैं ही जानता हूं। मेरे लिये तुम जरा भी परवाह मत करना। अगर मैं अपना हाल लिखूं तो एक बड़ी मोटी किताब हो जायगी और दूसरे तुम्हें बेहद रंज होगा। इसी-लिये मैं उसको नहीं लिखता। मुझे तुम्हारी फिक्र है। तुम्हारे लिये मैं नहीं कह सकता किस तरह मैं रो रहा हूं। तुम्हें देवीकी तरह मैं मानता हूं। ईश्वर तुम्हें सदैव बुरा-इयोंसे बचाये और पूजने योग्य बनाये रहे। यही मेरी प्रार्थना है, यही मेरी शिक्षा है। देखो, इसको कभी भूलना मत, वरना जितना रंज मेरे दिलपर पहुंचेगा उतना तुम्हारे

किसी सगे-रिश्तेदारको भी न होगा। अब मेरा तुम्हारे घर आना-जाना ठीक नहीं है। क्यों? हाय! कैसे कहूं? इससे मेरी जो हालत होगी वह तो होगी ही! मुमकिन है शायद तुमको भी कुछ तकलीफ हो। मगर इस वक्त सह लेना ही अच्छा है, क्योंकि बादको फिर सहते न बन पड़ेगा। यही हँसी-दिल्लगी जो इस वक्त बड़ी भली मालूम होती है, कुछ दिनोंपर खूनके आंसू रुलवायेगी। अच्छा बस। तुम खुश रहो।"

शामको राधा फुलवारीमें टहल रही थी। मैं इस खत-को लेकर उसके पास गया, और इसे उसके हाथमें देकर मैंने कहा—"राधा, इसको पढ़कर मुझे अभी वापस कर दो।" वह इसे लेकर मकानमें चली गई। थोड़ी देर बाद निकली। मगर अर्य! यह क्या हुआ। राधा बिलकुल बदल गई। वह खिला हुआ गुलाबका फूल एकदम मुरझाकर सूख गया। जैसे बरसोंकी बीमार हो। आंखें जमीनमें गड़ी हुई थीं। पैर डगमगा रहे थे। बदन कांप रहा था। ऐसा मालूम होता था जैसे किसीने उसे 'हिपनोटाइज' कर दिया। वह आधी दूरतक किसी-न-किसी सूरतसे चली आई। मैं दौड़कर उसके पास गया। उसके हाथसे खत लेकर फौरन फाड़ डाला और कागजके टुकड़ोंको पाकेटमें

रख लिया। वह मकानकी तरफ लौटी और मैं फाटककी ओर चला। चिक उठाती हुई वह रुकी और घूमकर वहींसे लड़खड़ाती हुई जबानसे बोली –

"क्या अब आप यहां न आयेंगे ?"

मैं—"क्या करूं। मुनासिब नहीं मालूम होता।"

वह आशा और निराशा मिली हुई उसकी निगाह, वह कांपती हुई आवाज, वह 'आप' का कहना, बस गजब ढा गये। जिन्दगीभर भुलाए न भूलेंगे। दिलपर बड़ा सदमा हुआ। रह-रहकर पछताने लगा कि हाय! मैंने क्या किया। उस दिनसे मैं राधाके घर दो तीन दिनतक नहीं गया। कलेजा मसोस-मसोसकर रह जाता था। मगर क्या करता। तबीयत बहुत सम्भाली, बहुत रोकी। मगर तीसरे दिन मैं बेकाबू हो गया, लबोंपर जान आ गई; जिस वक्त राधा अपनी फुलवारीमें टहलती थी, उस वक्त मैं भी उसके मकानकी तरफ टहलने चला गया। जब मैं बंगलेके सामनेसे आगे बढ़ने लगा तो राधाने दबी जबानसे मुझे बुलाया। मैं झट हातेके भीतर चला गया। राधाके हाथोंमें कुछ था, मगर उसे देनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। राधाने मुझसे पूछा—

राधा—"कहिये, आपके दिमागकी हालत अब कैसी है?"

राधा जो सिवाय 'तुम' के मुझे कभी भूलसे भी 'आप' नहीं कहती थी। इसके लिये कभी-कभी वह डांटी भी जाती थी। उसके मुंहसे अब 'आप' सुनकर कलेजा फटने लगा। मैंने कहा—

मैं—"वैसी ही और क्या ? कहो तुम तो, अच्छी हो ?"

राधा—"हां, अच्छी ही हूं।"

इतनेमें एक छोटा बच्चा बोल उठा—"नहीं, बीमार हैं। दिनभर चारपाईपर पड़ी थीं।"

फिर वह उठी और धीरे-धीरे चिकके पास गई। वहांसे उस छोटे लड़केको पुकारा और उसके हाथमें कुछ देकर भीतर चली गई। वह मेरे पास आया और उसने एक कागज दिया। उसपर कुछ लिखा था। मैं उसे लेकर चला आया और घर आकर पढ़ने लगा लिखा था—

"रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाइ पर वचन न जाई॥"

"अगर आप मेरी वजहसे मेरे घरका आना छोड़ते हैं तो लीजिये मैं बाहरका निकलना आजसे छोड़ती हूं। मैंने सोचा था कि आपसे पर्दा न करूंगी। मगर मेरे देखनेसे आपका जी जलता है तो मैं आपका जी जलाना नहीं चाहती हूं। मैं आजसे बाहर न निकलूंगी। जो कुछ कसूर इस

नालायक बहिनसे हुआ हो उसे माफ कीजियेगा। मैं आपसे कुछ नहीं चाहती, बस इतना चाहती हूं कि जब मैं दुनियामें न रहूं तो एक बून्द आंसू मेरे वास्ते गिरा देना। बस विदा—

आपकी छोड़ी हुई वही

"राधा"

यह पढ़ते ही मैं बेचैन हो गया। रातभरतक तड़पता रहा, रोता रहा। हे ईश्वर! मैंने यह क्या अनर्थ कर डाला। इसका रोग तो असाध्य हो चला था। उसपर मेरी दवा और जहरका काम कर गई। सच है "नीम हकीम खतरे जान!" जो वैद्य खुद ही बीमार है, अपने रोगको पूरी तरह-से नहीं पहचान सकता, वह भला क्या दूसरोंके रोगको पहचानेगा और उसकी दवा करेगा। तभी तो अकसर लोग बीमारीसे नहीं मरते, बल्कि हकीमकी दवासे मरते हैं। अब मैं क्या करूं। राधाको यह बेकली नहीं सह सकता। बलासे समाजके नियम भंग हो जायें, उसके बन्धन टूट जायें मगर राधाको इस रोगकी पीड़ासे बचाऊंगा। फिर मैंने लाखों तरकीबें कर डालीं मगर सब बेकार। क्योंकि राधाने अपना वचन न तोड़ा और न तोड़ा। और अब भी मैं राधाकी यादमें अकसर वैसे ही फूट-फूटकर रोता हूं जैसा उस दिन रोया था।

गंगा-जमनी

चौथा खण्ड

प्रौढ़-युवक-प्रेम

[१]

"माजराये नौजवानी अहदे पीरीमें न पूछ।
शर्म आती है फिर उस क़िस्सेको दुहराते हुए।"

अरे दिल! तेरा सत्यानास हो। तूने क्या क्या न कर डाला। कभी गलियोंकी ख़ाक छनवाई। कभी दरवाजे-दरवाजे ठोकरें खिलवाईं। लोगोंकी नजरोंमें मुझे नीचा किया। इज्जत मिट्टीमें मिलाई। जान आफतमें डाली। सरपर मुसीबत खड़ी की। दिन-दिनभर तड़पाया तो रात-रातभर रुलाया। हँसी-खुशी छीनी। चैन व आराम लूटा। पागल व दिवाना बनाया। बदमाश और आवारा कहलवाया और अब भी तेरा जी न भरा।

और ईश्वर तुम भी से मसखरे हो । दुनियांमें तुम्हें क्या कोई दूसरा वेवकूफ नहीं मिलता जो तुम हाथ धोके मेरे ही पीछे पड़े हो। एक तो ऐसा पाजी दिल दे रक्खा है जो कम्बख्त जरा देर मेरे पास ठहरता ही नहीं। और दूसरे ऐसा मालूम होता है कि तुमने मनमोहनियोंको इस बातका ठेका दे दिया है कि सब मुझीको बारी-बारी उल्लू बनाया करें।

किसीने जरा मीठी चितवन डाली और लगावटकी आंख लड़ाई। फिर दिल साहबका कहां पता। ऐसा सर-पर पांव रखकर भागते हैं कि लाख समझाइये फिर नहीं माननेके। ईश्वर, अगर तुम फिर कभी दुनियांमें मुझे पैदा करना तो भूलकर भी मुझे दिल न देना। इस झगड़े-बखेड़े की जड़को तुम अपने ही पास रखना। तुम्हारी चीज तुम्हींको मुबारक हो। इसे लेकर कौन जिन्दगी भर कुत्ते-की मौत मरे? अपने हाथोंसे अपनी आबरू खोवे? गालियां और झिड़कियां सुना करे? बार-बार शर्मिन्दगी उठावे? ना बाबा, मैं बाज आया इसको लेनेसे।

---

[२]

**"बात कलकी है कि तुम हँसके लिपट जाते थे।
आज बचपनका वह बेसाख्तापन याद नहीं ?"**

लीजिये फिर दिल साहब बिना नोटिस दिये हुए खिसक गये। क्या बताऊं आजिज हूं इस कम्बख्तसे। अब इसे कहां ढूढ़ने जाऊं ? कुमुदके पास जाऊं। शायद वहां इसका पता चले। मगर कुमुद तो अभी नन्ही नादान है। वह मेरा दिल लेकर क्या करेगी ? वह तो अभी गुड़ियोंसे खेलती है। बनाव-चुनावकी अभी उसे क्या खबर ? जब कुमुद मुझे देखती है तो हँसती है और दौड़कर मेरी गर्दन-में हाथ डालकर लटक जाती है। कभी खेलते-खेलते मुझ-से लिपट जाती है। कभी मेरी टोपी छीनकर भाग जाती है। फिर ऐसी अबोध बालिकाके पास दिल क्या करने जायेगा ? उसे दिल पसन्द होगा या खिलौना। क्योंकि अभी तो उसके खेलने-कूदनेके दिन हैं।

"वह जमाना कमसिनीका वह बनाव सादगीका।
कि पड़े हैं कानोंमें भी अभी सादे सादे बाले॥
वह है रंग अलगवानी वह उठान पर जवानी।
वह शरीर चितवने हैं कि हमें हैं जी के लाले॥

वह यश अदामें मस्ती वह हया हयामें शोखी।
वह मजर नज़रमें जादू कि जो चाहे सो जगा ले ॥"

मगर अब कुमुदकी कुछ दिनोंसे वह हालत नहीं रही। वह मुझे देखकर हँसती नहीं, बल्कि शर्मीली आंखोंसे देखकर जरासा मुस्कुरा देती है। मेरे पास दौड़ती हुई नहीं बल्कि धीरे-धीरे आती है। और मुझसे लिपटनेके बजाय दूर ठिठककर खड़ी हो जाती है। जब कोई नहीं होता तब वह मेरे पास क्षणभरसे अधिक नहीं ठहरती। फौरन चल देती है। आखिर क्यों? यह झिझक और परहेज अब क्यों है? हो न हो जरूर उसीने मेरा दिल चुराया है। तभी तो यह बात है। चलूं पूछूं तो सही।

---

[२]

"एक बात कहें तुमसे खफा तो नहीं होगे।
पहलूमें हमारा दिले मुज़्तर नहीं मिलता ॥"

मगर पूछूं क्या अपना सर? कुमुदके सामने मेरी जबान अब खुलती नहीं। अकेले घण्टों यही सोचा करता हूं कि यह कहूंगा। मगर जब कुमुद सामने आती है सब भूल जाता हूं। कुछ कहते नहीं बनता। लाख-लाख कोशिशें

करता हूं कि दिलकी बातको जबानपर लाऊं, मगर न जाने क्यों मेरा मुंह हर दफे बन्द हो जाता है और दिलकी बातें दिलहीमें रह जाती हैं।

पहिले कुमुदसे मैं खूब बातें करता था। वह भी मुझसे अच्छी तरहसे बोलती थी। मगर अब जब भेंट होती है तब वह भी चुप रहती है और मैं भी चुप रहता हूं। वह नजर नीची किये हुये मोजा बिनने लगती है और मैं सर झुकाकर न जाने क्या सोचने लगता हूं। कभी कोई किताब लेकर सामने खोल लेता हूं। मगर कुछ पढ़ नहीं पाता। पृष्ठोंमें मुझे कुमुदहीकी सूरत दिखाई पड़ती है।

पहिले कुमुदसे मैं खूब लपझप करता था। खेलते-खेलते कभी हाथोंसे उसके सरको हिला दिया करता था। कभी उसकी बाहोंको पकड़कर उसे घुमा दिया करता था। मगर अब उसकी साड़ीका किनारातक नहीं छुआ जाता। जब कभी लापरवाहीसे उसकी ओढ़नी मेरे कपड़ोंसे लग जाती है, बदनमें एक बिजली सी दौड़ जाती है। जब कभी वह मुझे आंख उठाकर देखती है और नजर लड़ जाती है तो दिल एकाएक धड़क उठता है।

कभी कुमुदके सामने किसीसे बातें करते वक्त मेरी जबानसे कोई बेतुकी बात निकल जाती है तो वह कुछ

अजीव तीखी चितवनसे मुझे देखती है। उस वक्त मैं घबड़ाहटमें यह कह बैठता हूं कि "कुमुद माफ करो! गलती हो गई।" कभी यह कि "मेरी बातोंका ख्याल मत करना। मेरे हवास ठिकाने नहीं हैं। मैं पागल हो रहा हूं।"

जब इसके जवाबमें कुमुद दबी जबानमें पूछ बैठती है "क्यों" तो मैं या तो एकदम चुप हो जाता हूं या कोई दूसरी बात छेड़ देता हूं।

---

[४]

"यारब न वह समझे हैं न समझेंगे मेरी बात।
दे और दिल उनको जो न दे मुझको जबाँ और॥"

मैं रह-रहकर यही सोचा करता हूं कि क्या कुमुद मेरे दिलके भावको समझती है या नहीं। अगर समझती है तो क्या उसको भी मुझसे प्रेम है या नहीं। जितना मैं उसे प्यार करता हूं उतना न सही तो कुछ थोड़ा ही सही। और अगर अभी नहीं समझती है तो क्योंकर अपना दिल चीर कर उसको दिखाऊं। दिल मेरे पास हो तब तो। वह तो पहिलेहीसे लापता है। फिर किस तरह कुमुदको बतलाऊं

कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं। जवानसे कहूं तो ऐसा न हो कि कहीं वह एकदम मुझसे खफा हो जाये और मेरा मुंह तक देखना उसे नागवार हो जाये। मुझे पापी और कामी समझकर मुझसे घृणा करने लगे। आंखोंसे कहूं, मगर अब वह आंख मिलाती ही नहीं। अजीब कशमकशमें जान है। फिर सोचता हूं कि इस प्रेमका नतीजा क्या? मुफ्तमें अपने दिलको हैरान करना है। बेहतर है इससे छुटकारा पानेका उपाय सोचूं। कुमुदसे मिलना-जुलना बन्द कर दूं। शायद धीरे-धीरे तबियत सम्हल जाय। मगर दिल नहीं मानता। बिना कुमुदके देखे रहा नहीं जाता। जिस दिन कुमुद नहीं होती है उस दिन मौत ही हो जाती है। जहां वह जाती है मैं भी सौ तरकीबें करके वहां पहुचता हूं और उसकी एक झलक देखकर अपनी बेचैनीको शान्त करता हूं।

कुमुदकी नौकरनी गुलाब नौजवान है। हरदम शोखीमें चूर और जवानीमें मस्त रहती है। जब-जब मैं कुमुदके घर जाता हूं तब-तब वह बाहर निकल पड़ती है। मुझसे बेध-ड़क छेड़खानियां करती है और लगावटके ढंग दिखलाती है। मैं भी उसकी बातोंका जवाब तुर्की-बेतुर्की देता हूं। इसलिये कि कहीं कम्बख्त मेरे भावकी असलियतको न

ताड़ जाये और नाराज होकर मेरा भण्डा न फोड़ दे, इसके मारे मैं कुमुदको जी भरके देखने भी नहीं पाता।

गुलाबके चाहनेवालोंकी कमी नहीं है। फिर भी वह मुझे अपने हथकन्डेमें फँसाना चाहती है। इसलिये नहीं कि उसको मुझसे मुहब्बत है या मुझमें कोई खास खूबी है, बल्कि उसको इस बातमें फख्र है कि मेरे इतने चाहनेवाले हैं, सब मेरा ही दम भरते रहें। मगर उसके लिये सब धान् बाईस पसेरी। यह तो हुआ ही चाहे। ऐसी औरतोंके दिलमें, जिसने लक्ष्मीदेवीसे प्रेम किया और अपनी नौजवानीकी बिक्री नीलामी बोलियोंपर छोड़ रखी है, भला किसीकी मुहब्बत हो सकती है?

मगर उसकी छेड़छाड़ने मुझे थोड़े ही दिनोंमें बदनाम कर दिया। तौभी मैं उससे छेड़खानी करनेसे बाज नहीं आता। सिर्फ इतना किया कि कुमुदके घर रातका आना जाना बन्द कर दिया, ताकि लोगोंका यह शक बहुत न बढ़ने पावे। मगर बदनामी झूठी हो या सच्ची बड़ी जल्दी फैलती है। नतीजा यह हुआ कि लोगोंको मेरे वहां जाने आनेपर कुछ एतराज होने लगा। यहांतक कि सबकी निगाहें मेरी तरफसे बदल गईं। मगर कुमुदकी खातिरदारी कम न हुई। वह मुझसे वैसी ही मिलती थी जैसे पहिले। वह मुझे बिना पान दिये हुए नहीं जाने देती थी

मैं—"एक दिन बिना तुम्हें देखे हुए रही नहीं सकता हूं, तीन-तीन दिनतक भला मैं कैसे रहूंगा!"

कहनेको तो यह मैं भावके आवेशमें कह गया, मगर फिर दिल ही दिलमें पछताने लगा। कुमुदकी अभी कच्ची समझ है, ऐसा न हो कि शायद नाराज होकर मेरे पाससे चली जाये। मगर ऐसा न हुआ। वह चुपचाप वहीं खड़ी रही। मैंने ऊपरकी बातको और मुलायम करनेके लिये फिर कहा—

"असल बात कुमुद यह है कि तुम्हें बचपनसे बराबर देखता आया हूं। तुम मेरे देखते ही देखते खेलती-कूदती बड़ी हो गई। अब भी यही जी चाहता है कि तुमको वैसा ही देखता रहूं। मगर क्या करूं, इधर तुम दिन-दिन बड़ी

होती जाती हो और इधर मेरे आने-जानेमें भी रुकावट पैदा होती जाती है।"

कुमुद—"कैसी रुकावट ?"

मैं—"वह देखो, कम्बख्त मेरी खबर पाते ही पहुंच गई। इसके मारे तो नाकमें दम है।"

इतनेमे गुलाब काम-धन्धा छोड़कर नन्हीं बच्चीकी जूती ढूंढ़नेके बहाने मेरे पास आई।

मैं—"वाह जी गुलाब, क्या कहना है। आतेही कमरा महँक उठा। अच्छा, जरा एक गिलास पानी तो पिला दो।"

गुलाब—"तुम तो जब देखो पानी ही मांगा करते हो।"

मैं—"वाह! वाह! तुम इतना भी नहीं जानती। घायल होते ही आदमी पानी मांगता है।"

गुलाब—"क्या तुम घायल हो गये ?"

मैं—"मुझसे क्या पूछती हो, अपनी निगाहोंसे पूछो।"

यह सुनते ही गुलाब फड़क उठी और थिरकती हुई वहांसे चली गई। कुमुद यह देखकर मुस्कुराकर बोली।

कुमुद—"आपने तो उसे खूब टाला।"

मैं—"कुमुद! जैसी तुम्हारी समझ है वैसी दुनियाकी नहीं। क्या बताऊं यही कम्बख्त मेरे आने-जानेमें बाधा

है। दूसरे, मैं नहीं चाहता हूं कि तुम्हारे साथ जरा देर भी ठहरे।"

कुमुद—"मैं इसको खूब पहचानती हूं। यह बड़ी पाजी है।"

मैं—"इसलिये तो मैं चाहता हूं कि यह तुमसे हमेशा दूर रहे। हां, एक बात तुम मेरी मान सकती हो?"

कुमुद—"क्या?"

मैं—"क्या तुम मुझे रोज दर्शन दे सकती हो?"

कुमुद—"दर्शन?"

मैं—"हां, बस मैं यही चाहता हूं और कुछ नहीं। जब यहां आता हूं और तुम नहीं दिखाई पड़ती तो मुरझाकर एकदम सूख जाता हूं और जब देख लेता हूं मारे खुशीके फूल उठता हूं।

कुमुद नासमझ बच्चोंकी तरह हँस पड़ी। इतनेमें गुलाब पानी लेकर आई और कुमुद दौड़ती हुई वहांसे दूसरे कमरेमें चली गई। मैं यही सोचता रह गया कि क्या कुमुदने मेरी बातको बिलकुल नहीं समझा।

---

[५]

"मुझ अन्दलीपे जारकी हसरतोंको मिटा दिया।
कम्बख्त बागबांनने दामने गुल छुड़ा दिया॥"

चलमहर कुछ दिनोंसे कुमुदके घर रहता है। आदमी बेतुका और उजड्ड है। इसलिये गुलाबसे उससे नहीं पटती। इस नाकामियाबीपर वह मुझसे जला बैठा है। वह मुझे अपनी राहसे हटानेकी कोशिशें करने लगा। मुझे बदनाम करनेमें उसने कोई कसर उठा नहीं रखी। ताने भरी बातें और फबतियां सुनानेसे बाज नहीं रहा। मगर मैंने उसकी बातोंकी कुछ भी परवाह नहीं की। हां, कुमुदके घर आना-जाना बहुत कम हो गया। अब दिन भरमें सिर्फ एक दफे जाने लगा। कुमुद उस वक्त घर ही पर रहती है। कहीं जाना भी होता है तो बड़ी मुश्किलसे जाती है। अगर किसी दिन उस वक्त किसी काममें फँस जाता हूं और कुमुदके घर नहीं आ पाता हूं तो वह मुझसे पूछती है कि कल आप कहां थे। यह सुनते ही मेरा दिल मारे खुशीके बांसों उछलने लगता है, क्योंकि इससे मालूम होता है कि कुमुदके दिलमें कुछ मेरा ख्याल जरूर है। मगर किस किस्मका ख्याल है, पता नहीं चलता।

कुमुदका मुझसे मिलना बलभद्रको बहुत बुरा मालूम होने लगा ; क्योंकि कुमुदकी तरफ उसकी निगाहें अब साफ नहीं पड़ती। जहां कुमुद होती है वहीं वह भी रहता है। जब मैं उसको कुमुदके साथ एकान्तमे देखता हूं मेरे दिलमें जलन पैदा होती है। फिर मैं वहां एक सेकेण्ड भी नहीं ठहर सकता। मगर कुमुदपर मेरा बड़ा भरोसा और एतबार है। वह निहायत ही नेक और शरीफ लड़की है। कर्तव्य-पालनमें बेहद होशियार है। इसलिये उससे मैं यह भी आशा नहीं रखता कि बलभद्रके साथ वह तीखा बर-ताव रखेगी। इतना तो मैं जानता हूं कि कुमुद बलभद्रसे प्रेम नहीं करती जितना घरमें रहनेवाले आदमीको मानना और खातिर करना चाहिये उतना वह करती है। तौ भी जलन पैदा हो ही जाती है। इन बातोंको बलभद्र खूब समझता है और इसीसे वह मुझसे बुरी तरह डाह रखता है।

जब हर तरहकी कोशिश करके वह हार गया और मेरा आना-जाना बन्द न हुआ तब वह कुमुदको मुझसे मिलने-जुलनेसे मना करने लगा। जहांतक मेरी बुराई उस-से करते बन पड़ी सब कुछ की, मगर कुमुदकी कृपादृष्टि मुझ परसे कम नहीं हुई। एक दिन उससे न रहा गया और साफ-साफ लफजोंमें कह बैठा कि तुम यहां मत आया करो। मैं खूब समझता हूं जिस लिये तुम आते हो।

मैं इस इशारेको घुमाकर गुलाबकी तरफ ले गया। मुझे अपनी बदनामी लाख बार मंजूर है, मगर कुमुदकी पुण्यमयी मूर्तिपर कलङ्कका धब्बा क्षणभरके लिये भी मैंने न समझनेकी कोशिश की और कुमुदको कलङ्कसे बचानेके लिये अपनी बदनामी अपने मुंहसे करनेको तैयार हुआ।

मैं—"क्यों उस्तादोंसे चालकी बातें! गुलाबपर अपना रंग जमानेके लिये मुझे यहांसे हटाना चाहते हो? मगर कोशिश बेकार है; क्योंकि मेरी ही वजहसे वह कुछ तुमसे बोलती भी है वरना सीधे झाड़ूसे बात करती।"

यह सुनते ही वह कुछ सटपटा-सा गया। फिर इधर-उधरकी बातें होने लगीं। मगर वह अपनी डाहको छिपा न सका। बौखलाकर बातों-बातोंमें उगल ही बैठा।

"एक दिन, तुम्हें मैं समझ लूंगा।"

मैं—"ईश्वर करे, वह दिन तो आवे।"

बलभद्र—"तुम्हें देखते ही मुझे गुस्सा चढ़ आता है।"

मैं—"घबड़ाओ नहीं, जल्दी उतर जायेगा।"

अरे प्रेम, तेरा बुरा हो। तेरी ही वजहसे मुझे कैसी-कैसी बातें सुननी पड़ती हैं और किससे? जिसे मुझे मुंह लगानातक नहीं चाहिये था। जीमें सोचने लगा कि अब भी सबेरा है, दिलको काबूमें कर लूं। कुमुदके घर आना-

जाना एकदम बन्द कर दूं। मगर सवाल यह था कि दिल-को वशमें करूं तो क्योंकर करूं। जो पराया हो चुका है उसपर अपना क्या ज़ोर?

अब गुलाबकी आड़ भी जाती रही; क्योंकि वह नौकरी छोड़कर अपने मर्दके साथ परदेशकी हवा खाने चली गई। और अब मालूम हुआ कि गुलाबका जाना मेरे लिये बुरा हुआ; क्योंकि बलभद्रकी मुझसे डाह अब और बढ़ गई। कुमुदका मेरे सामने निकलना वह किसी सूरतसे भी नहीं देख सकता था। एक दिन मुझे देखकर हातेका फाटक बन्द करके सामने वह खड़ा हो गया।

मैं—"क्योंजी, यह तुम्हारी नई हरकत कैसी?"

बलभद्र—"तुम्हारे यहां आनेकी कोई जरूरत नही।"

मैं—"अच्छा, जब जरूरत हो तो बताना।" यह कह-कर मैं बिगड़कर लौट आया और इरादा किया कि कुमुद-के घर कभी नहीं जाऊंगा, चाहे जो हो। मगर थोड़ी ही देर बाद तबियत न मानी और फिर वहीं मौजूद हुआ। बलभद्र भौहें चढ़ाये हुए आया।

बलभद्र—"अब तुम किस गरजसे आते हो?"

मैं—"अरे, बेवक़ूफ, क्या मैं तेरी तरह मतलबी हूं कि जब मतलब हो तभी आऊं?"

बलभद्दर—"मगर अब तो बुलाव भी नहीं।"

मैं—"बलासे, अब तो और मैं आया-जाया करूंगा; क्योंकि जो कुछ हिचकिचाहट थी भी वह दूर हो गई।"

बलभद्दर—"नहीं आने पाओगे।"

मैं—"और मैं कहता हूं कि मैं आऊंगा।"

बलभद्दर—"क्यों?"

मैं—"ताकि सबको मालूम हो कि तुम लोगोंको झूठ बदनाम करते हो। जैसे तुम खुद हो वैसे तुम सबको समझते हो।"

इतनेमें कुमुद आ पड़ी। बलभद्दरने कुमुदसे कहा—"तुम यहां क्या करने आई, जाओ यहांसे।"

कुमुद—"अच्छा, जाती हूं।"

बलभद्दर—"तो खड़ी क्या कर रही हो? जाती क्यों नहीं?"

मैं—"अजीब आदमी हो। जब उसकी तबियत होगी जायगी। तुम काहेको आफत मचाये हुए हो?"

बलभद्दरने तब एक छोटे बच्चेके कानमें कुछ कहा और उठकर यहांसे चला गया। वह लड़का दूसरी तरफसे घूमके आया और बोला—"चलो कुमुद, तुमको चची बुला रही है।"

मैंने जब यह रंग देखा तब मेरे मुंहसे आप-ही-आप निकल पड़ा, 'अच्छा बलभद्दर।' और यह कहकर उठ खड़ा हुआ।

कुमुद—"ठहरिये, यह बाबू साहबकी चाल थी। मैं उसी वक्त समझ गई।"

मैं—"यह तो मैं भी जानता हूं। मगर तुम्हारा घरके बाहर देरतक ठहरना ठीक नहीं। अब तुम जाओ। मेरी नजरोंके सामने इतनी बड़ी हुई। जिसको कई बार बचपनमें गोदमें ले चुका हूं उसीको हजरत मुझसे छुड़ा रहे हैं। ईश्वर मालिक हैं। अच्छा जाओ। तुम खुश रहो। मगर ज़रा होशियार रहना। इसकी नीयत अच्छी नहीं है।" यह कहकर मैं चला आया और पक्का इरादा कर लिया कि कुमुदके घर कभी नहीं जाऊंगा।

---

[६]

"कभी तू हटा तो मैं बढ़ गया,
कभी तू बढ़ा तो मैं हट गया।
तेरी हयामें थीं शोखियां,
मेरी शोखीमें थी हया मिली॥"

कुमुदके घर मैं तीन दिनतक नहीं गया। मगर जब-जब मैं उसके दरवाजेके सामनेसे गुजरा तब-तब मैंने उसको दरवाजे ही पर खड़ी हुई देखा। जब सड़की सड़कपर किसीके साथ टहलने लगता था, तब उसको कभी फुलवारीमें उस जगह फूल तोड़ते हुए पाता था जहांसे लड़का का सामना पड़ता था। कभी उसको कोठेपर घन्टों धूपमें बैठी हुई सड़ककी ओर निहारती हुई देखता था। पहिले कुमुदकी बातों और कामोंसे कर्तव्य हीकी धारा बहती थी मगर अब कर्तव्यरूपी यमुनामें प्रेम-गंगा भी लहरें मारने लगी। देखूं यह गंगा-जमुनी धारा क्या रंग लाती है।

मगर कुमुदको यह बेचैनी मुझसे देखी नहीं गई। वह बड़ी देरसे दरवाजेपर खड़ी थी। मैं धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ा और उसके सामने रुक गया। और रुकते ही मेरी लड़खड़ाती हुई जबानसे निकल पड़ा, "कुमुद"! कुमुदने मुस्कुराकर मेरी तरफ देखा और एक अजीब अदासे रंजीदा होकर बोली, "अब तो आप आते ही नहीं हैं।"

और कहकर झट भीतर चली गई। वहीं कलेजा थामकर बैठ गया। कुमुदकी यह मीठी झिड़की मेरे दिलपर कितना असर कर गई, मैं ठीक नहीं बता सकता। इसके एक-एक शब्दमें प्रेमकी धारा बह रही थी। मैं उसीमें

डुबकियां लगा रहा था कि इतनेमें कुमुदकी आवाज मेरे कानोंमें आई—

"लीजिये पान।"

मैंने आंख उठाकर देखा कि कुमुद तीन पान लिये खड़ी है।

मैं —"यह तीन पान आज कैसे ?"

कुमुद—"आप तीन दिनके बाद आये हैं इसलिये।"

"अरे ! यह तूने क्या किया कुमुद ? तूने तो बेमौत मार डाला। यह तीन पान तूने नहीं दिये बल्कि तीन बरछियां मेरे हृदयके पार कर दी।" उसके हाथसे पान लेकर मैंने हाथ जोड़कर कहा, "मैं बड़ा ही बेवकूफ हूं, मेरी गलती माफ करो कुमुद।"

मैं वहांसे उठकर फुलवारीमें आकर बैठ गया। थोड़ी देरमें कुमुद भी वहां आई और फूल तोड़ने लगी। इतनेमें बलभद्दर भी कहींसे पहुच गया। झट कुमुद दौड़कर फाटकपर चली गई। और फाटक बन्द करके बलभद्दरसे कहा, 'आप दूसरे रास्तेसे भीतर जाइये।"

कुमुदकी इस हरकतने मेरे प्रेमघावको और गहरा कर दिया। बलभद्दर बिना मुझे देखे हुए दूसरे रास्तेसे भीतर चला गया।

मैं उठा और कुमुदसे कहा—"नमस्कार कुमुद।"

कुमुद—"आज इसी वक्त ?"

मैं—"अच्छा, फिर आऊंगा।"

कुमुद मुस्कुराती हुई चली गई। और मैं भी खुश-खुश घर आया। अब तो मैं कुमुदपर सौजानसे मोहित हो गया। और इरादा कर लिया कि बलभद्रकी ऐसी तैसी। बद-नामीकी ऐसी तैसी। अब मैं जिस तरहसे मुमकिन होगा कुमुदसे मिला करूंगा। उसके नन्हेसे दिलको कभी बेचैन न होने दूंगा।

कल होली है। पारसाल कुमुदने मेरे साथ होली खेली थी। मैंने उसके मुंहपर अबीर लगाया था। उसने भी बदलेमें बालिकाकी तरह खेलती हुई मेरे आंख-नाक-मुंह-में अबीर डाल दिया था। आज रातहीको बलभद्र अपने घर चला गया। रातभर मारे खुशीके नींद नहीं आई। यही मनसूबे गांठता रहा कि कल सुबहको कुमुदके गालोंपर अबीर लगाऊंगा।

सुबह हुई। मैं कई बार कुमुदके घर गया। मगर वह न मिली। मुझे चैन कहां। दोपहरको मैं फिर गया। वह दरवाजेपर संयोगसे किसी कामके लिये आई हुई थी। मैं उसके पास गया और कहा -"आज होलीका दिन है, अगर हुकुम हो तो जरा-सा अबीर लगा दूं।"

कुमुदने बड़ी संजीदगीके साथ जबाब दिया—"अच्छा, सिर्फ एक टीका लगा दीजिये।"

इस गम्भीरतासे मेरे दिलमें एक चोटसी लगी। तोभी मैंने एक उंगलीमें अबीर लगाकर उसके गालकी तरफ उंगली बढ़ाई। वह झट झिझककर पीछे हट गई। उसका सर दीवालसे टकरा गया। वह भौंहें तानकर बोली—"नहीं, वहां नहीं। सिर्फ मत्थेपर।"

मैंने पेशानीपर टीका लगा दिया। और अपना-सा मुंह लेकर चला आया कुमुद ताड़ गई कि इन्हें यह बात बुरी लगी है। इसलिये शामको कमुदने मुझे कहला भेजा कि आज खाना यहीं खाइयेगा।

शामको मैं गया। मालूम हुआ कि बलभद्र दोपहरही-को लौट आया। मैंने कुमुदसे कहा—"मैं आजकी बेवकूफी पर निहायत ही शर्मिन्दा हूं। एक तो तुम्हें चोट लगी, जिसका मुझे बेहद अफसोस है। और दूसरे तुम्हारा गाल छूना चाहा, जिसके लिये मेरी समझमें नहीं आता कि किस तरहसे तुमसे माफी मांगूं। सच तो यह है कि मुझे अब अपना काला मुंह दिखाते हुए बड़ी शर्म मालूम होती है।"

कुमुद—"खैर!"

बलभद्दर मुझसे जला बैठा था। मुझसे बात करते-करते कुमुदको वह भी चाहने लगा। वह समझने लगा कि इसी वजहसे मेरा रंग कुमुदपर नहीं जमता। और कुमुद भी उसको मतलब भरी निगाहोंको कुछ-कुछ समझने लगी। अब उसका बर्ताव भी कुछ इसकी तरफ तीखा हो चला, जिससे वह मुझे दुश्मन अब जानने लगा। वह कुमुदको मुझसे बातें करते हुए देखते ही दौड़ा और आकर बोला—

बल०—"आप यहां क्या करने आये?"

मैं—"पूरी-कचौड़ी खाने।"

बल०—'मैं आपको खूब पहचानता हूं। मगर अफसोस है कि कह नहीं सकता।"

मैं—'मरभुक्खा मैं और तुम मुफ्तखोरे। तुम न पहचानोगे तो दूसरा कौन पहचानेगा?"

बल०—"हमारी आंखमें आप धूल नहीं झोंक सकते!"

मुमकिन हो उसके पहिलेकी बातोंका मतलब मैंने गलत समझा हो और धोखेमें उनमें प्रेमकी निशानी अपने ख्यालातके मुताबिक समझ ली हो।

इधर बलभद्र उजड्ड आदमी है। ऐसा न हो कि डाहसे कुछ बौड़मपन कर बैठे, जिससे कुमुद किसी आफतमे पड़े। और जब कुमुद मेरी खातिरदारियां सिर्फ कर्त्तव्य समझकर करती है प्रेमभावसे नहीं, तो मैं अपने आनन्दके लिये क्यों उसको किसी आफतमें डालूं या उसे बदनाम करनेका कारण बनूं। यही सोच रहा था कि कुमुद आई। उस वक्त वहां कोई नहीं था। मैंने कुमुदसे चुपकेसे कहा—

"कुमुद, जबतक बलभद्र यहां रहेंगे तबतक मेरा यहां आना ठीक नहीं। इसको तुम बुरा न मानना।"

इतना कहकर हाथ धोया और चला आया।

---

[७]

"ह्वैके रसबस लाल लई है महावरिको,
दीबेको निहारि रहे चरन ललित है।

चूमि हाथ नाहके लगाइ रही आंखिनसों,
एहो प्राननाथ ! यह अति अनुचित है ॥"

सातवें दिन कुमुदका छोटा भाई कुन्दन मेरे पास आकर अपनी तोतली बोलीमें कहने लगा—"आप अब हमाले घल क्यों नहीं आते ? औल जब आते हैं तो बलो जल्दी भाग जाते हैं। कोमु बहिनने कहा है कि अब हम बी—"

मैं—"हां, हम भी क्या ?"

बच्चा—"भूल गये।"

मैं उसी वक्त सीधे कुमुदके घर दौड़ा। कुमुद फुलवारीमें मिली। मैंने कुमुदसे पूछा—"क्या तुमने बुलाया है?"

कुमुद—"नहीं तो।" इतना कहकर मुस्कुरा पड़ी।

मैं—"कुन्दनसे तुमने कुछ कहा था ?"

कुमुद—"नहीं, योंही आपका जिकिर हो रहा था तो मैंने भी कुछ कहा था। मगर याद नहीं क्या कहा था ।"

मैं—"खैर जी। बाबू साहब कहां ?"

कुमुद—"वह कुछ दिनोंके लिये यहांसे चले गये हैं ।"

मैं—"ईश्वरने बड़ी कृपा की। कुमुद, सात रोजका सलाम बाकी है।"

इसपर कुमुदने बड़ी मीठी चितवनसे मुझे देखा और मुस्कुराकर शर्मा गई।

"कुमुद—कल आप बनारस न जाइयेगा ?"

मैं—"क्यों ?"

कुमुद—"योंही पूछा ; क्योंकि आप अक्सर छुट्टियोंमें बनारस जाते हैं।"

मैं—"मगर मैं बिना कामके कहीं नहीं जाता।"

कुमुद—"अच्छा तो घूमने ही चले चलिये। कल तो छुट्टी है।"

मैं—"क्या आप लोग बनारस जा रही हैं ?"

कुमुद—"हां कुछ इरादा तो ऐसा ही है।"

मैं—"अगर तुम चलोगी तो मैं जरूर चलूंगा। कोई न कोई जानेका बहाना कर दूंगा।"

रातकी गाड़ीसे हम लोग बनारस रवाना हुए। सब लोग बेफिक्रीसे सो रहे थे। मगर कुमुद जग रही थी। मैं भी कुमुदको खातिर जग रहा था कि ऐसा न हो कि कुमुदको किसी चीजकी तकलीफ हो। वह सर्दी खा रही थी। उसके दुशालको किसी औरहीने ओढ़ लिया था। मैंने अपना कम्बल कुमुदके ऊपर डाल दिया। मगर कुमुद-ने ओढ़ा नहीं। एक दूसरेकी खातिरदारी और तकलीफके ख्यालमें कम्बल बदनसे अलग ही रखा रह गया और हम दोनों रातभर सर्दी खाते ही रहे।

बनारसके दो-एक स्टेशन पहिले कुमुद अपनी जूती ढूंढ़ने लगी। मैंने बेंचके नीचे हाथ डालकर जूता निकाला और वहीं उसके पैर पकड़कर जबरदस्ती अपने हाथोंसे जूता पहिनाकर सर उठाया और चुपकेसे उसके कानमें कहा कि—"यह सात रोजका सलाम है।" कुमुदने मुस्कुरा-कर सर झुका लिया।

मैं एक रोजमें न लौट सका, क्योंकि कुमुदने कहा कि साथ ही चलिये। उसीके कहनेसे आया था और उसीके कहनेसे लौटना भी मुनासिब समझा। बनारसमें मेरा कोई खास काम न था। तोभी लोगोंको दिखानेके लिये मैं दो घन्टेतक गायब रहा। और लोगोंको बता दिया कि मेरा काम आज पूरा न हो सका। कल रुकना जरूरी पड़ गया।

दूसरे दिन जब मैं घूमकर आया तो देखा कि घरमें खाली कुमुद और कुन्दन हैं, बाकी और सब देवी देव-ताओंके दर्शन करने गये हैं। मैं भला मन्दिरोंमें क्या करने जाता। मेरे हृदयकी देवी मेरी आंखोंके सामने मौजूद थी।

मैं वहीं फर्शपर लेट गया। कुमुद उठी और उस कमरेका दरवाजा बन्द करके मेरे सामने खिड़कीके पास

बैठ गई। कुमुदके इस एतवारपर मैं उसे और भी दिल ही दिलमें पूजने लगा। क्योंकि मैं समझता था कि शायद वह अकेलेमें मेरे नजदीक रहनेसे परहेज करेगी।

मेरे सरके पास ही कुमुदके चरण थे। कुन्दन इधर-उधर कमरेमें ऊधम मचाये हुए था। मैंने एक अंगड़ाई ली और अपने हाथोंसे उसके पैरकी उंगलियां चटकाईं। मैंने आंख उठाकर पुकारा—"कुमुद।"

कुमुद—[सर नीचा किये हुए] "जी।"

मैं—[उसके पैरको कड़ेके पास पकड़कर] क्या तुम मुझे यह दे सकती हो ?"

कुमुद—"क्या ?"

मैं—[उसी तरहसे] "मुझे सिर्फ इतना ही चाहिये। भक्त चरणके सिवा और कुछ नहीं चाहता।"

कुमुद—'आपकी बातें तो बस।"

मैं—"कुमुद।"

कुमुद—"जी।"

मैं—"कुछ नहीं।"

फिर मैं सर झुकाकर कुछ सोचने लगा। थोड़ी देर बाद मैंने खिड़कीकी तरफ देखा कि मेरे कुछ बनारसके दोस्त मुझसे मिलनेके लिये आ रहे हैं।

मैं—"देखो कुमुद, मेरे मिलनेके लिये वह आ रहे हैं। अब तुमसे फिर कुछ कहनेका मौका न मिलेगा। अब और क्या कहूं। कुमुद, तुम्हारी मुहब्बत मेरे दिलमें दिनोंदिन बढ़ती ही जाती है।" इतना कहकर मैंने लेटे-ही-लेटे उसके पैरोंपर अपना सर रख दिया और उसके चरण-कमलको चूम लिया। कुमुद थर्रा उठी। उसके चेहरेपर हवाइयां छूटने लगीं। मैं उठा और दरवाजा खोलकर बाहर निकला। इतनेमें दोस्तोंसे मुठभेड़ हुई। उनके साथ मुझे टहलने जाना पड़ा। टोपी लेनेके लिये मैं कुमुदके कमरेमें आया। देखा कि वह कम्बल ओढ़े हुए बड़े सोचमें लेटी हुई थी। उसके पास ही खूंटीपर टोपी टँगी हुई थी। मुझे टोपी उतारनेके लिये कुमुदके बिलकुल नजदीक जाना पड़ा। वैसे ही मुझे मालूम हुआ कि किसीने मेरे पैरपर हाथ रखा और रखते ही खींच लिया। मेरा दिल बड़े जोरसे धड़कने लगा और मैं वहीं कलेजा थामके बैठ गया। यही सोचने लगा कि क्या यह कारस्वाई जान-बूझकर की गई है या कुमुद-का हाथ अनजानमें पड़ गया है। अगर अनजाने ऐसा हो गया तब तो कोई बात नहीं। अगर जानकर किया गया तब तो इसको जितना ही सोचता हूं उतना ही इसकी थाह नहीं पाता. कर्त्तव्यके भावसे उसने पैर छूए तब उसने

बड़ोंकी इज्जत की और मेरा बदला चुका दिया और अगर प्रेमभावसे ऐसा किया तब तो उफ ! गजब ही कर डाला । दिलपर एक नई तीर चला दी । हमेशाके लिये उसने मुझे बिना दामोंके मोल ले लिया । अरे कुमुद ! बता दे तूने क्यों ऐसा किया । मैं उठा और जाते हुए कुमुदसे पूछा—"तुमने यह क्या किया ?"

कुमुद—"कुछ तो नहीं ।"

---

[८]

"वह तीर उनका लगाना जानकर
पहचान कर मुझको ।
लुटाना हाय ! फिर कहकर
बड़ा धोखा हुआ तुम हो ?"

एक मन्दिरमें जब कुमुद सबसे पहिले बाहर निकल आई और मैं उसकी जूती रखानेकी गरजसे बाहर ही रहा तब उससे बातें करनेका जरासा मौका मिला । मैंने फिर कहा—"कुमुद, आज तुमने यह बड़ा बुरा किया ।"

कुमुद—"क्या ?"

मैं—"तुमने आज कुछ किया है ?"

कुमुद—"नहीं, कुछ नहीं।"

रेलपर कुमुद मेरे पास ही बैठी। सब लोग बातें करते थ, मगर कुमुद सोचमें डूबी हुई थी। मैं पछता रहा था कि नाहक कुमुदको अपना भाव बतलाया। दिल-ही-दिलमें उसे प्यार किया करता तो क्या नुकसान था? तब शर्म, हिचकिचाहट, झेंप, सोच और गम्भीरता यह सब मेरे उस-के बीचमें तो न पड़ने पाते।

जगह तंग थी। कुमुदको झपकी आ गई। वह ऊंघ गई और धीरे-धीरे उसका सर मेरे कन्धेपर झुक गया। जो आनन्द इस समय मैं अनुभव कर रहा था वह किसीको विरले ही नसीब होता है। मगर यह सौभाग्य क्षण ही भर-के लिये था। क्योंकि तुरन्त ही वह होशमें आई और सर उठाकर बड़ी शर्माई।

उतरते वक्त खुले हुए दरवाजेतक पहुंचनेमें भीड़की वजहसे बड़ी दिक्कत थी। इसलिये मैं खिड़कीहीसे फान्द पड़ा कि चाभी वालेको बुला लाऊं। कुमुद भी मेरा अनु-करण करती हुई खिड़कीपर चढ़ गई। और सब लोग, कुछ तो असबाब बान्धने-छान्दने लगे और कुछ खुले हुए दर-वाजेकी ओर मुड़े। कुमुद ज्यों-की-त्यों खिड़कीपर बैठी

थी। न आगे कूद सकी और न पीछे हट सकी। किसीने उसे देखा नहीं। मेरी नजर पड़ी। मैंने झट अपने दोनों हाथ बढ़ाये। वह बच्चोंकी तरह मेरी गोदमें मजबूरन चली आई। मगर हाय! अफसोस! उस वक्त भी मेरी हिम्मत उसको अपने हृदयसे लगानेकी न हुई। दूरहीसे उसको प्लेटफार्मपर रख दिया। अरे! कम्बख्त प्रेम, तू प्रेमियोंको क्यों इतना डरपोक बना देता है?

गाड़ीपर कुमुदने कहा था कि—"मैंने कल एक नई बात देखा।" मैंने कई बार पूछा कि क्या। मगर उसने न बताया। उसीको मैंने फिर पूछा। मगर उसने यही कहा कि—"समझ जाइये।" समझा खाक नहीं, मगर डर अलबत्ता गया। क्योंकि उसकी आवाजमें गम्भीरता थी।

दूसरे दिन कुमुदके घरपर मैं जब इससे मिला तब उसकी गम्भीरता देखकर पूछा कि—"क्या नाराज हो।"

कुमुद—"नहीं।"

मैं—"मगर रंग-ढंगसे मालूम होता है कि नाराज हो।"

कुमुद—"अगर नाराज हूं तब।"

मैं—"तब जिस तरह होगा मनाऊंगा।"

कुमुद -"तो फिर पूजा चढ़ाइये।"

मैं—"बनारसमें तो जो पूजा चढ़ानी थी वह चढ़ा चुका अब बोलो क्या चढ़ाऊं।"

कुमुद—"जो मेरे मतलबकी चीज हो।"

मैं—"तुम्हीं बता दो तुम्हारे मतलबकी क्या चीज हो सकती है।"

कुमुद—"फूल" इतना कहकर हँस पड़ी।"

मैं—"अब तुम भी मजाक करने लगी!"

कुमुद—"वाह फूल तो मुझे बहुत पसन्द है।"

मैं—"अच्छा, शामको इसी जगहपर मिलना।"

कुमुद—"अच्छा।"

मैंने कुमुदके लिये अपने हाथोंसे चमेलीके हार गूंथे। मगर किस्मतको देखिये कि बलभद्रने वह हार छीनकर खुद पहिन लिया। मेरे बदनमें आग लग गई। अब इतना वक्त नहीं रहा कि दूसरा हार गूंधूं। मैं फूल लिये हुए कुमुदकी फुलवारीमें गया कि वहीं बैठकर माला बनाऊंगा। इतनेहीमें कुमुद वहां आ पड़ी।

मैं—"कुमुद, सोची हुई बात नहीं होती।"

कुमुद—'जी हां कभी नहीं। मैं भी जो सोचती हूं वह कभी नहीं होता।"

मैं—"कुमुद, मैं पूजा चढ़ाने आया था"—

कुमुद—"देखूं क्या लाये हैं पूजाके लिये।"

मैं—"खाली फूल।"

कुमुद—"तो लाइये दे दीजिये।"

मैं -"वाह! फूल यों नही यों चढ़ाये जाते हैं।"

मैंने फूलोंको उसके चरणोंपर रख दिया।

कुमुद—"आप तो बस —"

चांदकी रोशनी उसके कुन्दनसे गालोंपर पड़कर उसकी मोहिनी छटा और भी दूनी कर रही थी। हवा उसके बिखरे वालोंको उड़ा-उड़ाकर मेरे गालोंकी ओर झुका रही थी, क्योंकि वह ऊंचेपर खड़ी थी। जी बहुत चाहा उसे हृदयसे लगाकर उसका मुंह चूम लूं। मगर हिम्मत न पड़ी! मैंने डरते-डरते उससे पूछा—

'इस पूजाका प्रसाद दे सकती हो कुमुद?"

कुमुद—"क्या?"

मैं—"बहुत छोटी-सी चीज। (उसके ओठोंपर उंगली रखकर) बस यही।"

वह पीछे झिझककर हट गई और भवें तानकर अलग खड़ी हुई। इतनेमें किसीके आनेकी आहट मालूम हुई और मैं चला आया।

कुमुदकी गम्भीरता अब और बढ़ गई। और मुझसे

मिलनेसे भी कुछ सङ्कोच करने लगी। क्योंकि दूसरे दिन जब मैंने उससे पूछा कि आज मिलोगी तो उसने कहा —"मैं कह नहीं सकती।" जिससे मालूम हुआ कि वह नहीं मिलना चाहती। इससे मुझे अपने कियेपर बड़ी शर्म मालूम हुई। बार-बार अपनेको धिक्कारने लगा। फिर मैंने एक छोटा-सा खत लिखा—

"कलसे आपकी निगाह बदली हुई है। मालूम होता है कि आपका एतबार हमपरसे उठ गया। शायद इसकी वजह यह हो कि रातको जो प्रसाद मांगा था वह आपको बुरा मालूम हुआ। माफ करो। कसूर हुआ। प्रेमका भूत सरपर सवार था। अपने दिलको हम कुचलकर फेंक देंगे, मगर तुम्हें नाराज कभी न होने देंगे। तुम खुश रहो। हम कुछ न मांगेंगे। दिलकी बात दिलहीमें घोंट देंगे। जबान-पर न आने देंगे। बुरा हुआ जो हमारे दिलका हाल जाहिर हो गया। क्या करें मजाक-ही-मजाकमें हम तुम्हें प्यार करने लगे। तुम क्यों इतनी नेक हो। तुम्हारी नेकीहीने हमारा दिल छीना है। उसपर तुम्हारी बदली हुई निगाह बेहद परेशान किये हैं। तुम्हारे सामने हम कुछ कह नहीं पाते। जबान बन्द हो जाती है। अब तो और डर मालूम होता है। तुम अब हमसे क्यों भागने लगी? हम तो तुमसे

खुद डरते हैं। हम तुम्हें पूजते हैं। हमपरसे एतबार मत उठाओ। जी चाहता है कि तुम्हें देखा करें या तुम्हारी पूजा करें या तुम्हारा प्यार कर लें। बस और कुछ नहीं। अगर प्रसाद मिल सकता हो तो कह देना। अच्छा एक बात बता दो। क्या तुम्हें भी मुहब्बत है? मालूम होता है नहीं। वरना तुम्हारी निगाह न बदलती।"

मैंने इस कागजको मोड़कर अपनी उंगलियोंमें दबा लिया और कुमुदके घर गया। एक घण्टाके बाद कुमुद मेरे सामनेसे निकलकर दूसरे कमरेमें जाने लगी। मैंने पुकारा – "कुमुद।"

कुमुद—"कहिये।"

मैं—"सुनो सुनो, भागो मत।"

कुमुद—"क्या है?"

मैं—"मैं तुम्हें एक चीज देने आया हूं। क्या ले सकती हो?"

कुमुद—"क्या है क्या?"

मैं – "मैंने बड़ी बेवकूफियां की हैं। उसकी मांफी मांगीहै।"

यह कहकर अपना हाथ मेजपर रख दिया और नीची निगाह कर ली। कुमुदने मेरे हाथसे कागज निकाल लिया और दूसरे कमरेमें चली गई।

तुरन्त ही कुन्दन उस कागजको लेकर मेरे पास आया और उसके साथ एक कागज मुझे और दिया। उसमें यह लिखा हुआ था।

"भाई साहब, प्रणाम!

मैं बहुत जल्दीमें लिख रही हूं। मेरे हाथ कांपते हैं। शायद धड़का हो गया। इसलिये बहुत कम लिखती हूं। मैंने किसीसे ऐसी मुहब्बत न की है न करूंगी। मेरा तो वही भ्रातृस्नेह अटल रहेगा।

आपकी भगिनी

"कुमुद"

यह पढ़ते ही ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सरपर वज्र गिर पड़ा। मैं सन्नाटेमें आ गया। मैं लड़खड़ाता हुआ अपना काला मुंह लेकर वहांसे भागा और घर आकर चारपाईपर गिर पड़ा। ऐसा जी चाहा कि जमीन फट जाए और मैं उसमें समा जाऊं। उस दिनसे कुमुदसे फिर आंख मिलानेकी हिम्मत न हुई और वह भी मुझसे परहेज करने लगी।

हाय!—

"न आया हमें इश्क करना न आया।
मरे उम्र भर और मरना न आया॥"

मोहनी*

प्रहसनके पात्र और पात्री

पात्र

पागल—गंगाजमनीका लेखक।

झड़लेनन्द—मूर्ख समाज-सुधारक।

नफटू—झड़लेनन्दका मित्र।

साहित्य—

भाव—

पात्री

मोहनी—प्रेमरसकी लेखनी	पागलकी स्त्रियां
मतवाली—हास्यरसकी लेखनी	

समाजिनी—झड़लेनन्दकी स्त्री।

प्रकृति—साहित्यकी स्त्री।

स्वाभाविकता—भावकी स्त्री।

शिक्षा—

---

* प्रेम-भाव सहित 'गंगाजमनी' पर किये गये आक्षेपोंका उत्तर।

प्रहसन

अङ्क १

दृश्य पहिला

(पागलका मकान)

पागल—(बेचैनीकी हालतमें)

"आशुफ्ता दिल, फरेफ्ता दिल, बेकरार दिल।
मुझसा न दे जमानेको परवरदिगार दिल॥"

"किसने मुझे पागल बनाया? किसने मुझे प्रेमका मोहिनी संसार दिखाया? भावोंकी लहरोंमें, उमंगोंकी तरंगोंमें, पानीकी बौछारोंमें किसने प्रेमकी लीलायें दिखाईं? अय मेरी मोहनी लेखनी! तूने, तूने, तूने। जान है तो तू है, ईमान है तो तू है, स्त्री है तो तू है, प्रेमिका है तो तू है।

तू ही मेरी घमण्ड है। तुझीपर मुझे नाज है। तू ही मेरी उम्मीद है और तू ही विश्वास है। तेरी शोखीपर यह जान कुर्बान है तो तेरी चञ्चलतापर संसार निसार है। फिर तुझमें ऐब चुनूं ? उफ ! जीना बेकार है।"

(मोहनी लेखनीका प्रवेश)

मोहनी—"हैं ! यह कैसा इसरार है ?"

पागल –"हाय ! जिसका दुहराना मुझे नागवार है।"

मोहनी—"आखिर क्यों ? तुमने तो अभी तक मुझसे अपना कोई भेद नहीं छिपाया। अपना सम्पूर्ण हृदय मेरे सामने खोलकर रख दिया। फिर आज यह पर्देदारी कैसी ? लबोंपर आहोजारी कैसी ?"

पागल—"क्योंकि अबतक तुझे अपनी समझता था, मगर अब डरता हूं कि शायद तू मेरा साथ छोड़ दे।"

मोहनी—"क्या अपनी खुशीसे ?"

पागल –"अपनी खुशीसे या मजबूरन। मेरे लिये बात एक ही है, मेरी मोहनी लेखनी।"

मोहनी—"दिल तो तुम्हे दे चुकी हूं। कहीं शरीफ स्त्रियां दिल देकर भी मुकरती हैं ? फिर तुमने तो मुझे प्रेम-पाठ पढ़ाया है। यह प्रेम भी तुम्हारा ही है। क्या अब भी तुम्हें मुझपर एतबार नहीं ?"

पागल—"अफसोस! फिर भी दिलको करार नहीं मेरे जीनेका कोई आसार नहीं।"

मोहनी—"क्यों?"

पागल—"क्योंकि तुम्हारा हाथ परायेके हाथमें है जो जब चाहे तुझे मुझसे छीन ले।"

मोहनी—"यह क्योंकर?"

पागल—"बदनामीका कलङ्क लगाकर। मुझे पागल बताकर।"

मोहनी—"जो तुम पागल हो तो मैं दीवानी हूं। तुम निराले हो तो मैं लासानी हूं। तुम कलङ्कित हो तो मैं निर्मल चांदनी हूं।"

पागल—"शाबाश मेरी लेखनी! शाबाश मेरी मोहनी!"

मोहनी—"फिर तुम ही सोचो, चांदनीको चांदसे कोई भला हटा सकता है? मुझको तुमसे कोई छुड़ा सकता है?"

दे चुकी हूं दिल तो तुम्हें हाथ भी दूंगी।
मर चुकी हूं मरके तेरा साथ भी दूंगी॥

पागल—"धन्य धन्य मेरी मोहनी। तूने मेरी जानमें जान डाल दी। इस पागलको बेमौत मरनेसे बचा लिया। लो, अब तुम इस खतको पढ़ो।"

मोहनी—(खत लेकर पढ़ती है) "पागल, तेरी लेखनी है बड़ी नटखट।"—यह कम्बख्त क्या बकता है अटपट, आंखोंका है बिलकुल चौपट.......... "

पागल—"आगे पढ़ो तो।"

मोहनी—(पढ़ती हुई) "तेरी गंगाजमनीमें है खाली कूड़ा करकट।" (अब समझी यह कोई झाड़ूवाला है चरकट।)

(मतवाली लेखनीका आना)

मतवाली लेखनी—"तभी तो बिल्लीको ख्वाबमें भी छीछड़े नजर आये।"

पागल—"लो तुम भी पहुंच गई। ईश्वरके लिये जाओ, तुम आराम करो, मेरी मतवाली लेखनी!"

मत०—"वाह! पतिका निरादर हो और मैं चुप रहूं!"

पागल—"मसलहत इसीमें है कि तू चली जा, वरना लोग हँसेंगे कि एकके दो स्त्रियां।"

मत०—"पहिले राजा दशरथको तो हँस लें, जिनके तीन थीं।"

पागल—"अरे वह तो पुराने जमानेकी बात थी।"

मत० –'तो क्या हुआ। हिन्दुस्तान तो वही है। यह

मर्दोंका देश है। विलायती जनखोंका नहीं कि एक ही जोरूकी जूतियोंसे खोपड़ी पिलपिली हो जाए।"

पागल—"अरी पगली, ईश्वरके लिये तू चुप रह। वरना तेरी तेज बानी मेरा भण्डा फोड़ देगी। दो ही पन्क्ति-योंमें बदनाम करनेवालेका घमण्ड तोड़ देगी।"

(मोहनी खत पढ़ते-पढ़ते बेहोश होके गिर पड़ती है। पागल लपककर उसे गोदमें उठा लेता है।)

पागल—"हाय! यह कैसा अन्धेर! कैसा अनर्थ है!"

मत०—"अब भी मैं चुप रहूं तो मेरा जीना व्यर्थ है।"

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

(सड़क)

(मतवालीका आना)

मत०—"स्वामीने मुझे लाख मना किया। मगर मैं क्योंकर मान सकती हूं? मोहनी लेखनीकी बिना मदद किये मैं कैसे रह सकती हूं? पति मेरा है तो वह मेरे प्यारेकी प्यारी है। इसलिये मुझे वह और भी दुलारी है। मुआ लिखता है कि 'तेरी मोहनी मेरी समाजिनीको बिगाड़ रही है। इसलिये तू मोहनीको छोड़, वरना ओ पागल, तेरे हाथ से तेरी लेखनी जबरदस्ती छीन ली जायेगी।" उसका सर लेखनी भी कहीं लेखकसे जुदा हो सकती है? प्यारी भी कहीं प्रीतमसे अलग रह सकती है? निगोड़ी समाजिनी सैकड़ों ऐबोंसे भरी हुई, लड़कपनसे खुद बिगड़ी हुई अपने माथेका कलङ्क बेचारी भोली-भाली मोहनीपर डालकर आज निर्दोष होने चली है! मोहनी प्रेमकी खान है तौभी अभी नन्ही नादान है। इसीलिये बुआ समाज, तुम समझती हो कि मेरा दांव चल गया। मगर यह खबर नहीं कि वह किसकी लेखनी है। क्यों बुआ, वह दिन भूल गई जब किसीकी लेखनीने तुम्हारे नाकों चने चबवा रखे थे, तुम्हारे

ऐबोंके दफतर खोल रखे थे ? तब तुम कैसी थराती रहती थी। भीगी बिल्लीकी तरह दुम दबाए फिरती थी। वह उसीकी लेखनी मैं थी। अगर मेरा पति अपनी मोहनीके प्रेममें पागल न हो गया होता तो ओ वेहया, सर उठानेकी भला आज तेरी हिम्मत पड़ी होती ? और तेरे खसमकी फिर हजामत बढ़ी होती ?"

(झड़ूलानन्दका आना)

झड़ूला०—"अररर ! यह कोई नाउन है या हजामत बनानेकी मेशीन।"

मत० - (अलग) "लो, वही मूआ अपनी जोरूका गुलाम, समाजिनीका जूतोखोर, मोहनीको पागलके हाथसे छीननेकी धमकी देनेवाला, आ गया। अच्छा मैं घूंघटमें मुंह छिपाये लेती हूं, वरना मेरी सूरत देखते ही हजरतको जूड़ी आ जायेगी।"

झड़ूला०—"श्रीमतीजी, यह अकेली फिर रही हो किस लिये ?"

मत.—"अफसोस ! तेरी किस्मतको रोनेके लिये।"

झड़ूला०—(अलग) "इसने तो पहिले ही चुम्बनमें दांत काटा (प्रकट) जिन आंखोंसे रोना चाहती हो जरा उनको मुझे भी तो दिखाओ। हां, नयनोंसे नयना मिलाओ।"

मत०—"तुझसे क्या आंखें लड़ाऊं ? तेरे नहीं।"

झडूला०—"यह बैल जैसी बड़ी-बड़ी आंखें ... ...

मत०—"इनकी नजर तो हमेशा घास-भूसेपर रहती है। सुन्दरता देखना यह क्या जाने ? भाव, रस, स्वाभाविकता या योग्यता क्या पहचाने ?"

(प्रकृतिका आना)

प्रकृति—"ठहर ओ अन्धे, जरा तेरी आंखोंमें सुरमेकी चला दूं सलाई, फिर देने लगे सुझाई।"

झडूला०—(अलग) "अरे यह कौनसी आफत आई, कहांसे आ गई यह लुगाई। भइया झडूलेनन्द, अब तुम दबाओ। चलते-फिरते नजर आओ। वरना इस आंखोंकी खैर नहीं।"

(जाना चाहता है।)

प्रकृति—'अबे ओ झाडूवाले ! किधर चला। जरा प्रकृतिसे भी तो आंखे मिला।"

झडूला०—"क्यों री ! मैं झाडूवाला हूं या अपनी प्यारी समाजिनीका दिलदार शौहर नामदार और साहित्य-की फुलवारीकी सफाईका जमादार हूं।"

प्रकृति—"वाह जी भंगियोंके सरदार !"

मत०—"राजपूतानेके रेगिस्तानी बुखार। रगड़े और झगड़ेके जूती पैजार।"

प्रकृति—"और बम्बईकी नाटक-मण्डलियोंके हिमाकत वेगके अवतार।"

मत०—"तभी तो आप अपने काममें हैं ऐसे होशियार कि बेचारे साहित्यको कर दिया एकदम मुरदार। भाव, रस, सभीसे लाचार।"

प्रकृति—"अरे क्या तू ही है ओ नावकार, जिसने मेरे प्यारे साहित्यको मुझसे छुड़ाया, अपनी समाजिनीके फंदोंमें ला फँसाया, मुझे उसके वियोगमें रुलाया, जलाया, तड़पाया ?"

झड़ूले०—(अलग) "बेटा झड़ूलेनन्द, अब जो तुमने जबान हिलाई तो तुम्हारी खोपड़ी पिलपिलाई।"

मत०—"अजी प्रकृति देवि ! तुम्हींपर इसने नहीं आफत ढाई। इसने तो स्वाभाविकताकी गरदनपर भी छुरी चलाई। उसके प्यारे भावको मार भगाया। और मेरे पागलपर कलङ्क लगाया। उसकी प्राणप्यारी मोहनीको सताया। इन दोनोंमें वियोग करानेके लिये यह सारा जाल बिछाया।"

प्रकृति -"फिर क्या देखती हो। खूब मिला है अकेला नाहञ्जार, निकाल लो इसका अचार।"

(दोनों मारती हैं)

झडूले—"हाय! हाय! दौड़ मेरी समाजिनी, जल्दी दौड़ मेरी माई। राम! राम! मेरी लुगाई। यहां हुई जाती है खोपड़ीकी सफाई।"

मतवाली प्रकृति—(गाना)

मारो जूती पैजार, अजी गिनके हजार,
कर दो इसका अचार, निकले दिलका गुबार ॥अरे हां॥
किसे कहते हैं भाव, जरा इसको सुझाव।
कुछ रस भी चखाओ, है यह उल्लू गंवार ॥ अरे हां ॥
नहीं दिलमें है प्यार, इसका जाने न सार।
तभी भड़का मुरदार, झूठी करता तकरार ॥ अरे हां ॥
गंगा-जमनीमें स्नान, कर जोरू जवान।
मेरे काट न कान, यही धड़का है यार ॥ इसे हां ॥

दृश्य तीसरा

पागलका मकान

(पागल और मोहनी लेटनी)

मोहनी—(पागलकी गोदमें सर रखे हुए बेचैनीकी हालतमें लेटी हुई) "तुम कहां हो? देखो देखो, कोई तुम्हें मुझसे छीन रहा है। मुझे बचाओ। हाय! मुझे बचाओ!"

पागल—"मोहनी! मेरे प्राणसे भी प्यारी मोहनी! जरा होशमें आओ। तबियत सम्भालो। तुम मेरी गोदमें हो। मत घबड़ाओ। कोई तुमको मुझसे छीन नहीं सकता।"

मोहनी—"उफ! सर चकराता है। दिल धड़क रहा है। तुम बहुत दूर हो। नजदीक नजदीक मेरे कलेजेके पास मेरे दिलके करीब रहो। बस योंही मुझे सोने दो। नहीं नहीं, नहीं सोऊंगी। देखो देखो, वह कोई मुझे छीननेको आया।"

पागल—"नहीं, कोई नहीं है। (चूमकर) नाहक परेशान होती है। और मुफ्त परेशानमें जान खोती है।"

मोहनी—"क्यों स्वामी, क्या सचमुच मेरी पेशानीपर कलङ्कका तिलक है?"

पागल—"नहीं प्यारी, नहीं, यह पवित्र प्रेमकी चकाचौंध चमक है। सचाईकी दमक है। वफादारीकी झलक है।"

मोहनी—"नहीं, तुम बातें बनाते हो। मुझे शरमाते हो।"

पागल—"अरी जालिम, कभी तुझे छलकी बात बताई नहीं, कमीनेपनकी घात दिखाई नहीं, इस नीयतसे कभी जबान हिलाई नहीं, फिर किस तरह दूं अपनी सफाई। अगर विश्वास न हो तो, देख ले मेरी सचाई और झुठाई। मेरी आंखोंके तिलमें और खुद अपने नाजुक दिलमें।"

मोहनी—"हाय! फिर लोग ऐसा मुझे क्यों कहते हैं?"

पागल—"मेरे प्रेमपर जलते हैं। आंखोंके अन्धे हैं, ख्यालातमें गन्दे हैं। और फिर तुम तो जानती ही हो।"

"जिनकी हो भावना जैसी।
तिन देखी प्रभु मूरत तैसी।"

मोहनी—"अगर फिर भी कोई जबरदस्ती डाले कलङ्कका छींटा और बदनामीकी बौछार।"

पागल—'तो इनकार इनकार और उसके मुंहपर फटकार।"

मोहनी—(व्यग्रतासे खड़ी होकर) "बस, यह उपाय

खूब निकाला, मेरे जीमें जी डाला। मुझे तुमसे छुड़ाने-वालेका मुंह काला।"

(गाना)

पागल—"लुभाए मोहे प्यारी यह भोली भाली बतियां।
सांवली सुरतियां मोहनी मूरतियां। लुभाए०।
प्रेमके रससे खूब सनी। मधुर वचन उमंग भरी।
लचक ठुमक झिझक भरी, चमकदमक सबसे खरी।"

मोहनी—"सुहाए मोहे नाहीं, यह झूठी झूठी बतियां॥
प्रेमका पाठ पढ़ायके नाथ छुड़ायो न हाथ छुड़ावे
जो लाख कोई।"

पागल—"छोड़ूंगा साथ तिहारो न प्यारी जो सूली
चढ़ाय के खींचेगा खाल कोई।"

दोनों—"तन मन धन वार करूं, मिल मिलकर प्यार
करूं, डाल गले बहियां।"

(मतवालीका आना)

मत०—"स्वामी, मुझे क्षमा करना कि बिना तुम्हारी आज्ञाके मैं उस मूए झड़ूलेनन्दकी हजामत बना आई हूं। अब तुम्हारी एक बातके लिये आज्ञा लेने आई हूं।"

पागल—"उफ! बड़ा गजब किया तूने। क्योंकि मैं जानता हूं कि तू मतवाली है। न किसीसे डरनेवाली, न

दबनेवाली है। जो कोई एक कहे तो तू सौ सुनानेवाली है। सारा संसार भी तेरा सामना करे तो कटाक्षोंसे मार गिरानेवाली है। तूने जो कुछ किया होगा वही क्या कम है? अब तुझे सिवाय आराम करनेके मैं किसी बातकी आज्ञा नहीं दे सकता हूं।"

मत०—"तुम्हारी प्यारी मोहनीकी योग्यता और गुण, ऐब समझे जायं, और मैं आराम करूं? उसने खतोंहीमें गंगा जमनीकी एक पूरी कहानी लिख मारा। क्या यह प्लाट बान्धनेकी नई बन्दिश नहीं है? फिर हरेक खतमें नये नये अलौकिक गुण दिखलाना क्या गुणग्राहकोंको चक्करमे डालनेवाली योग्यता नही है? फिर रोजमर्राकी बातोंमे गजबका चालाकियां दिखाना क्या तारीफ करने लायक स्वाभाविकता नही है? फिर बिना बातें कराये, बिना छेड़-छाड़ कराये, बिना साफ तौरसे दिलका हाल कहलवाये सिर्फ लेखनीकी चमत्कारसे चरित्रोंमें कौतुक पैदा कर देना, फिर धीरे-धीरे उस कौतुकको प्रेममें बदल देना क्या अनोखी उपज, अनूठी सूझ और अलौकिक ज्ञान नहीं है? अगर नहीं है तो बदनाम करनेवाले जरा इतने कठिन अखाड़ेमें अपनी लेखनीकी ऐसी करामात दिखावें तो मालूम हो कैसे दांतोंमें पसीने आते हैं, दिमागके अंजर-

पंजर ढीले हो जाते हैं, स्वाभाविकता और भाव कहीं सरक जाते हैं।"

मोहनी—(बात काटकर) "यह क्या कहती हो। मुश्किल तो किसी नई बातको निकालनेमें होती है। मगर जब बात निकल आती है तो उस ढंगपर चलना बहुत आसान है।"

मत०—"तौभी तेरी चाल निराली है। कहांतक कोई तेरी नकल करेगा। तू तो कदम कदमपर बल खाती है और थिरकती हुई झट नई तरफ सरक जाती है। तब तू भला किसके हाथ आनेवाली है? मगर अफसोस, तारीफके बदले गालियां! भैंसके आगे बीन बजाए, भैंस बैठी पगुराय! और ऊपरसे दो लातें भी लगाए, फिर भी मैं आराम करूं?"

पागल—"हां! तुम दोनोंको अब अपनी-अपनी खूबियां दिखानेकी कोई जरूरत नहीं; क्योंकि मुझे मालूम हो गया कि हिन्दी-संसार गुणग्राहकोंसे एकदम शून्य है।"

मत०—"मगर, एक दफे मुझे 'गल्प माला' के पाठकोंसे दो-दो बाते करनेको आज्ञा दो।"

पागल—"हर्गिज नहीं। मैं उनको आखिरी सलाम कर चुका हूं। अपनी छपती हुई गल्पको अधूरी ही बन्द करा

चुका हूं। और आगे छपनेवाले सब लेखोंको वापस मंगा चुका हूं।"

मत०—"मगर पति, ऐसा करनेसे सब यही कहेंगे कि तुम अखाड़ेसे दुम दबाकर भागे।"

पागल—"अरी जालिम! तूने अपने कटाक्षसे आखिर मेरा खून उबाल ही दिया। मैं, और दुम दबाकर भागूँ, जिसकी तुम जैसी मतवाली और मोहनी लेखनियां हो वह संसार-समाज या भड़ूलेनन्द ऐसे बहत्तर टांय-टांय करने-वालोंकी क्या परवाह कर सकता है?"

मत०—"यह सब सही। मगर यह भी खबर है कि हमारे साहित्यको समाजने कैद कर रखा है। उसे लहँगा और चूड़ियां पहना रखी हैं। कम-से-कम उसको छुड़ानेको मुझे आज्ञा दो।"

पागल—"उस जनानेको कम पढ़ी हुई मूर्ख औरतों होमें बन्दरियाकी तरह नाचने दो। हिन्दी-संसार यही चाहता है, मैं क्या करूं?"

मोहनी—"नहीं नहीं, ऐसा न कहो। तुम्हें उसे उसकी असली हालतमें लाना चाहिये। उसका सर ऊंचा करना चाहिये। उसे ज्ञानियोंकी सभामें सभापति बनाना चाहिये।"

पागल—"मेरी मोहनी, मैं तो शुरूसे यही कहता आया।

साहित्यको मूर्ख औरतोंकी चूड़ियोंके बदले ज्ञानियोंकी शोभा बननेके लिये मैं तेरे प्रेममें पड़ा। तुझे पानेके लिये पागल हो गया। तुझको अपना प्रेम जतानेके लिये, अपना हृदय दिखानेके लिये, तेरे ही प्रेमकी भूमिमें 'गंगा-जमनी' लिखनी शुरू की। तू मिली और मेरी हुई। मेरे लिये मानो कारूंकी दौलत मिली। दुनियाकी सल्तनत मिली। अब हिन्दी-संसार मुझे अपना जाने बेगाना। साहित्यको मर्द रखे या जनाना। मुझ जैसे पागलोंको इसकी क्या परवाह।"

मोहनी—"देखो, तुम प्रेमी हो। तुम समझ सकते हो कि साहित्यके वियोगमें प्रकृति बेचारी कैसी तड़पती होगी।"

मत०—"स्वाभाविकता भी वहीं कैद है। भाव बेचारा मजनूंकी तरह मारा-मारा गलियोंमें खाक उड़ाता फिरता है। इसीलिये मैं आज्ञा चाहती हूं कि जरा इशारा दो तो समाजको चुटकियोंमें उड़ा दूं। दोनों कैदियोंको छुड़ा दूं। 'गल्पमाला' के पाठकोंका भ्रम मिटा दूं।"

पागल—"नहीं, तू आफत करोगी।"

मोहनी—"अच्छा तो मैं जाती हूं।"

पागल—"नहीं, तू है नयी नवेली। तुझे किस तरह जाने दूं अकेली?"

मोहनी—"मुझे अकेली कहते हो? क्या तुम्हारा प्रेम

मेरे साथ नहीं है? यह वह हथियार है कि लाख दुर्घटनाओंका सामना हो, आफतोंका मुकाबला हो; फसादियोंके झुण्डमें, पापोंके कुण्डमें, मौतके पंजेमें, जुल्मके शिकंजेमें, नरकके जहानमें, बस्ती या मैदानमें, जहां धर्म और ज्ञानकी तलवारोंके छक्के छूट जाते हैं. परहेजगारोंके भी धर्म टूट जाते हैं, वहां यह अपनी काट दिखाता है और अपने संगीको साफ बचा लाता है। फिर जब यह पवित्र ईश्वरीय हथियार सती धर्मका पालनहार तुम्हारा प्यार मेरा सच्चा मददगार है तो मैं क्यों झिझकूं, आगे कदम बढ़ानेसे क्यों पिछड़ू?

"तौ अनेरेभी अवली डरै किन, क्यों डरौं मरा सहायके लाने।
है लखि लग मनोभव सों भट, कान लों बान सरासन ताने॥"

पागल—"शाबाश मेरी मोहनी! शाबाश मेरे प्रेमकी देवि!"

मत०—"कहां हो, भइया झड़लेनन्द, देखो यह प्रेम-पाठका प्रभाव। अब भी शर्माओ, लजाओ। चुल्लूभर पानी मे डूब जाओ। स्त्रियोंको सती बनाना है तो प्रेम करना सीखो, उनको प्रेम करना बतलाओ, उनके दिलपर अधिकार जमाओ। नाहक साहित्यका क्यों खून करते हो। उसको मूर्ख बनाते हो, उसे चूड़ियां पहनाते हो, उसकी

खूबियोंको दबाते हो। कहीं इस तरहसे स्त्रियां नेकचलन रह सकती हैं? चाहे लोहेकी जंजीरोंमें उन्हें जकड़ दो या फौलादके संदूकोंमें उन्हें कैद कर लो, अगर उनके दिलमें तुमने भाव नहीं भड़काया, उनके हृदयपर अपना अधिकार नहीं जमाया, तो वह तुम्हारी हरगिज नहीं रह सकतीं।"

(शिक्षाका स्टेजके पंछे बाहिर होना)

शिक्षा—"बेशक। मेरी भी राय यही है। मैं शिक्षा हूं। मैं साहित्यमे हर जगह रहती हूं। मगर छिपी हुई। आंख-वाले पता पा जाते हैं और अन्धे टटोलते ही रह जाते हैं। और मैं झलक दिखाकर यों चल देती हूं।"

(गायब हो जाती है)

पागल—"अच्छा तो मोहनी, तू तकलीफ न कर। मतवाली, तू भी उसके साथ रह। साहित्यकी फुलवारीमें बस यह आखिरी दफे और जाता हूं। प्रकृतिको साहित्यसे मिलवाये देता हूं। भावको स्वाभाविकताके गले लगाये देता हूं। सारा झगड़ा मिटाये देता हूं।"

(जाता है)

मत०—"जाते हो नाथ मगर धाक जमाकर आना।
जिस शानसे जाते हो उसी शानसे आना।"

तौभी मेरा पति पागल और दीवाना है। रास्तेमें कोई आफत पड़ जाए, क्या ठिकाना है। मोहनी तू यही रह, मुझे इसकी निगहवानीके लिये जाने दे।"

(जाती है)

मोहनी—"मैं खुश हूं कि मेरा पति पागल है। मैं खुश हूं कि उसी पागलको मैं भी प्राणप्यारी हूं क्योंकि—

माशूक शोख तो आशिक दीवाना चाहिये।

मगर, जिसके लिये वह पागल हो गया है, संसारको त्याग दिया है, समाजको फटकार दिया है वह यहीं आराम करे और वह मेरे लिये मर मिटे। नही। ऐसा नहीं हो सकता। मैं भी अपने प्यारेके साथ जाऊंगी। अगर पागल है तो आखिर मेरा ही पागल है। समाजसे अकेले भिड़ूंगी। प्रेम-तत्वके तर्कोंसे उसे परास्त कर दूंगी। पतिका नाम रख लूंगी। अगर मतवालीकी निराली शान है तो मेरी अनोखी आनबान है। आखिर क्यों न हो, मैं भी तो उसी पागलकी लेखनी हूं जिसपर मतवालीको उतना गुमान है।

(गान)

"अपने पागलकी मैं भी दिवानी बनूंगी।
जोगिन बनूंगी दर दर फिरूंगी।

मेरे पागलको कोई सताये ना।

मुझे उससे हां कोई छोड़ाये ना।

जिया मोरा जलाये, तड़पाये, कलपाये ना।

पागल पिया है, पागल जिया है, पागल किया है,

सारा संसार।

कैसा अनोखा निराला है, प्यारा हमारा दिल्दार॥"

दृश्य चौथा

रास्ता

(झडूलेनन्दका आना)
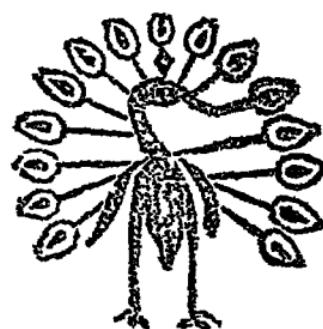
झडूले०—"वाह री मेरी समाजिनी जोरू! तू अगर पहिले हासे मेरी खोपड़ीको अपनी रोजमर्राकी मिहनतसे इतनी मजबूत न कर रखती तो उस घूंघटवाली लुगाईके हाथकी सफाईमें बिलकुल मलाई हो जाती। मगर वह भी इस खोपड़ीका लोहा मान गई होगी, इसे खूब पहचान गई होगी। तौभी वह थी कौन आफतकी परकाला कि देखा न भाला और लगी ताकधिनाधिन बजाने तिताला और झपताला। मैं जरा सुरमें अलाप भी न सका। मगर मैं अपनी जोरूका असल मर्द हूं तो बिना इसका बदला लिये मानूंगा नहीं। अच्छा तो बीबी खोपड़ो, देखो तुम्हारी इतनी खातिर कराई है अब जरा तुम भी मेरे काम आओ, बदला लेनेकी कोई तरकीब बताओ।

(नकटूका आना)

वाह! बेटा नकटू, खूब मिले।"

नकटू "और बेटा झडूले, तुम भी किस्मतसे मिले। तुम्हारी कसम, छींकते ही घरसे निकला। दो कदम आगे

वह्रा तो एक काना मिला और आंख उठाई तो सामने उल्लूकी तरह तुम दिये दिखाई, जो कमी थी वह पूरी हो गई। है आज तकदीर जोरोंपर दोस्त।"

झड़ूले—"क्यों नहीं. इस सूरतकी बलिहारी है। बस समझ लो तुम्हारी आज परलोककी तय्यारी है। बड़े भाग्यसे मुक्ति होती है बेटा।"

नकटू—"मगर आज तुम कफन फाड़के निकल किधर पड़े?"

झड़ूले—"औरतोंको नेकचलन बनानेकी फिक्रमें।"

नकटू०—"अजी तुमने तो उन्हें पहलेहीसे 'कूप-मण्डूक' बना रखा है। ईश्वरके दिये हुए उनके आंख, कान, दिल और दिमागको मूर्खताके बोरोंसें बन्द करके सील कर रखा है, तो फिर उनके बिगड़नेका क्या डर है।"

झड़ूले "डर तो न था। मगर इस कम्बख्त पागल और उसकी मोहनीने सब गड़बड़ कर दिया। वह दोनों 'गंगा जमनी' के घाटपर विहार करते थे। प्रेमके राग अलापा करते थे। साहित्य, भाव, प्रकृति, स्वाभाविकता भी उसे सुनकर वहीं मस्त हो नाचा करते थे। मुझे जो इसकी खबर लगी तो फौरन कान खड़े हुए। मैं डरा कि बीबी साहबा जो इसकी भनक सुन पायेंगी तो फिर

चौपटाध्याय शुरू हो जायगा। देखादेखी वह भी प्रेमकी तान छेड़ देगी और डुगडुगी बजाकर मुझे बन्दरकी तरह नचाती फिरेगी।"

नकटू—"तो फिर क्या यार, मजा ही मजा है।"

झड़ूले०—"अरे नहीं भाई, यहां तो पूरी कजा है। असलियत यह है कि हम हैं हिन्दुस्तानी डफाली, प्रेमके माद्दे से हैं बिल्कुल खाली। सारा बदन ढूंढ़ डालो। दिलका कहीं पता न पाओगे।"

नकटू—"तभी यार कुड़कमुर्गोंकी तरह डरते फिरते हो।"

(शिक्षाका जाहिर होना)

शिक्षा—"सुनो सूएकी बातें। "नाचे न जाने और आंगन टेढ़ा" कसूर किनका और दोष लगे किन्हें? ऐब मर्दोंमें और सुधारी जाएं बेचारी औरतें।"

(गायब हो जाती हैं)

झड़ूले०—"मगर वाह री मेरी नहूसियत। मेरी परछाही पड़ते ही 'गंगाजमनी' सूख गई। पागल भी अपनी मोहनीको गोदमें उठाके ले भागा। भाव भी खिसका और प्रकृति भी सरक गई। मगर स्वाभाविकता और साहित्य हाथ आ गये। इन दोनोंको पिञ्जड़ेमे बन्द करके जनानखानेमे रख दिया है। और खूब धमका दिया है कि

हजरत अब न फड़फड़ाना, धूरएन विहाग भैरवीका गया जमाना, अब जरा सूखे औरतोंमें रहकर ककहरा याद सुनाना। अब मुझे फिक्र है कि पागलसे मोहनीको छीन लूं फिर हमेशाका धड़का ही मिट जाए। न रहेगा बांस न बाजेगी बांसुरी। क्यों दोस्त कैसी सूझी?"

नकटू—"कुछ भी नहीं, तुम बेवकूफ हो।"

झड़ूले०—"अरे तूने यह कोई नई बात थोड़े ही कही। ऐसा तो मेरे बाप भी कहते थे।"

नकटू—"तो समझ लो मैं वही हूं। सुनो, धर्मशास्त्रमें क्या लिखा है कि पति पत्नीका आधा अङ्ग है और पत्नी पतिकी आधा अङ्ग है। इसलिये आधा-आधा मिलकर कितना हुआ बेटा?"

झड़ूले—"एक।"

नकटू—"और एक व्यक्तिके कै नाक होनी चाहिये?"

झड़ूले०—"समूचा एक।"

नकटू—"इसलिये जब मेरी जोरू घरमें आई तो देखा कि एक नाक उसको है और एक मेरी। तभीसे मुझे फिक्र हुई कि इन दो नाकोंमेंसे एकका होना फजूल है। और मेरी स्त्री बड़ी धार्मिक है। वह इस धर्मशास्त्रके मतानुसार जरूर चलेगी। इसलिये एक-न-एक दिन मेरी नाक अवश्य

भटा देगी। तब मैं ही क्यों न अगुआनी करूं! और उसी-की नाक उड़ाकर धर्मकी पूरी पाबन्दी करूं। बस भट छुरी तान कर दिया सफाचट मैदान। इसे कहते हैं बेटा मरदाना काम। अब चाहे साहित्य नहीं साहित्यका बाप भी मलार गावे तो मुझे कुछ भी न होगी घबड़ाहट। क्योंकि मेरी जोरूके पास है ऐसा नेकचलनीका सरटिफिकट कि जिसके आगे सतयुगी औरतें भी हो गईं अब कूड़ा करकट। कहो बेटा कैसी सूझी?"

झड़ूले०—"बहुत दूरकी। (अलग) उस घूंघटवालीसे बदला लेनेकी खूब तरकीब हाथ आई। (प्रकट) क्या तुम सचमुच मर्द हो?"

नकटू—"सरसे पैरतक।"

झड़ूले०—"अच्छा तो अपनी मरदानियत मुझे भी दिखाओ तो जानें।"

नकटू—"क्योंकर?"

झड़ूले—"मेरी जोरूको भी यही सरटिफिकट देकर बड़ा उपकार होगा। धर्मका काम है।"

नकटू—"बस? अच्छा उसकी पहचान बताओ।"

झड़ूले०—"अजी जो हो बड़े लम्बे घूंघटवाली, समझ

लेना कि वही है मेरी घरवाली। (अलग) बदला लेनेकी क्या खूब चाल निकाली।"

नकटू—"तो आगे बढ़ो। दो मिनटमें उसे नकटी देखो।"

(दोनोंका जाना)

(शिक्षाका प्रकट होना)

शिक्षा—"औरतोंकी नाक काटनेमें अपनेको मर्द बखानते हो। अफसोस! यह नहीं मालूम कि उसकी नाक काटनेके पहिले तुम खुद अपनी नाक गँवाते हो। अपने मुंहपर कालिख लगाते हो। उनको बदचलन ठहरानेके पहिले खुद अपनेको तुम नामर्द बताते हो। अब औरतोंपर हाथ उठानेवाले, मर्दोंका नाम डुबोनेवाले नामर्दो, अगर औरतें आवारा हुईं तो किसकी बदौलत? तुम्हारी, तुम्हारी, तुम्हारी। फिर पीटना है तो अपना मुंह पीटो।"

(गायब हो ज

दृश्य पांचवां

झड़ूलानन्दका मकान

(झड़ूलानन्द औरतकी पोशाकमें)

झड़ूला:—"हाथीके दिखानेके दांत और होते हैं, मगर खानेके और होते हैं। वैसे ही हम जैसे भले मानुसोंके तौर बाहर कुछ और हैं तो घरमें कुछ और हैं। बाहर मरदाने और जोरूके सामने जनाने। हमारी स्त्री समाजिनी जो है वह बेचारी बिलकुल कूएँकी मेढ़की है। उसे बाहरको क्या खबर। इसीलिये स्त्रियोंके स्वाभाविक गुणोंको एकदम निर्मूल करनेके लिये उनको बिलकुल अपढ़ रखनेकी पहिले रिवाज निकाली थी, क्योंकि उनका बिना पढ़े तो यह हाल है कि दिन-रात हम लोगोंको उंगलियोंपर नचाती हैं और जो पढ़ लेंगी तो जो न करें वही थोड़ा है और वैसे कमसे कम नेकचलन तो रहेंगी।"

(शिक्षाका प्रगट होना)

शिक्षा—"चुल्लूभर पानीमें डूब मरो जनानो! अगर जनाने न होते तो तुम्हारे दिलमें यह शक कैसे पैदा होता?

अगर तुम्हें उनपर एतबार होता तो उन्हें तुम पिंजड़ोंमें कैद करके रखते? ऐसा नेकचलनीपर हजार लानत जो पर्दे, मूर्खता और अज्ञानकी मुहताज हो। मजबूरन कोई बात हुई तो उसकी हकीकत क्या! तारीफ तो जब है जब दिलसे हो।"

झड़ू ले०—"मगर यार वह चाल न चली। न जाने किस कम्बख्तकी सलाहसे औरतोंने पढ़ना शुरू कर दिया। तबसे मेरा खाना-पोना हराम हो गया। इसी फिक्रमें रहा कि कौनसी तरकीब करूं कि सांप मरे और लाठी न टूटे। औरतें किताबें पढ़े तो सही फिर भी बाहरकी दुनियासे अज्ञान रहें और असली साहित्यका मजा न ले सकें। इसलिये साहित्यको अपनी तरह जनाना बनाया। जितनी किताबें छपवाईं सब जनानी। इसके विरुद्ध अगर किसी लेखकने लेखनी उठाई और प्रकृतिकी असली छटा दिखलाई तो बन्देने झट उस किताबमें लगाई दियासलाई। ताकि कहीं ऐसा न हो बीबी साहबा मर्दकी बू पा जाएं और हाथसे बेहाथ हो जाएं। इसीलिये बन्देने भी यह औरतकी पोशाक अख्तियार की जिसमें स्त्रीका ख्याल किसी तरहसे बहकने न पाए। और मेरी तरह वह तमाम दुनियाको समझे।" (जाता है)

शिक्षा—"हत तेरे जनानेकी दुममें धागा। अपने ऐब-को साहित्यका खून करके छिपाना चाहता है। अगर तू सचमुच मर्द होता तो ईश्वरके दिये हुए स्त्री-गुणोंको इस तरह सत्यानास न करता। उनकी आंख, कान, दिल और दिमागपर इस तरह झाड़ू न फेरता। उनको अपने प्रेमके फूलोंके हारसे बांधता तो उनको पिंजड़ेमें कैद करनेकी तुझे जरूरत न पड़ती। जिन आंखोंको तू समझता है कि गैरको तकेंगी वही आंखें दिन रात चकोरकी तरह तेरा हो मुंह निहारा करती। सौ मर्दोंके बीचमे भी अगर स्त्री घिरी होती तौभी दिल तेरे ही पास रहता। साहित्य जितना ही रसीला गाना गाता उतनी ही वह मतवाली होकर तेरे ही कदमोंमें लिपटती। मगर अफसोस! तेरे पास तो प्रेमका अभाव है, न दिल हैं न भाव है। फिर क्यो न शक पैदा हो? अगर स्त्रीको मजबूरियोंमें जकड़कर नेक-चलन रखा तो तेरी मरदानगी क्या? ऐसी नेकचलनोंसे तो वेश्या हजार गुनी अच्छी। जिसे दुनिया जानती है कि वह पैसेकी हैं, और यह न पैसेकी हैं और न तेरी हैं। बल्कि खाली मौकेकी हैं।"

(गायब होती है)

(समाजिनी और झड़ूलेनन्दका आना। साहित्य औरतकी पोशाकमें है। इसके गलेमें रस्सी बन्धी हुई है। उस रस्सीको समाजिनी एक हाथसे पकड़े हुए है। स्वाधीनता इसी तरह बन्धी हुई झड़ूलेनन्दके हाथमें है।)

झड़ूले०—"हे श्रीमती समाजिनी देवि ! ईश्वरके लिये मान जाओ। बाहर न जाओ। 'गंगाजमनी' के घाटपर कोई तमाशा नहीं हो रहा है।"

समाजिनी—"वाह ! मैं कई दिनोंसे अपनी खिड़कीपर बैठकर पागल और मोहनीकी रहस-लीला सुनती हूं। आज मेरी तबियत चाहती है कि वहां जाकर सुनूं और देखूं।"

झड़ूले—(अलग) "हत तेरे पागलकी ऐसी तैसी। यही बड़ी खैरियत हो गई कि कुकर्म लीला मेरी वजहसे बन्द हो गई। वरना आज मेरी स्त्रीके चरित्रका ईश्वर ही मालिक था।"

समाजिनी—"क्या बड़बड़ाते हो ?"

झड़ूले०—"जरा साहित्यसे सलाह ले रहा था।"

समाजिनी—(चपत लगाकर) "अबे साहित्यके बच्चे, चल इधर।"

झड़ूले—"साहित्यकी सलाह जानेकी नहीं है। यह कहता है वह कुकर्म-लीला तुम्हारे देखने योग्य नहीं है। उसकी इज्जत इसकी निगाहोंमे कुछ नहीं है। क्यों साहित्य बोलता क्यों नही। इसीलिये तू २॥) सालाना लेकर ठेका लिया करता है कि सालभर तक अपनी शिक्षाओंसे स्त्रियोंको नेकचलन रखूंगा और वक्तपर बोलता नहीं।"

साहित्य०—"हाँ बोलता हूं क, ख, ग, घ।"

झड़ूले०—"बस बस, आगे नहीं। (अलग) क्योंकि इसके आगे समझनेकी मुझमें खुद ही योग्यता नहीं। (प्रकट) बस इसीको तुम बार बार रट लगाए रहो।"

समाजिनी—"कुछ हो मैं जाऊंगी जरूर।"

झड़ूले—"अच्छा जाओ। (अलग) वहां क्या रखा है अब धतूरा। मगर हे काली भवानी, हे पकड़िया देवी, मेरी स्त्रीकी नीयत तुम्हारे हवाले।"

समाजिनी—"मगर तुम क्यो पिछड़े जाते हो?"

झड़ूले०—"तो यहां घरकी रखवाली कौन करेगा?"

समाजिनी—"और वहां मेरी जूतीकी रखवाली कौन करेगा?"

झड़ूले०—(अलग) 'मगर इस पोशाकमें वाहर जाऊंगा कैसे ? हमेशा तो अपनी स्त्रीके सामने मैं औरत-की पोशाकमें रहा। मगर अब इसे बदलूं तो कैसे ? अजब सांप छूछुन्दरकी गति हो गई।"

समाजिनी—(कान पकड़कर) "चलते हो या ·····"

झड़ूले०—"मगर मग यह धौलधप्पा दिल्लगी यहां जितनी करनी हो कर लो। हां, घरका-सा बरताव वाहर कहीं न करना।"

दृश्य छठा

गंगा-जमनीका घाट

(मोहनी गाती हुई वियोगिनीकी दशामें आती है)

मोहनी—

(गाना)

"मोरा सइयां, किधर गयो गुइयां, तड़प रही छतियां,
तरस रही अँखियां।
कौन ठइयां, विरम रहे सइयां, बताओ कोई सखियां,
मैं लागूं तोरी पइयां॥

मोहे पागल पिया हां दीवानी बनाय गयो रे।
मोहे सूनी सेजरिया पै पापी सुलाय गयो रे॥
मोहे बिरहाकी आगमें हाये जलाय गयो रे।
मोरी बारी उमरियामें दाग लगाय गयो रे॥
तड़प तड़प रहत जिया, आए न काहे हमारे पिया।

मोहनी—"ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गई, मगर कहीं उनका पता न पाया। कोई निशानी भी नहीं छोड़ गये जिससे मैं अपने धधकते हुए कलेजेको कुछ ठंढा करती। यही 'गंगा-जमनी' का घाट है। इसी जगह वह मुझसे मिला करते

थे। मेरी एक झलक देखनेके लिये घण्टों आसरा लगाए बैठे रहते थे। इसी जगह किन-किन ढंगोंसे मुझे अपना प्रेम जताते थे। अपना हृदय चीरकर दिखाते थे। जब मैं रूठ जाती थी किन-किन तरकीबोंसे मुझे मनाते थे। हाय! इस जगह वह मेरे पैरोंपर गिरे थे। यहांपर उन्होंने मेरा हाथ चूमा था। जब मैं उनकी तरफ देखती न थी तब वह मेरा चित्र खींचनेके बहाने मुझे अपनी तरफ तकाते थे। मैं लजा जाती थी। तब वह लिपटकर मुझे चूम लेते थे। इतनी देर-तक वह मेरे बिना कैसे रहे? वह एक मिनट भी मुझसे अलग नहीं रह सकते। अगर ज्यादा देर होगी तो वह तड़प तड़पकर ·· अरे! अशुभ बात मैं जबानपर ला नहीं सकती। यह वही मेरे प्रेमका विहार-स्थान है; अफसोस आज उनके बिना कैसा भयानक हो रहा है।

जा थल किन्हें बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठ चुन्यो करै।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसनासों चरित्र गुन्यो करै॥
'आलम' कौनसे कुंजनमें करी केलि तहां अब सीस धुन्यो करै।
नैननमें जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करै॥"

[पागल स्टेजके पिछले हिस्सेपर आता है]

पागल—(अलग)

"दर्दसे मेरे है तुझको बेकरारी हाय! हाय!
क्या हुई जालिम तेरी गफलत शोआरी हाय! हाय!

तेरे दिलमें गर न था आशोब गमका हौसला।
तूने फिर क्यों की थी मेरी गमगुसारी हाय! हाय!
क्यों मेरी गमख्वारगीका तुझको आया था ख्याल॥
दुश्मनी अपनी थी मेरी दोस्तदारी हाय! हाय!"

"मेरी मोहनी, मेरे प्राणोंकी प्यारी मोहनी। मेरी बेचैनीके ख्यालसे तू इतनी बेहाल है। भला तेरी बेचैनी देखकर मेरा क्या हाल है। उफ! दिल ही जानता है। तेरे बिना मैं एक पल, एक क्षण, एक सेकेण्ड तो रही नहीं सकता। एक मिनट तो बहुत है। अगर मैं तेरे पास नहीं हूं तो मेरा ख्याल तेरी निगाहबानीके लिये हर वक्त तेरे साथ सायेकी तरह फिरा करता है। तेरी आहटपर मेरे कान दिन-रात लगे रहते हैं। आंखें तेरी ही तरफ टक लगाए रहती हैं। जी चाहता है कि दौड़कर तुझे कलेजेसे लगा लूं। मगर अफसोस किस्मतसे इस वक्त मजबूर हूं।"

[झड़्लानन्द, समाजिनी, साहित्य और स्वाभाविकताका थाना। और प्रकृति, भाव, और शिक्षाका स्टेजके पीछे दिखाई देना]

समाजिनी—"क्यों जी, मुझे रास्तेमें कई तुम्हारी तरह दाढ़ी मोछ वाले मर्द मिले थे। मगर उनकी पोशाक तुम्हारी जैसी न थी। यह क्या बात है?"

झड़ूले०—"श्रीमतीजी, वह आदमी नहीं वह बागड़-

बिल्ले थे। अगर मर्द होते तो हमारी तरह लहँगा दुपट्टा न पहने होते?"

समाजिनी—"भला यह कौन है नई नवेली, सामने सोचमें डूबी बैठी है अकेली।"

झड़ूले०—"अहा! यह तो उसी बागड़बिल्ले पागलकी स्त्री मोहनी है, जिसने 'गंगा-जमनी' की धारा बहाई है, जिसके मारे स्त्रीधर्मकी दुहाई है। तुम्हारे नियमोंको इसने तोड़ा है इसलिये तुम्हारी अपराधिनी है। अब न चूको। निकाल लो कसर पेट भरकर।"

समाजिनी—"अरी छोकड़ी।······यह बहरी है क्या?"

झड़ूले०—"अरी बी चकौरा जान। किधर है तुम्हारा ध्यान, जरा इधर भी दो अपने कान।"

मोहनी—"कौन हैं आप श्रीमान।"

झड़ूले० (अलग)—"ओहो! बातें तो बड़ी रसीली हैं तभी वह बागड़बिल्ला इसके पीछे पागल हुआ है।"

समाजिनी—"क्यों री छोकड़ी, तू मर्दों से बातें करनेमें जरा नहीं शर्माती।"

मोहनी—"इसलिये कि अपने पतिके सिवा गैर मर्दको मैं मर्द नहीं जानती!"

समाजिनी—"ऐसी मुंहफट?"

मोहनी—"सचाईमें कैसी हिचकिचाहट ?"

समाजिनी—"तेरा इस तरह अकेली फिरना रवा नहीं।

मोहनी—"मैं अपने पतिको कोई बेवफा नहीं।"

समाजिनी—"फिर भी तू अबला है। वे यार मददगार हैं।"

मोहनी—"पति प्रेम मेरे साथ है। सती-धर्म मेरा हथियार है।"

पागल शिक्षा—(दूरसे अलग) "शाबाश! शाबाश! मोहनी तू सतीत्वका अवतार है। अगर स्त्रियां अबला हैं तो बस समाजिनी, तेरी बदौलत।"

झडूले०—"श्रीसतीजी! वह यों न मानेगी। पकड़के बांध लो तब यह अपनी असलियत जानेगी। तुम्हें पहचानेगी।"

[आगे बढ़ना है]

मोहनी—"बस खबरदार, अपनी शामत न बुला। दीवानीको और दिवानी न बना।"

झडूले०—(अलग) "अररर! यह तो वेमौसिमी हरे मिरचेकी बहार है। कुछ रसीली और कुछ कचालूसी चटपटी बड़ी मजेदार है। तभी उस पागलको शेखीका इतना खुमार है।"

समाजिनी—"क्या तू मुझे नहीं पहचानती मेरी ताकतको नहीं जानती ?

मोहनी—"अय इस जमानेकी औरत, तेरी ताकत देख रही हूं, सामने चूड़ियां पहिने खड़ी है।"

शिक्षा—(दूर अलग) "बेशक मोहनी बेशक। स्त्रीकी ताकत स्त्रीका घमण्ड उसका पति ही है।"

समाजिनी—"उफ! बला की है तर्रार तू।"

मोहनी—"मगर खुद छेड़के करती है तकरार तू।"

समाजिनी—"जानती नहीं अपने नियमोंसे जकड़कर तुझे हलाल कर दूंगी।"

मोहनी—"मारे फटकारोंके तेरा मुंह मैं लाल कर दूंगी।"

समाजिनी—"क्या तू नहीं जानती कि मैं कौन हूं?"

मोहनी—"क्या तुझे नहीं मालूम मैं कौन हूं।"

झड़ूले०—"अरे! हां हां इसी बागड़बिल्लेकी औरत। एक अन्धा तो दूसरी कानी। मर्द पागल तो औरत दीवानी। (समाजिनीसे) कहो सखी, कैसी कही। जरा देना तो इसी बातपर शाबाशी।"

समाजिनी—"कुछ खबर है? मैं समाज हूं, जिसके बन्धनमें दुनिया थर्राती है।"

मोहनी—"तो मैं भी उसी पागलकी लेखनी हूं, जिसके मारे तू दोहाई मचाती है।"

समाजिनी—"यह दावा ! यह दम !"

मोहनी—"बल्कि तुझसे भी हूं आगे दो क़दम।"

समाजिनी—"चुप बेशर्म। तू स्त्री जातिको बिगाड़ रही है।"

मोहनी—"ओ बेहया, अपना कलंक मुझपर डाल रही है।"

समाजिनी—"तू मेरे नियमोंका उल्लंघन करती है।"

मोहनी—"और तू मनुष्यके बनाये हुए नियमोंकी पुतली ईश्वरके बनाये हुए नियमोंके विरुद्ध चलती है। प्रकृतिका कलेजा मसलती है।"

समाजिनी—"भला तूने किससे पूछकर पागलसे प्रेम किया ?"

मोहनी—"हवा किससे पूछकर चलती है ? बादल किससे पूछकर बरसता है ? फूल किससे पूछकर खिलते हैं ? अरी अन्धी, ईश्वरने आंखें दी हैं तो देखेंगी। कान हैं सुनेंगे। वैसे ही पहलूमें दिल है, तो नवजवानीमें उससे प्रेमकी धारा भी बहेगी।"

समाजिनी—"मगर मैं ऐसी धाराको रोकती हूं, दबाती हूं।"

अपना एब मुझपर लगाता हो।"

समाजिनी—"अगर न रोकूं तो क्या हो?"

मोहनी—"तो उसका खरीदार प्रेमहीका दरिया या समुन्दर होगा।"

समाजिनी—"मगर ऐसे खरीदार मुझे पसन्द नहीं। इसमे मेरी बदनामी होती है।"

मोहनी—"दुष्यन्तने शकुन्तलाको पाकर कौन-सा तेरा मुंह काला किया। रुक्मिनी कन्हइयासे मिलकर कब कलंकिनी कहलाई?"

समाजिनी—'मगर मैंने वह कानून बदल डाला, अपने नियमोंको खूब जकड़ डाला। इसलिये अब उन दफाओंके बमौजिब प्रेमी आवारा है तो प्रेमिका हरजाई।"

झडूले०—"वाह मेरे बापकी लुगाई। क्या बात कह सुनाई। अजी साहित्य, जरा तुम भी तो इसी बातपर देना बधाई।"

साहित्य—क, ख, ग, घ।

झडूले०—'बस! बस! और श्रीमतीजी, अगर शादी-के पहिले कोई प्रेम करे तो वह बदमाश है और शादीके बाद